Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

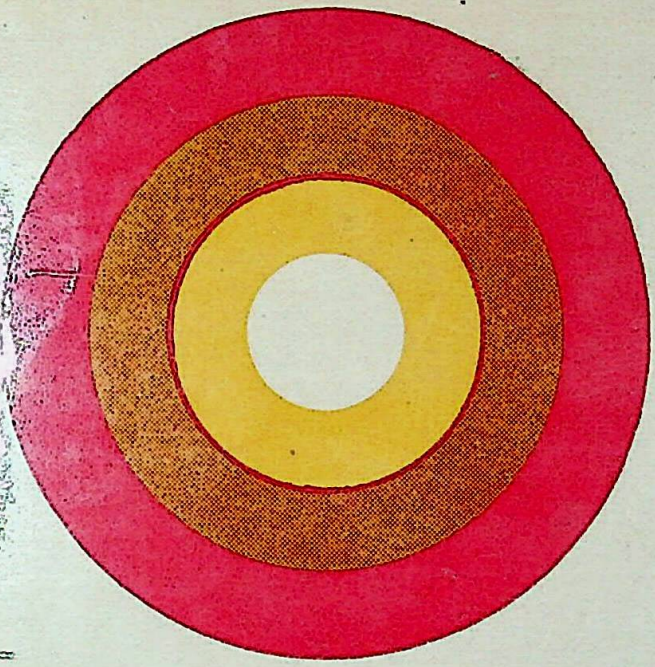

अथर्ववेदीय तंत्रविज्ञान

पं. देवदत्त शास्त्री

Q14:23:g,1
152N1D

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेदीय तन्त्रविज्ञान न चमत्कार है और न संदिग्ध है। इसका कारण व्यवस्था है, मन्त्रशक्ति का प्रभाव है और अथर्ववेदीय तंत्र एक सशक्त अन्तः-प्रक्रिया है। यही कारण है कि अथर्ववेद के मंत्रों को पढ़ते हुए शिर पर जल छिड़कने से, शिर पर हाथ रखने से, हवन करने से असाध्य रोग, आने वाली दुर्घटनाएँ, मारण, मोहन आदि कृत्या-प्रयोग; पाप, शाप, दुरित-दैन्य आदि दूर हो जाते हैं।

अथर्ववेदीय तन्त्रविज्ञान की परोक्ष-प्रक्रिया और मन्त्रशक्ति के चमत्कार को आधुनिक विज्ञान आश्चर्य और असमंजस की दृष्टि से देखता है।

Q14:23:g,1 8592
152N1D
Devdutt Shastri
Vatantra

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Q14(93)9.1
152N1D

8592
S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेदीय तंत्रविज्ञान

SRI JAGAD GURU ...
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....

पं० देवदत्त शास्त्री

© Sh.: 320414, Off.: 333445
चौखम्भा संस्कृत भवन
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160 (The Banaras State Bank Building)
CHOWK, VARANASI - 221 001

विविध भारती प्रकाशन
इलाहाबाद-३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Atharvavediya Tantra Vigyan
by
Pt. Devdutt Shastri

Q14:23:g1
152N1D

संस्करण

•

प्रथम १९८५
द्वितीय १९९१

SRI JAGADGURU ... ADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....8592.....

कॉपीराइट

•

पं० देवदत्त शास्त्री

प्रकाशक

•

विविध भारती प्रकाशन/११७, गाड़ीवानटोला/इलाहाबाद-२११००३

अक्षर-योजक

•

मीलराज प्रेस/३३९/३९८ ए, शाहगंज/इलाहाबाद

मुद्रक

•

सुपरफाइन प्रिंटर्स, ४/२, बाई का बाग, इलाहाबाद

सज्जाकार

•

शिवगोविन्द पाण्डेय

□

मूल्य

•

Rs.

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रस्तुति

अथर्वसंहिता में सम्पूर्ण मंत्र शान्ति, पुष्टि और अभिचार इन तीन भागों में विभक्त हैं। सम्पूर्ण अथर्ववेद का चिन्तन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना अथर्ववेद के मंत्रों का उद्देश्य है। इसी को योगक्षेम कहा गया है। अथर्ववेद में सर्वत्र 'योगक्षेम' को 'शंयुः', 'पुष्टिः' 'शान्तिः' पदों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

अथर्ववेद में जो 'यातु', 'कृत्या' और 'अभिचार' कर्मों का प्रतिपादन किया गया है, उसे लेकर युरोपीय विद्वानों ने अथर्ववेद के विरुद्ध बवंडर खड़ा कर दिया था। हम किसी की निन्दा, आलोचना करने की प्रवृत्ति न रखकर इतना ही कहना चाहते हैं कि चारों वेदों का अध्ययन, मनन, स्वाध्याय और चिन्तन तपःसाध्य, साधनासाध्य है। इनके बिना वेदों का रहस्यार्थ प्रकट करना पानी पीटने के समान है।

अथर्ववेद रहस्य-विद्या, तत्त्वज्ञान और जनकल्याणकारी कर्मों का वेद है। इस वेद में जो 'कृत्यादूषण' एवं 'अभिचारकर्म' बताए गए हैं, उनका उद्देश्य आत्मरक्षार्थ है, अतः वे भी शान्ति, पुष्टि कर्मों के अन्तर्गत परिगणित हैं। अथर्वसंहिता में जो प्रायश्चित्तकर्म बताए गए हैं, वे कृत्य अशुभ कर्मों के अशुभ फलों के निवारण के लिए—शम्—कल्याण के लिए किए जाते हैं। उनके मूल में 'शान्ति' ही है। अभिचारकर्मों से शत्रुओं, दुष्टों, दानवों का शमन किया जाता है, जिससे व्यक्ति का, जन समुदाय का अशुभ न हो, उसे कोई हानि न हो।

चारों वेद किसी रहस्यमयी शक्ति का अस्तित्व अनादि काल से स्वीकार करते हैं। वेदों के अध्ययन से यह सम्यक् ज्ञात होता है कि किसी अभीष्ट की प्राप्ति के लिए उस रहस्यमयी आदि शक्ति की स्तुति की जाती है, यज्ञ किए जाते हैं। देवता भी उस आदि शक्ति की सहायता, कृपा के आकांक्षी होते हैं। ऋग्वेद संहिता में ऋषि विश्वामित्र अपने स्तुति-सामर्थ्य से आदि शक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'भारतान् जनान् ररक्ष।' अर्थात् भारतीय प्रजा की रक्षा करो।

अथर्ववेद (१।२६, ५।७, ५।२२, ६।१३) में दानवों, दैत्यों को भी अनुकूल बनाने, उनकी कृपा प्राप्त करने के प्रयोग हैं। इनके अतिरिक्त रुद्र, वरुण जैसे देवताओं से भी वैसे ही भय प्रकट किया गया है, जैसे दानवों से, क्योंकि रुद्र और वरुण उग्र देवता हैं। क्रुद्ध होने पर ये दानवों से भी अधिक क्षति पहुँचाने में समर्थ होते हैं।

वेदों में 'यातुकर्म' का आधार उपासना ही है। अथर्ववेद में कई स्थानों पर यातु-कर्म का और धर्म का विषय एक ही सूक्त में और कहीं एक ही मंत्र में एक साथ प्रतिपादित किया गया है (अथर्ववेद १।९, ३।११, ४।४०, १९।३४, ४४)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'यातु' कर्म का प्रयोक्ता मंत्र के इष्ट देवता की प्रसन्नता प्राप्त कर उसकी आराधना करके प्रयोग करता है। यातुकर्म में ओषधि, रक्षाकरण्ड (गण्डा), मणि, मंत्रों के अनुष्ठान, हवन आदि के माध्यम से शक्ति और सफलता प्राप्त की जाती है। यातुकर्म का प्रयोक्ता पहले मणि, मंत्र, ओषधि सिद्ध करता है, तत्पश्चात् उनकी शक्ति से वह यातुकर्म करने में शक्तिशाली बनता है (अथर्ववेद ४।१८, ३७; ८।७, १९।२०)। मंत्र और ओषधि दोनों की साधना से यातुकर्म की सिद्धि मिलती है। अथर्ववेद (१९।३२) का एक यातुकर्म-साधक दर्भ (कुश) को उद्दिष्ट कर कहता है, 'तुम और मैं दोनों शक्तिशाली हैं। अतः हम दोनों मिलकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।'

सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन करने से यह निश्चित प्रतीति होती है कि हमारे पुरातन महर्षि और पूर्वज अपने-अपने इष्ट देवता में अगाध श्रद्धा रखते थे। निष्ठापूर्वक उनकी आराधना किया करते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि देवाराधन, देव-स्तुति से उनकी समस्त आध्यात्मिक, भौतिक कामनाएँ पूरी होती हैं। वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल में आध्यात्मिक और लौकिकसिद्धि प्राप्त करने के लिए मंत्र-सिद्धि प्राप्त की जाती रही है, वह परंपरा अब तक प्रचलित है। तंत्र-साधना द्वारा न केवल भौतिक सिद्धि प्राप्त की जाती है, अपितु उससे विमुक्ति भी प्राप्त होती है।

भारतवर्ष में मुख्यतया, अध्यात्म की साधना का लक्ष्य प्रारम्भ से रहा है। इसलिए यातुकर्म को जादू, टोना, टोटका से अभिहित करना नादानी है। वस्तुतः पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए जो क्रिया की जाती है वह यातुकर्म है। ध्यानयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग यातु पद वाच्य हैं। यातुकर्म धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति के लिए अथर्ववेद में वर्णित हैं और धर्म की साधना मोक्ष के लिए है। अथर्ववेद रहस्य-विद्या का अगाध समुद्र है। इसका अवगाहन करना मेरे सदृश व्यक्ति के लिए नितान्त असम्भव है। प्रयत्नपूर्वक जो मुक्ता-सीप मुझे प्राप्त हुए हैं, उनमें से कुछ जनकल्याण, राष्ट्रकल्याण के लिए इस ग्रंथ के माध्यम से मातृभूमि को अर्पित हैं।

ॐ आनन्दम्।

८४, नया बैरहना
इलाहाबाद

—देवदत्त शास्त्री

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

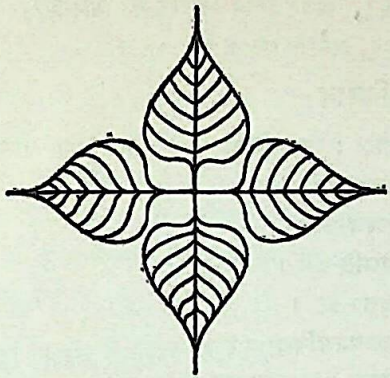

विषयानुक्रम

अध्याय १ : आथर्वणतंत्र ९-२७

१. अपौरुषेय वेदविज्ञान-९ ।

२. अथर्ववेदीय रहस्यविद्या-१२, अथर्ववेद के विषय-१३, तंत्र-विधान का गूढ़ रहस्य-१४, वेदार्थ का रहस्य-विज्ञान-१५, अथर्ववेदीय-तंत्र एक सशक्त अन्तःप्रक्रिया-१८ ।

३. अथर्ववेदीय मंत्रविद्या-२३, गुह्य अध्यात्म-२६ ।

अध्याय २ : अथर्ववेदीय तंत्रविधान २८-६३

१. गणकर्म-विधान-२८ ।

२. गणों के उपयोगी विषयों का वर्गीकरण-३३ ।

३. शान्ति पुष्टिकर्म-विधान-३७ ।

४. पाकयज्ञ : निशाकर्म-विधान-४०, तंत्रभूत महाशान्ति-कर्म-४१, स्त्री द्वारा स्त्री को शाप-४३, पुरुष द्वारा स्त्री वशीकरण-४५ ।

५. अथर्ववेदीय तन्त्र में निहित रहस्यमयी शक्ति-४६, यातुकर्म : धर्मकर्म-४६, शान्ति-पुष्टि-अभिचार कर्म की व्यापक सत्ता-४७, आथर्वण मंत्रों के जप का प्रभाव-४८, अथर्ववेद में रोगों के निदान और चिकित्साकर्म-४८ ।

६. भेषज्य-विद्या : मन्त्र-विद्या-५३, मन्त्र-विद्या का वर्गीकरण-५४ ।

७. शरीरतंत्र विज्ञान-५७, शिव-संकल्प-६०, अथर्ववेदीय शारीरस्थान-६०, शरीर का आधार-स्तम्भ-६१, शरीरगत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाडियाँ-६१, अथर्ववेदीय शरीर के अंग-६१, शरीर की चेष्टाएँ-६२, अन्तःकरण के धर्म-६२ ।

अध्याय ३ :अध्यात्म-विज्ञान ६४-९६

१. प्राणशक्ति : प्राणविद्या-६४, प्राणविद्या-साधना-६६ ।
२. ब्रह्मकवच-साधना-७० ।
३. ज्ञानकवच-७५ ।
४. आत्मोन्नति-७८ ।
५. ब्रह्मविद्या-७९ ।
६. गुह्य अध्यात्मविद्या-८१ ।
७. स्वस्त्ययन-८३, उपासना विधि-८४ ।
८. मेधाजनन-८५, मेधाजनन (बुद्धि-संवर्द्धन)-८६ ।
९.वाक्-सिद्धि, विवाद-विजय, बालग्रह-दोष-८९ ।
१०. महाविद्या-९१, अथर्वशीर्षम्-९१ ।
११. पुरुषसूक्त-९४ ।

अध्याय ४ : आधि-व्याधि निवारणविधान ९७-१५४

१. अथर्ववेदीय ओषधि-भेषज, आधि-व्याधि समीक्षा-९७, ओषधि-९७, भेषज-९७, रोग-९७, आधि-९७, व्याधि-९७, अथर्ववेद में उल्लिखित प्रमुख व्याधियाँ-९८, कर्मज व्याधियों की उत्पत्ति के कारण-९८, दुःस्वप्न-१०२ ।
२. जलावसेचन : रक्षाकरण्ड : ओषधि-प्रयोग-१०७, जलावसेचन-विधि-१०८ ।
३. रक्षाकरण्ड (रक्षा-सूत्र, गण्डा)-११२, रक्षाकरण्ड—रक्षोहण मंत्र विधि-११३ ।
४. रक्षोघ्न मंत्र-११४, शापमोचनार्थ सर्षप प्रक्षेपण, रक्षाकरण्ड बन्धन-११४ ।
५. ओषधि-विधान-१२१, प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी पदार्थ-१२५, अथर्ववेद में ओषधियों के जातिभेद : वर्ग-भेद-१२५ ।
६. जलचिकित्सा-१२८, जलाभिमन्त्रण मन्त्र-१२९ ।
७. आदित्यशान्ति कर्म-विधान-१३०, अपां भेषजम्-१३२, अपनोदन भेषजम्-१३३ ।
८. आथर्वणी-आङ्गिरसी भेषजविज्ञान-१३५, ग्लानि-क्लेश-दुःख निवारण : संकट मोचन, विजय प्राप्ति-१३५ ।
९. दीर्घायुष्य : आरोग्य-विधान-१४०, प्राण की उपा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सना-१४१, दीर्घायु प्राप्ति के साधन-१४२, अवनति के बन्धन-१४३, दीर्घजीवनीय विद्या-१४४, मृत्यु के विविध कारण-१४५, आयुर्दा अग्नि-१४६, ओषधि प्रयोग-१४७, आत्मविश्वास : मनोबल-१४७, उन्नति का मार्ग-१४८, दीर्घायुष्य और तेजिस्वता-१४८, दाक्षायण हिरण्य-१५०, दाक्षायणीविद्या-१५१, सुखप्राप्ति-१५१, सुखप्राप्ति के उपाय-१५२, हस्ताभिमर्ष से रोग-निवारण-१५२, दुर्गति-निवारण-१५३ ।

अध्याय ५ : अरिष्ट अनिष्टादि निवारण-विधान १५५-१८१

१. कृत्यापरिहरण १५५ ।
२. रक्षोघ्न चातनगण-विधान १६५ ।
३. रक्षघ्नेष्टि-१७३, आग्नेयास्त्र-१७३, सम्मोहनास्त्र-१७६, सम्मोहनास्त्र-प्रयोग-१७७, पाशुपतास्त्र-१७९ ।

अध्याय ६ : मणिधारण-विधान १८२-२००

वरणमणि-१८२, आञ्जनमणि-१८६, हरिणमणि-१८७, जङ्गिडमणि-१८८, औदुम्बरमणि-१९१, शतवारमणि-१९२, दर्भमणि-१९४, प्रतिसरमणि-१९७ ।

अध्याय ७ : अर्थोत्थापन कर्म-विधान २०१-२०७

सामान्य विधि-२०१, जलावसेचन-२०२, वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति-समृद्धि संवर्धनार्थ-२०४, अर्थोत्थापन-२०५ ।

अध्याय ८ : संकटमोचन-विधान २०८-२१९

१. वृहच्छान्तिकर्म-विधान-२०८ ।

अध्याय ९ : वेदाङ्ग ज्योतिष २२०-२३५

अथर्ववेदीय ज्योतिष-विज्ञान-२२०, अथर्ववेदीय प्रश्न-ज्योतिष-२२२, ग्रह-दोष, शाप-दोष विज्ञान-२२२, गर्भ-दोष, सन्तति-विज्ञान-२२३, वैधव्य योग : वन्ध्या योग-२२५, कार्य की सफलता, असफलता का ज्ञान-२२५, प्रवासी प्रश्नज्ञान-२२६, विवाह-संबंधी प्रश्नज्ञान-२२७, शुभाशुभ ज्ञान-२२७, मूल नक्षत्रजन्यदोष और उनकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शान्ति-२२७, शुभाशुभ नक्षत्र ज्ञान-२२९, अथर्ववेद में शकुन-अपशकुन, अद्भुत घटनाओं का विज्ञान-२३२ ।

प्रकीर्णक १ : अथर्ववेद के काण्डगत सूक्त और उनके विषय २३६-२४१
प्रकीर्णक २ : ऋग्वेदीय व्याधि-नाशन तंत्र २४२-२४४
प्रकीर्णक ३ : अथर्ववेद : पृथ्वी सूक्त का सारसंक्षेप २४५-२४६
प्रकीर्णक ४ : शिव-संकल्प २४७-२५६

□

शम (शान्ति) का तात्पर्य अथर्ववेद में पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह और आत्मविजय का मार्ग है। विश्वमानव की सबसे महती उपलब्धि शान्ति है। विश्व को आत्मीयता के घेरे में समेट लेने की आधारभूमि शम—शान्ति है।

शम की नीति का विपरीत मार्ग साम्राज्यवाद है। समाज का, राष्ट्र का जीवन एवं अन्तरराष्ट्रीय जीवन—इन सब का आधार शम (शान्ति) की नीति है।

—देवदत्त शास्त्री

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय १

आथर्वणतंत्र

१. अपौरुषेय वेदविज्ञान

वेद रहस्य विद्या है। उसकी प्रत्येक ऋचा में गूढ़ रहस्य निहित रहता है। वह रहस्यार्थ कर्मकाण्डी पुरोहितों, वैयाकरणों, इतिहासज्ञों तथा गाथाशास्त्रियों द्वारा सर्वथा उपेक्षित रहा है। इस संसार में ऐहिक, आमुष्मिक जो कुछ भी श्रेय और प्रेय है, वह सब वेद में निहित है। वेद स्वाध्याय, चिन्तन और मनन प्रधान हैं। निरन्तर वेद-मन्त्रों का चिन्तन-मनन करते रहने से वैदिक ऋचाओं के रहस्यार्थ खुलने लगते हैं। चारों वेदों का स्वाध्याय निष्ठापूर्वक करने के बाद मैंने अथर्ववेद के रहस्यार्थों पर विशेष चिन्तन किया। अथर्ववेद की शाखाओं, सूत्रों, प्रातिशाख्यों और उन पर लिखे गए भाष्यों का भी अध्ययन किया। अथर्ववेद के सूक्तों, मन्त्रों के ऋषियों, देवताओं, छन्दों और विनियोगों पर गम्भीर चिन्तन करने पर मुझे अथर्ववेदीय ऋचाओं और सूक्तों के जो रहस्यार्थ प्राप्त हुए हैं, वे लोक-कल्याण के लिए महान् साधन सिद्ध हुए हैं। आथर्वण-तन्त्र से जितने प्रयोग मैंने किए हैं, वह सब पूर्ण सफल रहे। अब तक का मेरा अनुभव है कि हममें से अधिकांश लोग वेदों के अध्ययन में और उनका रहस्यार्थ खोजने में या तो लापरवाह रहे हैं या तर्क-बुद्धि से काम लेते रहे हैं। हमारी इस लापरवाही ने, ऐसी तर्क-बुद्धि ने राष्ट्र की वेदाध्ययन सम्बन्धी दिशा-दृष्टि ही बदल दी है।

हम इतना तो जानते हैं कि वेदों का साक्षात्कार, वैदिक ऋचाओं का श्रवण सर्वप्रथम साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने ही किया था, किन्तु हम यह जानने की चेष्टा नहीं करते हैं कि उन महर्षियों ने किस प्रकार वेदों का साक्षात्कार किया था। यदि हम आस्थापूर्वक वेदों का अध्ययन करें, तो यह समझने में देर नहीं लगती है कि ऋषियों द्वारा ऋचाओं के श्रवण करने की प्रक्रिया भी वेदाध्ययन से ही प्राप्त होती है।

प्राचीन ऋषियों के पास वैदिक ऋचाओं के साक्षात्कार के मुख्य दो साधन थे—श्रवण और दर्शन। श्रवण के कारण वैदिक ऋचाएँ श्रुति कहलाती हैं। उन ऋषियों, परमर्षियों और महर्षियों ने आदिगुरु परब्रह्म परमात्मा से वैदिक-मन्त्रों का श्रवण किया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

था। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से कहा जाए तो यह कि मन्द्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित वेदध्वनि समस्त ब्रह्माण्ड में प्रतिध्वनित होती रहती है। हमारे ऋषियों ने तपस्या द्वारा अपने श्रोत्रों (कानों) में दिव्यता भर कर ब्रह्माण्ड में गूंजती हुई वैदिक ऋचाओं का श्रवण किया। तभी से श्रवण से प्राप्त ऋचाएँ श्रुति कही जाने लगीं। ध्यानावस्था में, समाधि अवस्था में बैठे हुए वे ऋषिगण मन्द्रजिह्व परमात्मा को साकार रूप में अपने सामने प्रकट कर लेते थे—

तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्राः दधिरे मन्द्रजिह्वम्

—ऋग्वेद ४।५०।१

ऋग्वेद की इस ऋचा से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि प्राचीन ऋषिगण ब्रह्म का ध्यान कर उन्हें अपने सामने प्रकट कर लेते थे और मन्द्रजिह्व परमात्मा द्वारा उन्हें वेद मन्त्रों का उपदेश प्राप्त होता था। यही कारण है कि वेदों को ईश्वरीय ज्ञान अथवा अपौरुषेय कहा जाता है। वेद मनुष्यकृत या ऋषिकृत नहीं हैं।

इसी आशय को अथर्ववेद इस प्रकार प्रकट करता है—

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति

—परमात्मा के काव्य (वेद) को देखो, वह न नष्ट होता है और न मरता है। तथा—

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥

—अथर्ववेद १०।८।३३

तात्पर्य यह कि जिसके पूर्व कोई नहीं है, ऐसे अपूर्व परमात्मा के मुख से निःसृत-प्रेरित वैदिक ऋचाएँ यथातथा (जो जैसा है, उसे वैसा ही) कहती हैं। और इस प्रकार बोलती हुई—गूंजती हुई ये ऋचाएँ जहाँ जाकर विलीन हो जाती हैं, उसे महद्ब्रह्म कहते हैं।

इसी को अलङ्कारिक ढंग से जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (१।४।१६) इस प्रकार कहता है—

'वे (वैदिक ऋचाएँ) द्युलोक तक फैली हुई थीं। प्रजापति ने उन ऋक्पदों को एकत्र कर उनकी अर्चना की, इसलिए वे ऋचाएँ कहलाईं।'

अब प्रश्न यह उठता है कि प्राचीन ऋषियों ने आकाश में गूंजती हुई ऋचाओं को सुनने के लिए श्रवणदिव्यता कैसे प्राप्त की थी। इसका स्पष्ट उत्तर योगशास्त्र तथा अथर्ववेद से मिलता है। यह अनुभव-सिद्ध है कि श्रोत्रों में दिव्यता का आविर्भाव बहिर्वृत्तिजन्य एवं अन्तर्वृत्तिजन्य इन दो साधनों से होता है। बहिर्वृत्तिजन्य आधार नादब्रह्म की उपासना है। निरन्तर नादब्रह्म की उपासना (नादानुसन्धान)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते रहने से इन्द्रियों की वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं।—सदानादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्। नाद का तात्पर्य है अव्यक्त ध्वनि। वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्त ध्वनि में महती शक्ति रहती है। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रमाण अथर्ववेद (१०।७।२१) के उस सूक्त से मिलता है, जो स्कम्भ रूप ब्रह्म की सत् और असत् इन दो शाखाओं का निरूपण करता है। अथर्ववेद असत् शाखा को परम शाखा मानता है, जिससे 'वृहन्त' नामक देव पैदा होते हैं।[1] और सत् शाखा को 'अवर शाखा' मानता है। आधुनिक विज्ञान में असत् शाखा को 'इनर्जी' कहा जाता है और सत् शाखा को निष्क्रिय तत्त्व—'मैटर' कहा जाता है। एक 'गति' को सूचित करता है और दूसरा 'स्थिति' को। सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है, निष्क्रिय है और रूप वाला है।

'गोपथब्राह्मण'[2] का कथन है कि यह सर्वश्रेष्ठ वेद तप के प्रभाव से ब्रह्म-ज्ञानियों के हृदय में प्रकट हुआ। इस कथन में यह विरोधाभास नहीं समझना चाहिए कि एक ओर तो यह कहा जाता है कि ऋषियों ने समाधि अवस्था में परमात्मा द्वारा वेदवाणी का श्रवण किया तथा दूसरी ओर यह कहा जाता है कि वेदवाणी तपोरत ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। इस तर्क का निराकरण इस प्रकार है—श्रोत्र का सम्बन्ध आत्मा से रहता है। प्राणवायु और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है।[3]

इससे प्रकट होता है कि आत्मा का सम्बन्ध हृदय से रहता है, इसलिए श्रोत्र का भी सम्बन्ध हृदय से होता है।[4]

अनवरत नादानुसन्धान करते हुए ऋषियों ने श्रोत्रेन्द्रिय में एकाग्रता उत्पन्न कर श्रोतृ-दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेन्द्रिय को एकाग्र करने की एक विधि यह भी है—ध्वनि-तरङ्गें ज्यों-ज्यों आकाश में दूर-दूरतर होती जाती हैं, वैसे ही वे मन्द्र, मन्द्रतर रूप धारण करती हैं। धीमी, मन्द होती हुई ध्वनि को देर तक सुनने में मन एकाग्र और केन्द्रित होता है तथा श्रोतृ की प्रसुप्त शक्ति उत्तेजित और जाग्रत हो जाती है। श्रोत्र में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान-क्रिया निर्बाध गति से प्रारम्भ होती है और अपादान क्रिया जब सुचारु रूप से क्रियाशील होती है तो श्रोत्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मल विनष्ट हो जाते हैं, श्रोत्र के आवरण नष्ट हो जाते हैं, जिससे एकाग्रता और संयम की सिद्धि प्राप्त होती है। श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में जब एकाग्रता और संयम आ जाता है, तब उससे दिव्य श्रोत्र की उत्पत्ति होती है।[5]

---

१. अथर्ववेद १०।७।२५
२. गो० ब्रा० १।८
३. ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४
४. तै० ३।१०।८।६
५. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद् दिव्य श्रोत्रम्।—योगदर्शन, विभूतिपाद।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऋषियों द्वारा साक्षात्कार की गईं वैदिक ऋचाओं का अध्ययन ज्ञानपूर्वक और अर्थपूर्वक करने का निर्देश यास्क मुनि[1] ने किया है :

'अर्थज्ञान के बिना तथा ऋचाओं के रहस्यार्थ को जाने बिना केवल कण्ठस्थ वेद बोझा बने रहते हैं।' इसलिए यास्काचार्य का उपदेश है कि 'वेद का अध्ययन वेद-विज्ञानविद् गुरु से किया जाए और साङ्गोपाङ्ग अर्थ तथा रहस्यबोध सहित अध्ययन किया जाए।'

२. अथर्ववेदीय रहस्यविद्या

वैदिक काल में अग्नि के उपासक ऋषियों को आथर्वण कहा जाता था। आथर्वण ऋषिगण का वेद अथर्ववेद था; यही वेद उनके स्वाध्याय, चिन्तन, मनन और अध्यात्म-साधना का मूल आधार था। अथर्ववेद में 'ब्रह्मौदन', 'देवानां पूरयोध्या' (मानव-शरीर) आदि अनेक ब्रह्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए गए हैं। इन उपदेशों के स्वाध्याय, चिन्तन द्वारा अथवा आथर्वण-तन्त्र-विधान द्वारा मनुष्य मानसिक स्थिरता, स्थितप्रज्ञता और आत्मदर्शन की उपलब्धि प्राप्त कर सकता है। अथर्ववेद का अथर्व यह नाम सार्थक है, प्रयोज्य है। शब्द-व्युत्पत्ति के आधार पर 'अथर्वा' शब्द का अर्थ 'अचंचलता की स्थिति' है। थर्व इति गतिर्नाम नथर्व इति अथर्वा। 'थर्व' का अर्थ गति है और 'गति' का अर्थ चंचलता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार की चंचलता को अथर्ववेद की मंत्रसाधना नियंत्रित करके साधक को स्थिरधीः, स्थितप्रज्ञ बनाती है। यही कारण है कि अथर्ववेदीय-चिन्तन एवं साधना करने वाले ऋषि अथर्वा या आथर्वण कहे गए हैं। प्राचीन ईरान के पारसी भी अग्नि-पूजक थे। उनके धर्म-ग्रन्थ अवेस्ता में भी अग्नि के उपासक पुरोहित को अथ्रवन कहा गया है।

वैदिक वाङ्मय में अथर्ववेद के 'ब्रह्मवेद', 'भैषज्य वेद' आदि अनेक नामों में एक नाम 'अथर्वाङ्गिरस्' भी है। 'अथर्वा' और 'अङ्गिरस्' ये दो भिन्न ऋषि थे और इन्होंने ही सर्वप्रथम 'अग्नि' को प्रकट किया था। अग्नि की उपासना (यज्ञ) की थी। अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाएँ अध्यात्मपरक, सुखकारक, अभ्युदय प्रदान करने वाली और श्रेय-प्रेय देने वाली हैं और अङ्गिरस् ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाएँ अभि-चार कर्मपरक, शत्रुसंहारिणी, निर्ऋति, कृत्यादूषण, शाप-निवारिणी, मारण, मोहन,

---

१. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् अधीत्यवेदं न विजानातियोऽर्थम्।
योऽर्थज्ञः सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानं विधूतपाप्मा ॥—निरुक्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वशीकरण आदि षट्कर्म प्रधान हैं। सारांश यह कि आथर्वण मंत्र स्रजनात्मक हैं और आङ्गिरस् मंत्र संहारात्मक हैं। अथर्ववेद में आथर्वण और आङ्गिरस् दो प्रकार के तंत्र-विधान होने से अथर्ववेद को अथर्वाङ्गिरस् कहा गया है।

अङ्गिरस् का शब्दपरक, व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'अंगों में प्रवाहित होने वाला रस' है। मनुष्य-शरीर के प्रत्येक अवयव और अङ्ग में 'संजीवन रस' प्रवाहित हुआ करता है। अंङ्गागों में प्रवहमान यह रस मानव-शरीर के प्रत्येक अवयव को सक्षम और सशक्त बनाया करता है। इस रस के सूखने पर या अवरुद्ध होने पर अथवा इसका अभाव होने पर इन्द्रियाँ शिथिल और निष्क्रिय होकर अपना कार्य-व्यापार करने में असमर्थ हो जाती हैं। जब मनुष्य के शरीर की यह स्थिति होती है, तब उसे लक़वा, फ़ालिज़, मधुमेह आदि रोग हो जाया करते हैं।

शरीर में प्रवाहित होने वाले इस रस में जब विकार उत्पन्न हो जाते हैं, तब अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाया करती हैं, मनुष्य के मन-मस्तिष्क और हृदय भी विकार-ग्रस्त हो जाते हैं। शरीर के इस प्रकार व्याधिग्रस्त हो जाने पर आथर्वणतंत्र-विधान द्वारा जलावसेचन, हस्ताभिमर्श, मणि-बन्धन, हवन, उपस्थान करने से तथा अथर्ववेदीय मंत्रों से अभिमंत्रित ओषधि, भेषज उपचार से मनुष्य रोग-दोषमुक्त होकर स्वस्थ और नीरोग बनता है। जलावसेचन, मणि-बन्धन, ओषधि-भेषज आदि उपचार से शरीर के अंगों के विकृत या शुष्क रस सजीव और सशक्त बनते हैं।

अथर्ववेद के विषय

अथर्ववेद संहिता में कुल ७२६ सूक्त और ५९७७ मंत्र हैं, जो बीस काण्डों में विभक्त हैं। बीसवें काण्ड के कई सूक्त ऋग्वेद में भी मिलते हैं। अथर्ववेद के दूसरे, चौथे, पाँचवें और सातवें काण्ड के प्रारम्भ में केवल ब्रह्मविद्या का वर्णन है और सम्पूर्ण चौदहवें काण्ड के मंत्र विवाह विषयक हैं तथा अठारहवें काण्ड के मंत्र पितृमेध (अन्त्येष्टि-संस्कार) विषयक हैं।

अथर्ववेद के इन मंत्रों की साधना, उपासना एवं तंत्र-विधान से अध्यात्म-ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और अरिष्टों, अनिष्टों की शान्ति तथा दुरित, दोष, दुर्भाग्य, दुर्गति, दुःख, दारिद्र्य, दैन्य, पाप, शाप, ताप, आधि-व्याधि का निवारण होता है। आपत्तियों, विपत्तियों, संकटों, संघर्षों, पाशजन्य (वरुणपाश, यम-पाश) कष्टों, कृत्या, अभिचार कर्मों, प्रेत बाधाओं, आकस्मिक दुर्घटनाओं से रक्षा होती है।

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा, कौशिक सूत्र, गोपथब्राह्मण, वैतानसूत्र आदि वैदिक ग्रन्थों में आथर्वण-तंत्र-विधान बताए गए हैं, किन्तु उनमें एक तो कर्मकाण्ड का वृहद् जाल है, दूसरे उपयोगी वस्तुओं, औषधियों के ऐसे नाम हैं, जिनकी पहचान आजकल असंभव-सी है। इसलिए हमने यथा शक्ति इस ग्रन्थ में ऐसी प्रयोग-विधियाँ प्रस्तुत की हैं, जो सुगम हैं, साध्य हैं, उपयोगी हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तंत्र-विधान का गूढ़ रहस्य

इस सन्दर्भ में अथर्ववेदीय तन्त्र-विधान के कुछ रहस्य एवं वैचित्र्य का भी दिग्दर्शन करा देना उचित है। जैसे किसी सूक्त के वर्ण्य-विषय के सर्वथा प्रतिकूल उस सूक्त को तांत्रिक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यही नहीं, सूक्त के मंत्रों के अर्थ भी तांत्रिक प्रयोजन से संगति नहीं रखते हैं, फिर भी प्रयोग सर्वथा सफल होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ सूक्त यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

१. प्रथम काण्ड का चतुर्थ सूक्त 'अपांभेषजम्' है। यह सूक्त शान्ति-पुष्टिकर्मों का प्रतिपादन करता है, किन्तु यही सूक्त अर्थोत्थापन (आर्थिक आमदनी बढ़ाने) में प्रयुक्त किया जाता है और बहुत सफल होता है।

२. द्वितीय काण्ड का प्रथम सूक्त 'परमं धाम' है। किन्तु इसी सूक्त से सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। रोग-दोष के कारण का पता लगता है। इसी काण्ड का चौथा सूक्त 'दीर्घायु प्राप्तिः' है; किन्तु इससे चर्म-रोग, विषहरी फोड़ा, औंधा फोड़ा और गलित कुष्ठ रोग दूर किए जाते हैं।

३. तृतीय काण्ड का प्रथम सूक्त 'शत्रुसेना-सम्मोहनम्' है, किन्तु सम्मोहन कर्म के विपरीत इस सूक्त से आग्नेय अस्त्र को सिद्ध करके शत्रु का संहार किया जाता है। यह सूक्त स्वयं आग्नेयास्त्र है, इससे पीली सरसों अभिमंत्रित कर शत्रु पर या शत्रु-दल पर छोड़ देने से उसका पराभव होता है। यही सूक्त न्यायालय में विजय प्रदान कराता है और पशुओं की हर बीमारी दूर करता है।

४. चतुर्थ काण्ड का इकतीसवाँ सूक्त 'सेना निरीक्षणम्' है, किन्तु इसका तान्त्रिक-विधान वशीकरण, उच्चाटन कर्म में तथा युद्ध में आत्मरक्षा के लिए प्रयुक्त होता है।

इसी काण्ड का सातवाँ और आठवाँ सूक्त 'शत्रुनाशक' विषय प्रधान है, किन्तु इनके प्रयोग देवता के आवाहन में, भूत-प्रेत की बाधा दूर करने में तथा विपुल धन, यश प्राप्त करने के निमित्त किए जाते हैं।

५. पाँचवें काण्ड का छठा सूक्त 'ब्रह्म विद्या' विषयक है, किन्तु इस सूक्त के मंत्रों से मात्र जलाभिसेचन करने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

इसी काण्ड के तीसवें सूक्त का विषय 'दीर्घायुष्य' है; किन्तु इस सूक्त के तेरहवें मंत्र से भूले, भटके, खोए हुए, भागे हुए मनुष्य या पशु का आवाहन कर उसे वापस बुलाया जाता है।

६. छठे काण्ड के प्रथम सूक्त का विषय है 'अमृत प्रदाता', किन्तु इस सूक्त से योग-संबंधी षट्चक्रों की साधना कर कुण्डलिनी जाग्रत की जाती है।

७. सातवें काण्ड के ९वें सूक्त का विषय 'स्वस्तिदा पूषा' है और ग्यारहवें सूक्त का विषय है—'राष्ट्र सभा'। इन दोनों सूक्तों के विषयों से भिन्न प्रयोग यह है कि यदि कोई आदमी भाग गया हो, खो गया हो और उसका कुछ भी पता न चलता हो, तो उसके उपयोग में लाए गए वस्त्र पर घी से सने हुए सिन्दूर से उसका नाम लिखकर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस वस्त्र पर कुश-अपामार्ग द्वारा जल छिड़कते हुए ग्यारहवें सूक्त के चौथे मंत्र से उस व्यक्ति के सूक्ष्म प्राणों का आवाहन करें, फिर उस वस्त्र को पत्थर की चक्की या चर्खे पर रख कर ९वें सूक्त के एक से लेकर तीन तक के मंत्रों को पढ़ते हुए चक्की या चर्खा को उलटा घुमाए। प्रतिदिन सुबह-शाम पन्द्रह मिनट तक ऐसा करने से अधिक से अधिक ७ दिन में वह आदमी आ जाता है या उसका पता चल जाता है। खोए हुए पशुओं पर भी यह प्रयोग भोजपत्र पर पशु का नाम लिख कर उसके खूंटे के पास उपर्युक्त विधि से प्रयोग करने पर पशु लौट आता है या उसका पता चल जाता है।

वस्तुतः अथर्ववेद के मंत्र शक्ति-सम्पन्न और स्पन्दनशील हैं। इनसे ऐसे चमत्कार होना अस्वाभाविक नहीं है। आथर्वण-प्रयोग प्रायः आदेशपरक, संकल्पपरक और आवेशपरक हैं और स्वतः प्रामाण्य होने से इनके द्वारा किए गए प्रयोग तत्काल प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

फिर भी आथर्वण तंत्र में कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके तर्क-संगत उत्तर देना बहुत कठिन है। जैसे कोई ऐसा रोगी या किसी ऐसी बाधा से पीड़ित व्यक्ति है, जिसके रोग का निदान, बाधा या पीड़ा का निवारण विशेषज्ञों द्वारा नहीं हो पाता है; किन्तु वही अज्ञात रोग या पीड़ा अथर्ववेदीय तंत्र-विधान से कुछ ही घंटे में या कुछ ही दिन में दूर हो जाती है। रोगी के पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर यदि कोई व्यक्ति प्रयोक्ता से पूछे कि यह सब कैसे हुआ तो वह यथार्थ उत्तर देने में असमर्थ होगा, क्योंकि जो कुछ चमत्कार हुआ है, उसके मूल में निहित एक अदृश्य सूत्र है, जिसे साधारण प्रयोक्ता भी नहीं समझ पाता है। इसे समझने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है, जो अथर्ववेद की 'प्राण विद्या', 'त्वरिता विद्या' तथा मंत्रों के विषयों, रहस्यार्थों का ज्ञाता होगा।

अथर्ववेदीय रहस्य-विद्या अत्यन्त व्यापक और विराट् है। इस रहस्य-विज्ञान में निरामय, सुखी, समृद्ध जीवन बिताने, सद्गति प्राप्त करने, कामनाओं की पूर्ति के लिए अनेकानेक विधि-विधान हैं। मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई पक्ष शेष नहीं बचा है, जिसे सजाने, सँवारने और सुधारने का विधान अथर्ववेद में न हो। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त कराने में अथर्ववेदीय तंत्र-विज्ञान अव्यर्थ साधन है।

वेदार्थ का रहस्य-विज्ञान

इस स्थल पर यह स्पष्ट कर देना उचित है कि प्रस्तुत ग्रंथ में किसी भी प्रयोजन के लिए प्रयोग-विधि में जो मंत्र दिए गए हैं, उनके पदार्थ पर पाठक यदि ध्यान देंगे तो भ्रम में पड़ जाएँगे। कदाचित् अनास्था भी उत्पन्न हो सकती है। भाषान्तरों, अनुवादों से वेदार्थ समझना वृथा श्रम होगा। वस्तुतः वेद-मंत्रों के अर्थ समझने के लिए वेद की ही सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण हैं, उनका रहस्यार्थ बाहर का साहित्य नहीं प्रकट कर सकता। वेदार्थ या वेद-मंत्रों के पारिभाषिक शब्दों के परिभाषार्थ उनकी मूल संहिताओं से ही समझे जा सकते हैं। वेद में ज्ञान और विज्ञान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोनों का समाहार है। वेद-मंत्रों के अर्थ करने से पहले वेदार्थ-विज्ञान समझना अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

चारों वेदों के वैज्ञानिक विषय वेदों के सूक्तों में देवताओं के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे अथर्ववेद (१०।७।२७) में ३३ देवों का स्पष्ट वर्णन है। इन देवों के संबंध में अथर्ववेद (१०।७।२३) का कथन है कि 'ये ३३ देव समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण करते हैं। इन ३३ देवों को केवल ब्रह्मविद् ही जान पाते हैं।' शतपथ ब्राह्मण में ३३ देवों के नाम इस प्रकार बताए गए हैं—

८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ इन्द्र और १ प्रजापति। ये नाम पारिभाषिक हैं। इन्हें समझने के लिए वेदार्थ-विज्ञान की सहायता लेनी चाहिए। जैसे केवल ८ वसुओं पर ही विचार किया जाए तो अग्नि, आदित्य, द्यौः, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, अन्तरिक्ष और पृथिवी ये आठ वसु हैं। इन्हें वसु इसलिए कहा जाता है कि सभी पदार्थ इन्हीं पर बसते हैं। ये ही सब के आश्रय हैं। √वस् धातु से वसु शब्द निष्पन्न होता है। √वस् का अर्थ है—इच्छा करना, आच्छादन करना और प्रकाशित करना। अवेस्ता का 'वोहू' या 'वहु' वसु शब्द का समानार्थक है, जो 'वोहु' 'मनह्' में है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि जल में अनेक प्रकार के जलचर जीव निवास करते हैं, फिर जल को 'वसु' क्यों नहीं माना गया है ? और जब 'द्यौः' कह दिया गया है तो उसमें आदित्य भी आ जाता है, तब आदित्य को अलग एक वसु क्यों माना गया है तथा वसुओं में एक आदित्य मान लेने पर बारह आदित्य देवों के साथ क्यों गिनाए गए हैं ?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि ३३ देवों के नाम पारिभाषिक हैं, किन्तु इनके अर्थ करने वालों ने आदित्य का अर्थ सूर्यलोक और १२ आदित्यों के अर्थ बारह महीना निश्चित किया तो इन रूढ़ अर्थों को परंपरागत अब तक स्वीकार किया जा रहा है। वेद के उक्त पारिभाषिक शब्द किसी वस्तु-विशेष के नाम नहीं, बल्कि वर्ग-विशेष के नाम हैं, जिनमें साधर्म्य है। वर्ग का नाम उस वस्तु के नाम पर रखा जाता है, जो अधिक उपयोग में आने के कारण व्यवहार में प्रचलित होता है। जैसे वैदिक परिभाषा के अनुसार पशुओं के दो वर्ग हैं—एक 'गौः' दूसरा 'मृग'। अथर्ववेद (६।५२।२) से प्रमाणित है कि जितने भी पालतू पशु हैं, वे 'गौ वर्ग' के अन्तर्गत हैं और जंगली पशु 'मृग वर्ग' में आते हैं। गौ वर्ग में गाय के अतिरिक्त भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, गधा, खच्चर, कुत्ता आदि सभी पालतू पशु हैं। पालतू पशुओं को अथर्ववेद में 'पशुधन' कहा गया है। इसी प्रकार 'मृग' शब्द केवल 'हिरन' के लिए ही नहीं, सिंह, व्याघ्र, शृगाल आदि सम्पूर्ण जंगली जानवरों के लिए प्रयुक्त होता है। बन्दर को संस्कृत भाषा में 'शाखामृग' कहा जाता है और भ्रमर (भौंरा) को षट्पद। किन्तु वैदिक भाषा में 'मकड़ी' को छोड़कर चींटा, चींटी, तितली, मक्खी, जोरई, टिड्डी आदि सभी कीट-पतंग षट्पद कहे जाते हैं।

वैदिक संज्ञा-परिभाषाओं के नामकरण की पद्धति यह है कि साधर्म्यवाली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तुओं को एकत्र कर उनके वर्ग का एक नाम रख दिया जाता है। इस नियम के अनुसार अथर्ववेद में 'इन्द्र', 'आपः', 'ओषधिः', 'द्यौः', 'द्यावा', 'पृथिवी', 'मित्र', 'वरुण', 'अश्व', 'गौः' आदि जो नाम आए हैं, वे वर्ग-विशेष के हैं, वस्तु-विशेष के नहीं। वेद-मंत्रों के अर्थ करते समय इस नियम का भी ध्यान रखा जाता है।

वेद-मंत्र व्याकरण से बँधे हुए नहीं होते हैं, अतः केवल व्याकरण के आधार पर उनके रहस्यार्थों का उद्घाटन नहीं हो सकता। वेद-मंत्रों के अर्थ उनके ऋषि, देवता, छन्द और स्वर से प्रकट हुआ करते हैं। अधिकतर वेदों के अध्येता यही मानते हैं कि जो ऋषि जिस मंत्र का द्रष्टा होता है, वही उस मंत्र का ऋषि है, जबकि 'ऋषि' वेद-मंत्रों का प्रज्ञापक होता है। यास्क ने 'ऋषि' पद का निर्वचन √ऋष् से करके ऋषि का अर्थ 'दर्शन' किया है, किन्तु 'धातु-पाठ' में √ऋष् गति के अर्थ में पढ़ा गया है। 'निघण्टु' (५।६।२५) में तथा निघण्टु के अतिरिक्त पाठ (५।५।१४) के 'सप्तऋषयः' में 'ऋषि' पदनाम है। शतपथ ब्राह्मण (१।७।२।३) में ऋषि-ऋण की उत्पत्ति अनूचानत्व अर्थात् ऋषियों—वेद-मंत्रों के अर्थों के व्याख्यान और उपदेश से बताई गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ऋषि' पद का एक अर्थ 'वेदमंत्रार्थ' भी होता है।

वस्तुतः यास्क का 'ऋषिर्दर्शनात्' निर्वचन केवल एक ही अर्थ का बोधक है और 'दर्शन' पद लाक्षणिक अर्थ का बोधक है। इस अर्थ के अनुसार यह सिद्ध होता है कि 'ऋषि पद मंत्र के अर्थ का सार' है। वस्तुतः 'ऋषि' पद अनेकार्थक है। मंत्रों के विषय, उनकी परिस्थिति जैसी होती है, उसी के अनुसार ऋषि पद का अर्थ हुआ करता है। वेद-मंत्रों के पद नित्य अर्थ का ही प्रतिपादन किया करते हैं, अनित्य अर्थ का नहीं।

वेदार्थ ज्ञान के लिए ऋषि के बाद मंत्र के देवता का ज्ञान आवश्यक है। सर्वानुक्रमणी (२।५) में बताया गया है कि मंत्र जिस विषय का वर्णन करता है, उस विषय को 'देवता' कहते हैं। ऋषि और देवता के बाद वेदार्थ ज्ञान के सहायक छन्द होते हैं। वेद-मंत्रों के अनुष्टुप्, बृहती, उष्णिक् गायत्री आदि छन्द होते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों में देवता-वाचक पदों के समान ही छन्दोवाचक पदों के भी विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जैसे—अनुष्टुप् छन्द के मित्रस्य पत्नी, गायत्री, वाक्, पृथिवीपादौ, प्रजापतिः, रात्रयः, अश्वः, आपः, वृष्टिः, रात्रिः, उदीचीदिक्, सत्यानृते, सक्थ्यौ आदि अर्थ दिए गए हैं। वेद-मंत्रों का अर्थ करते समय उन मंत्रों के विषय, सन्दर्भ और परिवेश के अनुसार छन्दों के अर्थों की भी सहायता लेनी चाहिए।

ऋषि, देवता, छन्द की भाँति वेदार्थ करने में स्वर भी सहायक होते हैं। 'निघण्टु' (२।१४) में 'स्वरति पद' गत्यर्थक आख्यानों में पढ़ा गया है। अतः स्वर शब्द का निर्वचन 'स्वर्यन्तेऽर्था एभिः' होगा। अर्थात् जिनसे पदों के अर्थ जाने जाएँ, वे 'स्वर' कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में स्वर को 'उच्चारण धर्म' कहा जाता है। निरुक्तकार ने बताया है कि उदात्त स्वर तीव्र होता है, अनुदात्त अल्प और स्वरित उदात्त अनुदात्त का समाहार होता है। स्वर का पदार्थ और वाक्यार्थ पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। वैदिक भाषा में स्वर-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है। अर्थ के समान होने पर शब्द का स्वर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वत्र समान रहता है। जब समान स्वर न दिखाई पड़े, तब शब्द का अर्थ दूसरा करना चाहिए। वेद-मंत्र के किसी भी पद के सही अर्थ का निर्णय स्वर पर ध्यान दिए बिना नहीं हो सकता। जैसे—

भ्रातृव्यस्य वधाय (मा० सं० १।१८)

भ्रातृव्य शब्द के दो अर्थ हैं। एक शत्रु, दूसरा भतीजा। स्वर रहित भ्रातृव्य शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में केवल भतीजा होता है। और यदि वेद में भ्रातृव्य शब्द बिना स्वर का लिखा जाए, तो इसका क्या अर्थ होगा? यह सन्दिग्ध है। और स्वर प्रक्रिया का आश्रय लेने पर स्पष्ट हो जाता है कि आद्युदात्त भ्रातृव्य पद का अर्थ शत्रु है और अन्त स्वरित का अर्थ भतीजा। उपर्युक्त वेद-मंत्र का भ्रातृव्य पद आद्युदात्त है, अतः इसका अर्थ हुआ 'शत्रु के वध के लिए हवन करता हूँ।' स्वर प्रक्रिया का अनुगमन न करके यदि इसका अर्थ किया जाए तो 'भतीजे का वध करने के लिए हवन करता हूँ' यह अर्थ होगा, जो नितान्त विपरीत और अशुद्ध अर्थ हो जाएगा।

जहाँ कहीं वेद-मंत्र का अर्थ संदिग्ध होता है, वहाँ पदच्छेद प्रामाणिक नहीं माना जाता, बल्कि 'स्वर' से ही अर्थ और पदच्छेद का निश्चय किया जाता है और वेद-मंत्रों का संहिता पाठ ही प्रामाणिक माना जाता है, पदच्छेदयुक्त पाठ प्रामाणिक नहीं माना गया है। शब्द के सूक्ष्म अर्थ तक पहुँचने में, वेद-मंत्रों के रहस्यार्थ प्रकट करने में स्वर-शास्त्र प्रमुख सहायक होता है। वेद-भाष्यकार वेङ्कट माधव ने अपनी कृति स्वरानुक्रमणी (१।८) में लिखा है—

'अन्धकार में दीपकों की सहायता से चलता हुआ मनुष्य मार्ग में ठोकर नहीं खाता है, इसी प्रकार स्वरों की सहायता से किए गए अर्थ स्फुट (सन्देह रहित) होते हैं।'

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद-मंत्र का 'ऋषि' मंत्र के अर्थ का सार है। मंत्र का 'देवता' उसका विषय है, मंत्र का 'छन्द' उसका नियामक है और 'स्वर' वेद-मंत्रों के सूक्ष्म, रहस्यार्थ प्रकट करने के साधन हैं।

'अन्ये च दृष्टलिङ्गा ऋषयः' इस सूत्र के अनुसार जहाँ-जहाँ, जो-जो अर्थ-दर्शन हो, उसे वहाँ से निकाल लेना चाहिए। जिन सूक्तों में वैकल्पिक ऋषि होते हैं, उन सूक्तों में दोनों ऋषियों के वाचक पदों के अर्थ प्रकट होंगे और वहाँ कोई विकल्प नहीं रहेगा। इसी प्रकार देवता और छन्दों की संगति बैठाई जा सकती है।

अथर्ववेदीय-तंत्र एक सशक्त अन्तःप्रक्रिया

असाध्य रोग, भयंकर दुर्घटना, मारण, कृत्या आदि अभिचार कर्म, दुर्भाग्य, दैन्य और प्रेत बाधा, पागलपन केवल शिर पर जल छिड़कने से या शिर पर हाथ रखने से अथवा मणियाँ (ताबीज) बाँधने से कैसे दूर हो जाते हैं—यह पूछने पर इसका आधा ही उत्तर यह दिया जा सकता है कि अथर्ववेद के मंत्रों का चमत्कार है, किन्तु अथर्ववेदीय तंत्र-विज्ञान की परोक्ष प्रक्रिया और मंत्र-शक्ति के चमत्कार को आधुनिक विज्ञान स्वीकार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं करता है। 'बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता है'—जो लोग इस सिद्धान्त पर विश्वास रखते हैं, उनके लिए अथर्ववेदीय तंत्र-विज्ञान न चमत्कार है और न संदिग्ध है। इसका कारण व्यवस्था है, मंत्र-शक्ति का प्रभाव है और अथर्ववेदीय तंत्र एक सशक्त अन्तःप्रक्रिया है। सभी अवस्थाओं में वेद-मंत्रों के शब्दों में एक विशिष्ट शक्ति निहित रहती है। प्रयोजक जब किसी पर इन मंत्रों द्वारा कोई प्रयोग करता है, तब उसके संकल्प के साथ मंत्र की शक्ति उसी प्रकार प्रज्ज्वलित होती है, जैसे ईंधन के सहारे आग जलती है और प्रयोजक का संकल्प मंत्र-शक्ति में समाहित होकर, साकार होकर प्रत्यक्ष खड़ा हो जाता है। यही कारण है, जब किसी भूत-प्रेत-बाधाग्रस्त व्यक्ति पर प्रयोग किया जाता है, तो पीड़ित करने वाली मृतात्मा प्रयोजक के सामने खड़ी हो जाती है, जिसे केवल प्रयोजक ही देख पाता है। इसी प्रकार अदृश्य रोग, जो एक्सरे द्वारा देखे जा सकते हैं, प्रयोजक उन्हें प्रयोग-काल में देखता है। इतना ही नहीं, दूरातिदूर घटित घटना और कारण भी प्रयोजक समझ लेता है।

इस प्रकार के ज्ञान के मूल में प्रयोजक के प्रत्यक्षीकरण की शक्ति ही कारण है। यह शक्ति प्राण-विद्या की साधना से प्राप्त की जाती है। 'प्राण' और 'अपान' इन दो प्राणों का संयम ही प्राण-विद्या की साधना है, जो अथर्ववेद में बताई गई है।

अथर्ववेदीय तंत्र-विज्ञान केवल भौतिक लक्ष्य और रोग-निवृत्ति तक ही सीमित नहीं है। इसकी साधना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसका संबंध अध्यात्म-साधना और योग-साधना से भी है। अथर्ववेदीय तंत्र-विधान से जलावसेचन, हस्ताभिमर्श, मणि-बन्धन और हवन से रोग-दोष, दैन्य, दारिद्र्य, भूत-प्रेत-बाधा आदि सभी प्रकार के कष्टों, संकटों का निवारण कैसे हो जाता है; इसका समाधान अथर्ववेद से ही इस प्रकार किया जा सकता है—

मानव-शरीर की निर्धारक शक्ति प्राण है। यह प्राणशक्ति नाडी-जाल से सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित हुआ करती है। जहाँ कहीं शरीर के किसी अंग में प्राणशक्ति का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, वहीं रोग उत्पन्न हुआ करता है। कभी कोई व्यक्ति देखने में भला-चंगा है, किन्तु वह किसी ऐसे रोग से आक्रान्त रहता है कि खिन्न, भयभीत, शंकालु, अस्थिर या निष्क्रिय बना रहता है। उसके रोग का निदान न तो शरीर-विज्ञान के विशेषज्ञ कर पाते हैं, और न मनोविज्ञान के चिकित्सक। किन्तु अथर्ववेदीय विज्ञान से ऐसे रोगों का निदान आसानी से हो जाया करता है। अथर्ववेदीय तंत्रविद् प्रयोजक यह समझता है कि रोगी की किसी न किसी नाडी में प्राणशक्ति अवरुद्ध हो गई है। वैसे तो शरीर में बहत्तर हजार नाडियाँ होती हैं, किन्तु नाडियों के मुख्य केन्द्र हाथ, पैर और शिर हुआ करते हैं। प्रयोजक रोगी के शिर पर हाथ रख कर अथवा उसका हाथ पकड़ कर अपनी अन्तः-प्रेरणा शक्ति से यह जान लेता है कि प्राणशक्ति का अवरोध कहाँ पर है। जिस नाडी में अवरोध होगा, उस नाडी की प्रकृति के अनुसार रोग होता है और ऐसे रोगों के निवारण के लिए अथर्ववेद में भिन्न-भिन्न मंत्र और उनके भिन्न प्रयोग हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेदीय प्राण-विद्या से बाह्य लक्षणों के अनुसार भी निदान किया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के पेट में भयंकर शूल उठता है या उसके यकृत में सूजन है, तिल्ली में पीड़ा होती है, हृदय में में शूल उठता है, अथवा रक्त का वमन होता है, तो ऐसे व्यक्ति नितान्त भावुक होते हैं। उनकी प्रकृति के अनुसार उन्हें अथर्ववेद के आदेश-मंत्रों से अथवा रक्षा-करण्ड या मणि बाँधकर पूर्ण रूप से स्वस्थ किया जा सकता है। यह अनुभव सिद्ध है कि भावुक-हृदय स्त्री-पुरुषों पर प्रायः भूत-प्रेत भी आविष्ट हुआ करते हैं।

अथर्ववेदीय प्राणविद्या एक गुह्य विद्या है। इसके द्वारा शरीर की विभिन्न चेतन-अवचेतन क्रियाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है। इसकी साधना षट्चक्र-साधना द्वारा की जाती है।

अथर्ववेदीय तंत्र-विज्ञान ओषधियों की उपेक्षा नहीं करता है। रोगोपशमन के लिए ओषधियों को भी महत्त्व प्रदान किया गया है। अथर्ववेद में दिव्य ओषधियों के नाम, गुण और उपयोग बताए गए हैं। अथर्ववेदीय ओषधियों का समवाय संबंध मंत्रों से रहता है। ओषधियों को खोद कर, उखाड़ कर लाने से लेकर उनके सेवन करने तक मंत्रों के प्रयोग हैं। अथर्ववेद में यक्ष्मरोग, कुष्ठरोग, कासरोग, शिरोरोग, वातव्याधि, विसर्परोग, आमवात, सर्पदंश, तक्म (ज्वर), मानसिक, शारीरिक आदि अनेक रोगों की ओषधियाँ और उनके उत्पत्ति-स्थान भी बताए गए हैं।

कुछ बीमारियाँ वंश-परंपरा से हुआ करती हैं, जिन्हें अथर्ववेद में 'क्षेत्रिय रोग' कहा गया है और कुछ बीमारियाँ पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप हुआ करती है, जिन्हें 'पाप-शाप जन्य' कहा गया है। बवासीर, भगन्दर, नेत्र-विकार, गठिया, कुष्ठ आदि रोग क्षेत्रिय कहे जाते हैं और धुआँ लगते ही बेहोश हो जाना, अकस्मात् दम घुटने लगना; नदी, कुआँ देख कर, जलती हुई आग देख कर भयभीत होना आदि रोगों को आकस्मिक या मानसिक बीमारी कह कर नहीं टाला जा सकता। ऐसे रोग पूर्वजन्म की घटनाओं और कर्मों से प्रभावित हुआ करते हैं। ऐसी बीमारियों को अब सम्मोहन-क्रियाओं द्वारा पश्चिमी देशों में दूर किया जाता है। परामनोविज्ञानी भी इसे स्वीकार करते हैं, किन्तु पदार्थविज्ञानी नकार रहे हैं, इसलिए कि वह पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करते हैं। उनकी मान्यता है कि स्मृति का आधार मस्तिष्क है, जो नाशवान है। मृत्यु हो जाने के बाद मस्तिष्क समाप्त हो जाता है, तब पूर्वजन्म की स्मृति कहाँ रह सकती है? वह तो मस्तिष्क के साथ ही समाप्त हो जाती है। किन्तु वह यह भूल जाते हैं कि आधुनिक टेलीपैथी, योगियों का शक्तिपात ऐसी मानसिक क्रियाएँ हैं, जिनका मस्तिष्क से कोई संबंध नहीं रहता है और वह दिक्-काल तथा कारण से परे हैं।

भारतीय अध्यात्म-दर्शन जड़ और चेतन में कोई भिन्नता नहीं रखता है। जिसे जड़ कहा जाता है, वह एक प्रकार की मूर्च्छित चेतना है और जिसे चेतन कहा जाता है, वह जाग्रत जड़ है। जब कोई जड़ संज्ञा ग्रहण करता है और जो पदार्थ क्रियाशील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहता है, उसे 'चेतन' कहा जाता है। तात्पर्य यह कि जो जड़ है, वह चेतन है और जो चेतन है, वह जड़ है।

जब तक हम जड़ और चेतन को अलग-अलग समझेंगे, तब तक अध्यात्म और विज्ञान के बीच भेद करते रहेंगे। भारतीय दर्शन की मान्यता है कि जब जड़ और चेतन में भेद नहीं है, तब धर्म या अध्यात्म और विज्ञान में भेद रहेगा ही नहीं। आधुनिक विज्ञान और अध्यात्मवाद में भेद मात्र इतना है कि आधुनिक विज्ञान किसी भी वस्तु के प्रारंभिक रूप को स्वीकार करता है और अध्यात्मवाद वस्तु के अन्तिम रूप को मानता है। प्रारम्भिक रूप को मानने से आधुनिक विज्ञान वस्तु के अन्तिम से वंचित रह जाता है और अध्यात्मवाद द्वारा वस्तु के अन्तिम रूप को स्वीकार करने से उसका प्रारम्भिक रूप अपने आप उपलब्ध हो जाता है। इसीलिए अध्यात्म दृष्टि से सब कुछ चेतन है। सब कुछ चेतनमय है। विश्व का समग्र अस्तित्व, समस्त पदार्थ चेतन हैं, चेतनामय हैं। आत्मा परम चेतन है और मन चेतन है।

परम चेतन (आत्मा) का सक्रिय रूप ही मन है। आत्मा नित्य है, कभी नष्ट नहीं होता है, उसका सक्रिय रूप मन भी नित्य है, नाशवान नहीं है।

भारतीय दर्शन में मन के कई रूप मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार बताए गए हैं। बाहर से तो ये रूप अलग-अलग हैं, किन्तु हैं सब एक ही और अभिन्न। व्यवहार में मन कई रूपों से काम करता है। जब मन में यह भाव आता है कि मैं ही कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता हूँ, तब वह अहंकार कहलाता है। मन का यह एक रूप है।

जब मन चिन्तन-मनन रहित, विचार शून्य होकर किसी भावना की तरंग में बहता है, तब उसे चित्त कहा जाता है। यह मन का दूसरा रूप है। और जब मन किसी उद्देश्य को लेकर किसी दिशा में सोचता है, तब वह बुद्धि कहलाता है। मन का यह तीसरा रूप है। और जब आत्मा विक्षुब्ध होता है, तब उस विक्षुब्ध अवस्था का नाम मन है। यह मन का चौथा रूप है।

इस प्रकार एक ही मन चार प्रकार का बन जाता है। मन जब शान्त, निश्चेष्ट, विक्षुब्ध रहित होता है, तो वह आत्मा कहलाता है। तात्पर्य यह कि आत्मा और मन भिन्न नहीं हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

चेतना के दो रूप हैं। एक मन, दूसरा आत्मा। जो रूप चंचल, अशान्त, विक्षुब्ध रहता है, वह 'मन' है और जो रूप शान्त है, वह आत्मा है। अतः पुनर्जन्म होने पर पूर्व जन्म का मन रहता है। पूर्वाभास की घटनाएँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आधुनिक विज्ञान पुनर्जन्म की उन घटनाओं की व्याख्या कैसे करेगा, जिनमें पूर्वजन्म की घटनाओं की स्मृतियाँ, स्वभाव, रुचि के साथ शारीरिक गुण भी साक्षात् मिलते हैं। मन केवल इसी जन्म का नहीं होता है, बल्कि जन्म-जन्मान्तरों का उस पर पूरा प्रभाव रहता है।

अध्यात्म जब चिन्तन और विश्लेषण की चरम-सीमा पर पहुँचा, तो उसे आत्मा का साक्षात्कार हुआ और उसने अपने अनुभव से यह निष्कर्ष निकाला कि जो कुछ है, वह केवल आत्मा है, आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मा ही 'एनर्जी' है, आत्मा ही ऊर्जा है। आत्मा का एक भाग घनीभूत रूप ऊर्जा है।

आधुनिक विज्ञान ने जब पदार्थ (तत्त्व) का विश्लेषण किया, तो पदार्थ का अस्तित्व समाप्त हो गया, केवल तत्त्व (पदार्थ) की एनर्जी—ऊर्जा शेष रही। अणु का विस्फोट करने पर केवल ऊर्जा के कण शेष रह जाते हैं और परमाणु का विस्फोट होने पर एलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन और न्यूट्रॉन की चुम्बकीय तरंगें शेष रह जाती हैं। ऊर्जा तत्त्व की सीमा से बाहर की वस्तु है, इसे आधुनिक विज्ञान 'क्वाण्टा' कहता है। क्वाण्टा पदार्थ का वह रूप है, जिसमें वह सूक्ष्म होकर तरङ्ग या लहर के रूप में परिणत हो जाता है।

निष्कर्ष यह कि अध्यात्मवाद जिसे आत्मा कहता है, उसी को पदार्थवाद (आधुनिक विज्ञानवाद) ऊर्जा कहता है। धर्म या अध्यात्म और आधुनिक विज्ञान की चरम उपलब्धि एक ही है और वह ऊर्जा है। ऊर्जा ही आत्मा है। यह समन्वय अध्यात्म और आधुनिक विज्ञान के बीच की दूरी को समाप्त कर देता है; किन्तु जब तक आधुनिक विज्ञान जड़ और चेतन को अलग-अलग मानेगा, तब तक अध्यात्म या धर्म तथा आधुनिक विज्ञान के बीच भेद बना रहेगा।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति—जैसे एक ही सत्ता के विभिन्न रूप हैं, वैसे ही एक ही चेतना के शरीर, मन और आत्मा विभिन्न रूप हैं; किन्तु तत्त्व एक ही है और उसकी अभिव्यक्तियाँ अनन्त हैं। सत्य एक है, किन्तु उसके रूप अनेक हैं। इसी तरह शरीर और मन के बीच, मन तथा आत्मा के बीच और आत्मा तथा परमात्मा के बीच जो अन्तर बनाता है, भिन्नता बतलाता है, वह है हमारा विचार। इसका कारण यह है कि विचार समग्र को एक ही समय में पूर्ण रूप से धारण नहीं कर पाता है। विचार तीव्रगामी होता है, हमारा मन उसके एक अणु अंश को पकड़ पाता है और जितना अंश पकड़ पाता है, उसी के द्वारा हम सत्य का अनुसन्धान करते हैं। यही कारण है कि सत्य हमें पूर्ण रूप से नहीं, खण्ड-खण्ड में दिखाई पड़ता है। इसीलिए अध्यात्म में ध्यान की पद्धति अपनाई गई है। ध्यानस्थ योगी विचार रहित हो जाता है, वह निर्विकार, निर्विकल्प अवस्था को जब प्राप्त हो जाता है, तब सत्य का साक्षात्कार समग्र रूप में करता है। यही समाधि अवस्था है। समाधिस्थ योगी को 'एक' 'अनन्त' और 'अनन्त' 'एक' दिखाई पड़ता है। यही सत्य का, ब्रह्म का, आत्मा का, परमात्मा का विराट् रूप है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. अथर्ववेदीय मंत्रविद्या

अथर्ववेद में ब्रह्मविद्या, भैषज्यविद्या, प्राणविद्या, अध्यात्मविद्या, योगविद्या विषयक अनेक सूक्त हैं। ब्रह्मविद्या का विशद निरूपण होने से अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद'[1] भी कहा जाता है। अथर्ववेद के ब्रह्म सूक्त, वरुण सूक्त, केन सूक्त, स्कम्भ सूक्त, उच्छिष्ट सूक्त और अथर्व सूक्त में ब्रह्मविद्या[2] का प्रतिपादन गुप्त एवं गहन विद्या के रूप में किया गया है। गोपथब्राह्मण[3] एवं ताण्ड्यब्राह्मण[4] से ज्ञात है कि अथर्ववेद में प्राणिमात्र के शारीरिक, मानसिक रोगों और आधि-व्याधि के निवारण के प्रयोग बताए गए हैं। ताण्ड्य-ब्राह्मण[5] का यह भी कथन है कि अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट अथर्ववेद के मंत्र देवों के लिए भेषज प्रतिपादक हैं, जिनसे आरोग्य लाभ होता है। भेषज-प्रधान होने से अथर्ववेद आयुर्वेद[6] का उद्गम स्थल माना जाता है। अथर्ववेद में ही अथर्ववेद को भेषजा[7] कहा गया है।

प्राणविद्या[8] के निरूपण में अथर्ववेद का कथन है कि आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी और मानुषी ओषधि-चिकित्सा तभी तक उपयोगी होती है, जब तक शरीर में स्थित प्राण इन्द्रियों को प्रेरित करते रहते हैं; क्योंकि शरीर से प्राण निकल जाने का नाम मृत्यु है, इसलिए शरीर से प्राण अलग न होने पाएँ, इसकी साधना अथर्ववेद में बताई गई है। अथर्ववेद[9] में प्राणविद्या की साधना के उपदेश में कहा गया है कि मनुष्य को अपनी प्राणशक्ति का संरक्षण करना चाहिए, अपने जीवन को मंगलमय बनाने के लिए प्राणों की साधना करनी चाहिए। निर्ऋति (दुर्गति) के जालों से बचने के लिए, अभ्युदय, उन्नति, दीर्घजीवन और श्री-कीर्ति, विजय, विभूति प्राप्त करने के लिए प्राणविद्या की साधना करनी चाहिए।

अध्यात्मविद्या को अथर्ववेद में गुह्य आध्यात्मिक विद्या कहा गया है। गुह्य विद्या का तात्पर्य है, गूढ़ तत्त्वों का ज्ञान कराने वाली विद्या। जैसे हम अपने स्थूल देह के अंग-अंग को देख सकते हैं। एक्स-रे द्वारा शरीर के अन्दर भी देख लेते हैं, परन्तु

---

१. अथर्व० का० ११ सू०५। वही ७।५३। गो ब्रा० २।१६
२. अथर्व० का० १५ सू०६ मंत्र ८ तथा वही २।२।१, ४।१, १०।७-८, ११।७। ५।११, १०।२
३. गो० पूवार्द्ध ३।४
४. ता० ब्रा० १२।८।१०
५. वही १२।८।१२
६. सुश्रुत० सूत्र स्थान अ०१०
७. अथर्व० ११।६।११४
८. वही ११।४।१६, २६
९. वही १९।४४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारे ही शरीर में गुह्य रूप से स्थित आत्मा को हम नहीं देख पाते हैं। जितना देह का अस्तित्व सत्य है, उससे अधिक सत्य देही (आत्मा) का अस्तित्व है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् के अन्दर व्याप्त गुह्य तत्त्व को समझने के लिए अथर्ववेद की गुह्य अध्यात्म विद्या साधक और जिज्ञासु को सहायता प्रदान करती है। अध्यात्म विद्या का विशद निरूपण अथर्ववेद के लगभग ७५ सूक्तों में किया गया है।

योगविद्या का निरूपण करते हुए अथर्ववेद मानव-शरीर को देवताओं की पुरी अयोध्या कह कर यह उपदेश देता है कि आठ चक्रों, नौ द्वारों से युक्त देवताओं की नगरी अयोध्या में तब तक देवासुर संग्राम नहीं होता है, जब तक यह नगरी देवताओं के अधीन रहती है और शान्ति का रामराज्य रहता है।

शरीर में मूलाधार आदि अष्टचक्र हैं और इसके नौ द्वार, नौ इद्रियाँ हैं। इस शरीर रूपी अयोध्या (अ-योध्या) नगरी के हृदय-स्थल में प्रकाशमय स्वर्ग है। यही यम, नियम, प्रत्याहार, प्राणायाम आदि साधनों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला स्थान है। शरीर के हृदय-स्थल का प्राप्तव्य स्वर्ग तो सभी प्राणियों में रहता है, किन्तु यह उन्हीं को प्राप्त होता है, जो साधना द्वारा इसमें प्रवेश करने की इच्छा रखते हैं। आत्म-शक्ति के प्रभाव को जानते हुए उस स्थान को जानना और ज्ञान तथा विवेक से उसमें निवास करना योग साधना से साध्य है।

अथर्ववेद में षट्चक्रों का भेदन कर कुल कुण्डलिनी को जाग्रत करने की प्रक्रिया, प्राणायाम की साधना, पञ्चतत्त्व की साधना और जीव शिव को परम शिव से संयुक्त कराने आदि की अनेक योग-क्रियाओं का निरूपण किया गया है। योग-साधना का मूल उत्स प्राणविद्या की साधना है। प्राणों की साधना द्वारा प्राणविद्या का गुह्यतम ज्ञान प्राप्त कर ऋषियों ने योग विद्या का आविष्कार किया था।

योग मार्ग में प्रवृत्त अध्यात्मनिष्ठ साधक के लिए अथर्ववेद का उपदेश है—

दोषो गाय वृहद्गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥
तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

—काण्ड ६, सूक्त १

—हे आथर्वण ! (अथर्वा के अनुयायी) रात्रि के समय तेजोमय सविता देव की स्तुति कर, अत्यधिक स्तवन कर, तेजोमय ब्रह्म की धारणा कर।

वही एकमेव ब्रह्म भवसागर के मध्य में सत्य की प्रेरणा देने वाला है, वह न शिशु होता है और न वृद्ध होता है, परन्तु वह सदा तरुण बना रहता है। वही सभी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकार के सुख-सौभाग्य को देने वाला है और हिंसा रहित वाणी का प्रवर्त्तक है, उसी का स्तवन कर।

सब का प्रेरक सविता देव, हमें प्रगति के उत्तम पथ पर ले जाने के लिए अमृतमय सुख प्रदान करता है।

उपर्युक्त सूक्त का यह सामान्य अर्थ है। चिन्तन करने पर यह सार निकलता है कि इस सूक्त में परम प्रकाशमान ज्ञानमय ब्रह्म की उपासना, भक्ति करने का उपदेश दिया गया है और यह उपासना नीरव, निस्तब्ध वातावरण में रात में करनी चाहिए।

उस सविता देव की उपासना करने का उपदेश है, जिसके प्रकाश से, शासन से ब्रह्माण्ड के सूर्य प्रकाशित हुआ करते हैं। वह सविता देव वृहत् (सब से बड़ा है), वह द्युमत् (प्रकाशवाला) है, वह देव (दिव्य) है, वह दाता है, प्रकाशक है और ऐश्वर्यों से युक्त है। वह सविता—सबको उत्पन्न करने वाला और सबको ऐश्वर्य देने वाला है। वह सिन्धौ अन्तः—इस संसार समुद्र के गम्भीर स्थान में भी विद्यमान है। वह सत्यस्य सूनुः—सत्य की प्रेरणा देने वाला और सत्य स्वरूप है। वह युवा—सदा तरुण बना रहता है—शक्ति, ओज, स्फूर्ति से सम्पन्न है। वह सुशेवः—उत्तमोत्तम सुख देने वाला अथवा उत्तम प्रकार सेवा करने योग्य है। वह सविता देव अ-द्रोघ-वाक्—अहिंसक वाणी बोलने की प्रेरणा देने वाला है और अमृतानि भूरि साविषत्—अनन्त सुखों को देता रहता है।

उपर्युक्त परमात्मा के दस गुण बताए गए हैं। उपासक, आराधक या साधक को चाहिए कि परमात्मा के इन दस गुणों का चिन्तन, मनन करके मन में, हृदय में, इनकी धारणा करे और परमात्मा के इन गुणों को अपने अन्दर यथाशक्ति धारण करे। परमात्मा के दस गुणों का चिन्तन, मनन करने से उसके तेजोमय स्वरूप का साक्षात्कार साधक को होने लगता है।

यह योग-साधना का विषय है। योगयुक्त उपासक ही परमात्मा के दस गुणों का मनन करता हुआ उसके तेजोमय स्वरूप का साक्षात्कार करता है। नित्य ब्रह्म के तेजोमय प्रकाश का ध्यान, स्मरण करते रहने से योगसिद्ध उन्नति का मार्ग सिद्ध हो जाता है। तेजः पुञ्ज परमात्मा के तेज को अग-जग में सर्वत्र उपस्थित, व्याप्त देखने का अभ्यास करना चाहिए।

परमात्मा के तेजोमय स्वरूप का, ध्यान का अभ्यास करने के साथ ही साधक को अहिंसक वाणी बोलने का व्रत रखना चाहिए। जिन शब्दों में धोखा न हो, द्रोह न हो, कुटिलता, ईर्ष्या न हो, ऐसी वाणी बोलना चाहिए और न कोई हिंसा का कर्म करना या सोचना चाहिए। साधक के लिए अद्रोह-वृत्ति परम आवश्यक है। अद्रोह-वृत्ति केवल द्रोह का निषेध करने वाली ही नहीं बल्कि दूसरों का सुख बढ़ाने वाली हो। दूसरों के सुख, सन्तोष को बढ़ाने के लिए अद्रोह-वृत्ति में आत्मसमर्पण करने की वृत्ति की आवश्यकता होती है।

अहिंसा के साथ सत्य का मार्ग भी बताया गया है। परमात्मा सत्य का प्रवर्त्तक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, सत्य स्वरूप है—यह जानकर साधक को सत्यनिष्ठ बनना चाहिए। आत्मोन्नति के लिए सत्य की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अहिंसा वृत्ति और सत्य निष्ठा इन दो भावनाओं से साधक आत्मोन्नति कर परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। अहिंसा और सत्य ये दो मार्ग हैं, जिनसे मनुष्य का इहलोक तथा परलोक में कल्याण हो सकता है।

यह उपदेश आथर्वण के लिए किया गया है। 'थर्व' के अर्थ हिंसा, कुटिलता, चंचलता, अस्थिरता आदि हैं। अ+थर्व का अर्थ है अकुटिलता, अहिंसा, स्थिरता। जो मनुष्य अकुटिलता, अहिंसा, स्थिरता वृत्ति धारण कर शान्त, दान्त, स्थितप्रज्ञ बन जाता है अर्थात् योगमार्ग का अनुष्ठान करके चित्तवृत्तियों का निरोध करता है, वह अथर्वा कहलाता है और अथर्वा योगमार्ग के अनुयायी आथर्वण कहे जाते हैं।

गुह्य अध्यात्म

अथर्ववेद के काण्ड ५, सूक्त १ के नौ मंत्रों द्वारा गुह्य अध्यात्म-विद्या का उपदेश दिया गया है। यह विद्या अत्यन्त गूढ़ है और इसीलिए इस सूक्त के मंत्रों की भाषा भी अत्यन्त गूढ़ है। प्रत्येक मंत्र गूढ़ अध्यात्म भावों से परिपूर्ण है। मंत्रों के शब्द, वाक्य अत्यन्त दुरूह हैं, इनके अर्थ सहज ही समझ में नहीं आ सकते। मंत्रों के अर्थ सूक्त के ऋषि, देवता और छन्दों के मनन से उद्घाटित होते हैं।

इस सूक्त में निहित अध्यात्म-विद्या का सारांश यह है—

१. मनुष्य को चाहिए कि वह अपने आप को अमर-जीवन-शक्ति से परिपूर्ण होने का अनुभव करे। हीन-भाव, दीन-भाव से रहित बने। सत्य-निष्ठा से अपनी आत्मशक्ति को अदम्य बनाए। अपनी सभी अवस्थाओं को अपने अधीन रखे।

२. सदैव उदात्त विचार, उदात्त व्यक्तित्व और उदात्त जीवन जिए। व्यक्तित्व और विचारों को उदात्त एवं समुन्नत बनाने के लिए श्रेष्ठ कर्म करे। अपने शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति विकसित कर उन पर नियंत्रण रखे।

३. गुह्यवाणी के गुह्य सन्देश को सुन कर उसके अनुसार आचरण करे। सदा आनन्दमय, शान्तिमय की अनुभूति से आनन्दित रहे।

४. मनुष्य को यह शरीर इसलिए मिला है कि शरीर में स्थित आत्मा का प्रकाश चारों ओर फैल जाए। मानव-शरीर के अन्दर अनेक अमृतरस के कुण्ड हैं, जिस परमात्मा की कृपा से ऐसा मानव-शरीर मिला है, उसका साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए शुद्ध, बुद्ध, निर्लेप बनना चाहिए।

५. प्राणिमात्र के प्रति स्नेह, सद्भाव रखे। अपने से पराया किसी को न समझें। ज्ञानियों, योगियों, सज्जनों की सत्संगति प्राप्त करे। सब को आदर की दृष्टि से देखे। अपनी शक्तियों का सदुपयोग सत्कार्य करने में करना चाहिए। विरुद्ध शक्तियों के विरोधी भावों को दूर करके उन्हें परस्पर सहयोगी बनाना चाहिए। स्थूल में सूक्ष्म शक्ति का कार्य देख कर उस महान् शक्ति के सम्मुख नम्रता से रहना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६. चोरी, व्यभिचार, दुराचार, मद्यपान, गर्भपात आदि कुकर्म न कर, ज्ञानी के मार्ग में विघ्न न प्रस्तुत कर, बारम्बार कुकर्म की ओर प्रवृत्त होने की आकांक्षा को त्याग कर, सदाचार की मर्यादा के अनुकूल आचरण करना चाहिए। इन मर्यादाओं के अन्तर्गत रहते हुए संयम को अपने जीवन का आधार बना कर पुण्य-मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए। संयमपूर्वक धर्मानुकूल आचरण करता हुआ मनुष्य ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ सम्पूर्ण विविध मार्ग एकरूप बनते हैं और जहाँ उपमा देने योग्य परमात्मा का स्थान है।

७. उत्तम व्रतों और नियमों का पालन करते हुए मनुष्य को पुरुषार्थी बनना चाहिए। अपनी आत्मा की अदम्य शक्ति का अनुभव कर और अपनी शक्ति का विकास, विस्तार करके उनका उपयोग प्राणियों की भलाई के लिए करना चाहिए।

८. जिस प्रकार बालक निर्भयता प्राप्त करने के लिए अपने पिता की और कल्याण के लिए सद्गुरु की शरण में जाता है, उसी प्रकार निर्भयता और कल्याण प्राप्त करने के लिए परम पिता, परम गुरु परमात्मा की शरण में जाना चाहिए।

९. परमात्मा ही सब का सहायक, रक्षक और मित्र है। उसका गुण-कीर्तन कर, उसके गुणों को कार्य-जगत् में देख कर, उसकी विराट् शक्ति का अनुभव करना चाहिए।

उपर्युक्त सूक्त के मंत्रों के इस सार में बोध निहित है और आत्मोन्नति का प्रशस्त-पथ भी है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय २

अथर्ववेदीय तंत्रविधान

१. गणकर्म-विधान

विविध प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाले सूक्तों और मंत्रों को गणों में विभक्त किया गया है। गणों का यह समुच्चय अथर्ववेदीय प्रयोगों में बहुत महत्त्व रखता है। अथर्ववेद की ऋचाओं का समुदाय सूक्त कहा जाता है। एक ही प्रयोगकर्म-विधान में उपयुक्त अनेक सूक्तों के समुदाय को गण कहा जाता है। अथर्ववेद के सम्पूर्ण मन्त्रों को क्रिया-भेद से गणों में जो विभाजन किया गया है, उससे अथर्ववेदीय कर्म-विधान में प्रयोक्ता को बड़ी सुविधा मिलती है। प्रयोगकर्त्ता जिस किसी प्रयोजन के लिए जब कोई प्रयोग करे, तब उस प्रयोजन के लिए जिस गण के सूक्त और मन्त्र निर्धारित हैं, उन सूक्तों या मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द के साथ क्रियमाण कर्म के लिए विनियोग करे। विनियोग के बिना क्रिया निष्फल होती है।

ऋषि का अभिप्राय मन्त्र या सूक्त के द्रष्टा ऋषि से तथा मन्त्र के विषय का सार है। मन्त्र की जीवनी शक्ति तथा विषय देवता है। प्रत्येक मन्त्र या सूक्त के ऋषि और देवता होते हैं। विनियोग में इनका उल्लेख करने से मन्त्र जाग्रत हो जाते हैं। और मन्त्र का परिवेश छन्द होता है। छन्दों का उल्लेख गणों के अन्त में करना चाहिए। गण ये हैं :

१. अनुष्ठान्यृचः—इस प्रथम गण के सूक्तों और मन्त्रों से आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आधिभौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए मन्त्रों का जप या होम अनुष्ठान अथवा जलाभिसेचन कर्म किया जाता है।

२. अभयगण के सूक्तों और मन्त्रों से सभी प्रकार के भय दूर किए जाते हैं। आत्मरक्षा के निमित्त इस गण के मन्त्रों, सूक्तों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।

३. अपराजितगण के सूक्तों और मन्त्रों से आग्नेयास्त्र, सम्मोहन अस्त्र, तमसास्त्र के द्वारा शत्रु का स्तम्भन, उच्चाटन, सम्मोहन, वशीकरण कर्म किए जाते हैं। इस गण के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कवच, अस्त्र-शस्त्र धारण करने से शत्रु पर विजय प्राप्त होती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, किसी प्रकार की हानि या प्राण-हानि नहीं होती है। इन मन्त्रों से शक्तिपात करके विपक्षी दल के ऊपर क्रूर दृष्टिपात करने से विपक्षी दल युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर भाग खड़ा होता है।

४. आसनीय जपगण—अभ्युदय के लिए, आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि के लिए इस गण के सूक्तों और मन्त्रों का नित्य निरन्तर जप, उपस्थान या स्वाध्याय किया जाना चाहिए।

५. अप्रजननगण—इस गण के सूक्तों और मन्त्रों द्वारा स्त्री को वन्ध्या बनाया जाता है। वन्ध्याकरण को सन्तति-निरोध भी कहा जाता है।

६. आयुष्यगण—इस गण के सूक्तों और मन्त्रों द्वारा अपमृत्यु का निवारण किया जाता है। असाध्य बीमारियों को दूर कर दीर्घायुष्य प्रदान किया जाता है।

७. अंहोलिङ्गादिगण—पाप को अंहः कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य पूर्वजन्म के किसी न किसी पाप से आवृत रहता है, अथवा इस जन्म के जाने-अनजाने किसी न किसी पाप से आच्छन्न रहता है। जन्मान्तरकृत अथवा इह जन्म के समस्त प्रकार के पापों से अंहोलिङ्गादिगण के सूक्त और मन्त्र मुक्ति दिलाते हैं। शरीर, मन और हृदय को पवित्र बनाते हैं।

८. लघुशान्तिगण—अंहोलिङ्गादिगण के तथा अन्य कल्याणकारी सूक्तों, मन्त्रों के समुदाय से लघुशान्तिगण बनाया गया है। इससे सभी प्रकार के पाप, शाप, ताप, रोग-दोष दूर किए जाते हैं।

९. बृहच्छान्तिगण—इस गण में अंहोलिङ्गादिगण, लघुशान्तिगण, आयुष्यगण तथा पिप्पलादिगण के सूक्त एवं मन्त्र मिलाए गए हैं। बृहच्छान्तिगण के सभी मन्त्र और सूक्त सभी वेदों और शान्ति-विधियों तथा धर्मशास्त्रों में मान्य हैं। जब किसी व्यक्ति के दुःख, दारिद्र्य, दौर्भाग्य, रोग, दोष; दैहिक, दैविक, भौतिक ताप, भय, बाधा का निवारण किसी विधि से न हो, तब बृहच्छान्तिगण के सूक्तों और मन्त्रों का विधान पूर्ण सफलता प्रदान करता है।

१०. अर्थोत्थापनगण (अलक्ष्मीनाशनगण)—इस गण के सूक्तों और मन्त्रों के प्रयोग से मनुष्य का सोया हुआ भाग्य जागता है। कृषि, उद्योग, व्यापार-व्यवसाय में निरन्तर हानि या असफलताएँ; अनायास धन-सम्पत्ति का नाश, घर-बाहर सर्वत्र कलह, आय से अधिक व्यय, ऋण-भार की वृद्धि, तरह-तरह के लाञ्छन मिलना; अभियोग, मुक़द्दमों में फँसना; चोरों, डाकुओं द्वारा धन-सम्पत्ति का हरण, दुर्भाग्य प्रेत बन कर सवार रहे, पूर्वजों की अर्जित सम्पत्ति का विनाश, अथवा पूर्वजों की सम्पत्ति का उपभोग करने में तरह-तरह की बाधाएँ, भूत-प्रेतों द्वारा तरह-तरह से विनाश-लीलाओं का होना इत्यादि अनेक प्रकार की बाधाएँ दूर कर सुख, सौभाग्य और भाग्योदय प्रदान करना इस गण के मन्त्रों और सूक्तों के सफल कर्म हैं।

११. कृषिसंवर्द्धनगण—टिड्डियों, कृमियों आदि बाधाओं तथा ओला, पाला, तूफान से कृषि का विनाश, तरह-तरह के रोगों से अन्नोत्पादन में हानि, पशुओं की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हानि, रोगग्रस्त होकर पशुओं का मर जाना आदि का निवारण इस गण के मन्त्रों और सूक्तों के प्रयोग से किया जाता है।

१२. कल्पजा ऋचाएँ—जो मन्त्र वेदबाह्य होते हैं अर्थात् ऋषियों, मुनियों द्वारा श्रुत या दृष्ट नहीं होते हैं अपितु धर्मशास्त्रों, उपनिषदों के होते हैं, वे कल्पजा ऋचाएँ कही जाती हैं। जहाँ वेदमन्त्रों का अभाव हो या विधिपूर्वक पारम्परिक मन्त्र न हों, वहाँ वैदिक ऋचाओं की तरह कल्पजा ऋचाएँ भी प्रयोजन-सिद्धि में सहायक होती हैं। महाव्याहृतियों को कल्पजा ऋचाएँ कहा जाता है।

१३. काम-सूक्तगण—इस गण के मन्त्र मन, इन्द्रियों, इच्छाओं, संकल्पों, बुद्धि, प्राण, वीर्य आदि सांसारिक कामनाजन्य भोगों द्वारा नष्ट ओज, बल, वीर्य को पुनरुज्जीवित कर शान्ति और पुष्टि प्रदान करते हैं।

१४. कुष्ठलिङ्गादिगण—मनुष्य के चर्म-रोग, रक्त-दोष, रस-दोष, मज्जा-दोष, वसा-दोष, वस्ति-दोष, व्रण-दोष, रक्त-स्राव, गण्डमाला, कण्ठमाला, औंधा (उलटा) फोड़ा, अदृष्ट व्रण, रक्त-दोष (रक्त कैंसर, अलसर, यकृतदोष) आदि के मूल कारणों को नष्ट कर भैषज्य एवं औषधियों के प्रयोग द्वारा इस गण के मन्त्र और सूक्त रोगी के तन-मन को पवित्र बनाकर पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।

१५. गोष्ठकर्म स्वस्त्ययनगण—पशुओं का वन्ध्यापन, विपरीत प्रजनन-दोष, पशुशाला के रोग, पशुओं की सभी प्रकार की बीमारियाँ दूर कर इस गण के सूक्त और मन्त्र पशुओं को पुष्टि और स्वस्थता प्रदान करते हैं।

१६. गोहरणे अभिचारगण—गौओं का अपहरण करने वाले तथा गौओं का वध करने वाले और गौओं को कष्ट देने वाले लोगों के मारण के लिए इस गण के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

१७. गृहिणी ऋचाएँ—स्थावर, जंगम विषों को दूर करने के लिए; सर्प, बिच्छू, विषखोपड़ा आदि ज़हरीले जन्तुओं के विष के निवारण के लिए इस गण के मन्त्रों के प्रयोग किए जाते हैं तथा भैषज्य और विधान हैं।

१८. चातनगण—सभी प्रकार के पागलपन को दूर करने के लिए; भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि की बाधाएँ दूर करने के लिए तथा भूत कीटाणुजन्य रोगों को दूर करने के लिए इस गण के सूक्तों और मन्त्रों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। इसी को रक्षघ्नेष्टि भी कहते हैं।

१९. कृत्यागण—जब तन्त्र, मन्त्रों द्वारा किसी पर मारण प्रयोग किए जाते हैं अथवा मूठ मारी जाती है और स्तम्भन, वशीकरण, सम्मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण आदि प्रयोग किए जाते हैं—ऐसे प्रयोगों को कृत्या कहा जाता है। कृत्या के घातक प्रयोग इस गण के मंत्रों से वापस किए जाते हैं और कृत्या से पीड़ित व्यक्ति को स्वस्थ, नीरोग और सुरक्षित बनाया जाता है।

२०. तक्मनाशनगण—तक्म को आयुर्वेद में ज्वर कहा गया है। ज्वर अठारह प्रकार के होते हैं। तक्मगण के अन्तर्गत कृषि, पशु, वृक्षों के शरीरों में उत्पन्न रोगाणु;

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रस, रक्त चूसने वाले, मांसपेशियों का मांस भक्षण करने वाले यक्ष्मा आदि के कीटाणुओं को नष्ट करने वाले; ओजहीन, बलहीन बनाने वाले ज्वर-कीटाणुओं का शमन करने वाले; शीर्षण्य, आन्त्रों, कण्ठ, गुदा, लिङ्ग, कर्ण, नेत्रों, पसलियों की सूक्ष्मतम पेशियों को विकृत, रोगग्रस्त करने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने वाले मन्त्र और सूक्त तक्मनाशन-गण में हैं। इन मन्त्रों के प्रयोग से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

२१. वास्तुगण—भूमि-संबंधी समस्त दोषों; खनिजों, ज़मीन के अन्दर रहने वाले बाधक कीटाणुओं को नष्ट करके भूमि को निर्दोष और पवित्र बनाने वाले मन्त्र और सूक्त वास्तुगण में हैं।

२२. यक्ष्मनाशनगण—अथर्ववेद में केवल टी० बी० को ही यक्ष्मरोग नहीं कहा गया है; बल्कि दीर्घकालीन, असाध्य, रक्त शोषक, रक्त क्षीणक, बहने वाले, तपाने वाले, सुखाने वाले; बल, वीर्य, ओज का शोषण करने वाले; शारीरिक व्याधियों, पारिवारिक (वंशानुगत) बीमारियों को भी यक्ष्म कहा गया है। इन रोगों के कारणों को दूर कर नीरोग बनाने के प्रयोग इस गण में हैं।

२३. रक्षोहण अनुवाक—राष्ट्रव्यापी व्याप्त संकट, भय, युद्ध, प्राकृतिक आपदाओं का निवारण; प्राणियों के पाप, शाप, ताप, उत्पात, भूत, प्रेत, पिशाच, यातुधान की बाधाएँ और जन-द्रोहियों, समाज-द्रोहियों द्वारा किए जाने वाले उत्पातों का निवारण रक्षोहण अनुवाक के सूक्तों, मन्त्रों द्वारा किया जाता है। ऐसे असाध्य उत्पात और बाधाओं को दूर करने के लिए रक्षोहण अनुवाक के 'वज्र' प्रयोग, 'उद्वज्र' प्रयोग, 'त्रिसन्धि वज्र' प्रयोग, 'तमसास्त्र' प्रयोग, 'वारुणास्त्र' प्रयोग, 'आग्नेयास्त्र' प्रयोग, 'ब्रह्मास्त्र' प्रयोग किए जाते हैं।

२४. रौद्रगण—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और वशीकरण संबंधी आङ्गिरस प्रयोग और उनसे उत्पन्न अचिन्त्य, अकल्प्य विघ्नों और उनके कारणों को दूर करने के प्रयोग रौद्रगण के सूक्तों और मन्त्रों से किए जाते हैं।

२५. वन्ध्यात्वशमनगण—जिस स्त्री को रजोधर्म नहीं होता हो, अथवा तरुण अवस्था आते ही अचानक रजोधर्म का होना बन्द हो गया हो या एक सन्तान उत्पन्न होने के बाद प्रजनन रुक गया हो; रजस्राव, रक्तस्राव, गर्भस्राव, गर्भक्षय तथा उत्पन्न होते हो सन्तान मर जाती हो, अथवा कन्याएँ ही कन्याएँ उत्पन्न होती हों या सन्तान न होती हो। इन सब को अथर्ववेद में वन्ध्या कहा गया है। इस प्रकार के वन्ध्या-दोष को दूर करके स्वस्थ, सुन्दर सन्तान को उत्पन्न कराने की पुत्रेष्टि विधि इस गण के सूक्तों और मन्त्रों द्वारा बताई गई है।

२६. कपिञ्जल स्वस्त्ययनानिगण—कौवा, उल्लू, गीध, बाज आदि पक्षी या वन्यजीव गाँव-घर में घुसकर उत्पात करें तो उनके प्रवेश-दोष को दूर करने के प्रयोग इस गण में हैं।

२७. सरम्भाणि सूक्तानि—समस्त शान्ति, पुष्टि कार्यों के प्रारम्भ में इस गण के सूक्तों का प्रयोग अनिवार्य होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२८. शर्मवर्मगण—कल्याण करने की तथा सब प्रकार की रक्षा की विधि इस गण के सूक्तों और मन्त्रों में बताई गई है।

२९. स्वस्त्ययनगण—कार्यारम्भ और कार्य की पूर्णता में शान्ति-पाठ के मन्त्र स्वस्त्ययन गण में हैं।

३०. ग्राम-नगर-गृह-राष्ट्रादि स्वस्त्ययनगण—भू-स्खलन, पर्वत-स्खलन, भूचाल, नदियों की विनाशकारी बाढ़, ओलों का गिरना, वज्रपात, अग्नि का प्रकोप; सर्पों, चूहों के उत्पात, महामारी, ध्वंसात्मक कार्य, आतंकवादी कार्य, परस्पर कलह; वन्य पशुओं, हिंस्रक जीवों के उत्पात आदि से उत्पन्न संकटों के मूल कारण को दूर कर के स्थिरता, स्वस्थता, अमन-चैन लाने वाले प्रयोग इस गण के सूक्तों में हैं।

३१. दुःस्वप्ननाशनगण—खोटे, हानिकारक, भयावह, मृत्यु और दुर्गति के सूचक स्वप्नों की शान्ति के लिए इस गण के सूक्तों और मन्त्रों से प्रयोग किए जाते हैं।

३२. पवित्रगण—इस गण के सूक्तों और मंत्रों के प्रयोग द्वारा तन, मन, हृदय और मस्तिष्क को पवित्र बनाया जाता है। ओज, बल और वर्चस् की प्राप्ति कराई जाती है।

३३. पत्नीवन्तगण—स्त्री को पति की प्राप्ति, स्थायी दाम्पत्य-प्रेम कराने तथा वियोग-व्यथा, दाम्पत्य-कलह के कारणों को दूर कर सुख, सौभाग्य, मैत्री बढ़ाने के लिए इस गण के सूक्तों और मन्त्रों से प्रयोग किया जाता है।

३४. पाप्मगण—पाप उत्पन्न कराने वाले व्यवहार, निन्दा करने की प्रवृत्ति, मिथ्याचरण, मिथ्याभाषण, हृदयविदारक सम्भाषण, कटु स्वभाव आदि से उत्पन्न होने वाली पाप-प्रवृत्तियों को और उनके कटु परिणामों का निराकरण करने में इस गण के सूक्तों, मन्त्रों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।

३५. पिप्पलादिगण—भौम चक्र, सौरमण्डलीय ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त्त तथा उल्कापात, धूमकेतु से उत्पन्न अशुभों, अनिष्टों की शान्ति, सभी प्रकार की अद्भुत, आश्चर्यजनक घटनाओं का निराकरण इस गण के सूक्तों, मन्त्रों से किया जाता है।

३६. वर्चस्गण—आध्यात्मिक, आधिदैविक बाधाओं, विघ्नों की शान्ति और ब्रह्मविद्या, प्राणविद्या की प्राप्ति के लिए, ब्रह्म बल और तेज की वृद्धि के लिए इस गण के सूक्तों और मन्त्रों के प्रयोग किए जाते हैं।

३७. मातृनामा (मातृगण), पौष्टिक ऋचः (सलिलगण)—इन गणों के सूक्तों और मन्त्रों के प्रयोगों द्वारा नदी, समुद्र के समस्त उत्पातों का शमन किया जाता है।

३८. सम्प्रोक्षण : आचमनीयगण—अथर्ववेदीय प्रत्येक प्रयोग के प्रारम्भ में और समाप्ति पर आचमन तथा शुद्धि के मन्त्र इन गणों में हैं।

३९. शान्ति जल—अनेक पवित्र स्रोतों, पवित्र नदियों, तीर्थों और सागर के जल को अभिमन्त्रित करने की क्रिया इस गण के सूक्तों और मन्त्रों द्वारा की जाती है।

४०. व्याघ्र, सिंह, चरक, चौरभय में स्वस्त्ययनगण—जब हिंस्रक जीवों, चोर, डाकुओं का भय उपस्थित हो जाए, तो इस गण के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण करने मात्र से भय और बाधा दूर हो जाती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. गणों के उपयोगी विषयों का वर्गीकरण

राजनैतिक जीवन—राजनैतिक जीवन के सन्दर्भ में राष्ट्र, क्षत्र, विश, विश्पति, संसद और ग्रामिणी जैसी राजनीतिक शब्दावली का व्यवहार करते हुए राज्य के अंग, राज्य के कर्त्तव्य, राज्य के कार्य, राज्य के भेद (एकतंत्र, गणतंत्र आदि), राजस्व, सभा, समितियाँ, राज्य-शासन, स्वराष्ट्र शासन व्यवस्था, अन्ताराष्ट्रीय संबंध, स्वराज्य और वैराज्य आदि का विशद वर्णन है, और उनको सुचारु, बाधारहित बनाने के अनेक आथर्वणतन्त्र-विधान हैं।

सामाजिक जीवन—अथर्ववेद ने मनुष्य के सामाजिक-जीवन पर बहुत ही बारीकी से प्रकाश डाला है। समाज का संगठन किस प्रकार से होता है, परिवार-संस्थाएँ कैसे बनती हैं, उनके क्या कर्त्तव्य हैं। सामाजिक आचार-विचार, व्यवहार, वस्त्रालङ्कार, खाद्य, पेय, नारी-जीवन, घरेलू व्यवस्था, सामाजिक मनोरंजन का विस्तृत निरूपण करते हुए इन्हें समुन्नत, सबल और सफल बनाने के आथर्वण और आङ्गिरस् प्रयोग बताए गए हैं।

धार्मिक जीवन—अथर्ववेद ने मनुष्य के धार्मिक जीवन को नित्य, नैमित्तिक कृत्यों, अनुष्ठानों, यज्ञों, संस्कारों, देवाराधन आदि विभिन्न अंगों में विभक्त कर भैषज्यानि, आयुष्याणि, अभिचारिकाणि, स्त्री-कर्माणि, साम्मनस्यानि, राजकर्म्माणि, प्रायश्चित्तानि, पौष्टिकानि कृत्यों, कर्मों द्वारा संन्नाव्य, यशोहवि, नैर्हस्तहवि, सप्तर्षिहवि, समानहवि, नैर्वाधहवि, भूतहवि, ध्रुवहवि—इन हवि संबंधी कर्मों द्वारा तथा ब्रह्म-ओदन, स्वर्गोदनसव, पञ्चओदनसव, चतुः आशापालसव, कर्कीसव, अविसव, अति-मृत्युसव, अनुड्डहसव, पृश्निसव, पृश्निगौःसव, अज-ओदनसव, ब्रह्मांस्योदनसव, ऋषभसव, वशासव, शालासव, बृहस्पतिसव, उर्वरासव—इन यज्ञों द्वारा और भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, यातुधान आदि आसुरी शक्तियों का दमन, त्रिषन्धि, निर्हस्त हवि, पृश्निपर्णी और वज औषधियों द्वारा एवं गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टिक्रिया तक के षोडशसंस्कारों द्वारा और अर्थोपार्जन के साधन कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग द्वारा तथा भैषज्यविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, भू-भौतिकी विज्ञान, गणित द्वारा और साहित्य एवं कलामय जीवन को इतिहास, पुराण, नाराशंसी गाथाओं, आख्यान सूक्तों, काव्य, संगीत, रस-विवेचन द्वारा एवं दार्शनिक जीवन के तत्त्वज्ञान, तप, संयम, नियम द्वारा ओजस्वी और तेजस्वी बनाने का विधान बताया है।

कौशिक सूत्र में जो अथर्ववेदीय गणपद्धति अपनाई गई है, उन्हीं गणों के आधार पर आथर्वणतंत्र का संक्षिप्त विषय-क्रम दिया जा रहा है :—

१. भूतावेश को दूर करने के लिए और आधि-व्याधि के विनाश के लिए अथर्ववेद में भैषज्यं है। व्याधियों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में जो चिकित्सा बताई गई है, उसके लिए साधर्म्य सिद्धान्त और संसर्ग सिद्धान्त दोनों के प्रयोग किए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाते हैं। जैसे : प्रतीकात्मक प्रयोग, जल प्रयोग, औषधि प्रयोग और रक्षाकरण्ड (गंडा-ताबीज) प्रयोग।

प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा जब पाण्डुरोग दूर किया जाता है, तो उसका हरे रंग के जन्तुओं में और सूर्य में समावेश कराया जाता है।

औषधि प्रयोग विविध प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। जैसे—तक्म (ज्वर) के निवारण के लिए अथर्ववेद के १-२५, ५-४, ६-२०, ७-११६, १९-३६ सूक्तों में वर्णित औषधियों के द्वारा प्रयोग किया जाता है। जलोदर रोग के निवारण के लिए अथर्ववेद के १-१०, ६-२४, ७-८३ सूक्तों द्वारा; आस्राव (रक्त प्रवाह, मवाद आदि) रोग के निवारण के लिए १-२, २-३, ६-४४ सूक्तों द्वारा; क्षेत्रिय-रोग (वंशानुगत रोग) के निवारण के लिए २-८, १०, ३-७ सूक्तों द्वारा; विष-निवारण के लिए ५-१३-१६, ६-१२, ७-५६, ८८ सूक्तों और मंत्रों द्वारा; कृमिरोग निवारण के लिए २-३१, ३२ सूक्तों और मंत्रों द्वारा तथा उन्माद (पागलपन) रोग निवारण के लिए ६-१११ सूक्त द्वारा; व्रण (घाव), अस्थि भंग आदि के निवारण के लिए ४-१२, ५-५ सूक्तों और मंत्रों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। इन मंत्रों में रोगों की औषधियाँ भी बताई गई हैं। जिस रोग की औषधि हो उसे उसके निवारक सूक्तों, मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर सेवन कराया जाता है।

अथर्ववेद के अनेक स्थलों में सभी प्रकार के रोगों के शमन के लिए विशिष्ट पदार्थों का भी निर्देश दिया गया है। जैसे जल और वनस्पति का उल्लेख अथर्ववेद के ६-२५, ६-९१, ६-९५, १९-४४ सूक्तों और मंत्रों में किया गया है। इन मंत्रों में वरण वृक्ष (एक प्रकार का विल्व वृक्ष जो कश्मीर में टिक्कण गाँव में स्थित रागना देवी के मंदिर के आस-पास है), अश्वत्थ वृक्ष (पलाश-पीपल जो हिमालय की तराई में मिलते हैं), तव यव (इन्द्र जौ) और जल का उल्लेख मिलता है।

इन अथर्ववेदीय औषधियों को पहले उनके अधिष्ठातृ देवताओं का आवाहन कर उन देवताओं से रोग-निवारण की प्रार्थना की जाती है, तत्पश्चात् रोगी को औषधि-सेवन कराई जाती है।

२. आयुष्य प्रयोग—सुस्वास्थ्य और दीर्घायुष्य प्रदान करने वाले जो अथर्ववेदीय मंत्र हैं, उनको आयुष्यगण के अन्तर्गत रखा गया है। कौशिक सूत्र में इन मंत्रों के प्रयोग चूडाकर्म, गोदान, उपनयन आदि विभिन्न धार्मिक कृत्यों और पवित्र-संस्कारों के लिए भी बताए गए हैं। आयु, बल, वीर्य, शौर्य, वर्चस्व, यश को बढ़ाने वाले मंत्र (२-२८, ३-११, ४-९-१०, ५-३०, ७-५३, ८-१, १९-२६) अथर्ववेद में हैं।

वैदिक मंत्रों में अग्नि प्रधान-देवता है, वह आयुस्वरूप है। आरोग्यता प्राप्त करने के लिए, मृत्यु के भय से मुक्ति पाने के लिए, दीर्घायुष्य के लिए रक्षाकरण्डों को गले में, भुजा में बाँधने का महत्त्व अथर्ववेद में बताया गया है। जैसे, अथर्ववेद १-३५ में सुवर्ण का रक्षासूत्र धारण करना; ४-९, १९-४४, ४५ में अंजनमणि धारण करना और ४-१० में मुक्ताशुक्ति धारण करना बताया गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. भूत-प्रेत-पिशाच तथा शत्रु के विरुद्ध किए जाने वाले तंत्र-प्रयोग आभिचारिक या कृत्या प्रतिहारक कहे जाते हैं। इस वर्ग में वे सभी मन्त्र अन्तर्भूत हैं, जो प्रतिद्वन्द्विता सूचक हैं। जैसे वर्ग १ का दैत्यैर्ग्रहणम्, वर्ग ६ का राजकर्माणि, वर्ग ७ का शाप, वर्ग ४ का स्त्रीणां प्रतिद्वन्द्विता तथा वर्ग ५ का महोच्च पद की प्राप्ति।

अभिचार विषयक मंत्रों में देवी-देवताओं का आवाहन किया जाता है। जैसे अथर्ववेद के २-१४, ३-९, ५-७-८-२८-२९, ६-२-३४, ७-११० मंत्रों द्वारा प्रेतों, पिशाचों का संहार करने के लिए आवाहन किया जाता है। इस प्रकार के आथर्वणतंत्र में रक्षा-सूत्र और वनस्पतियों के भी प्रयोगों के विधान हैं।

४. स्त्री-वशीकरण - स्त्रीकर्माणिगण में स्त्री-वशीकरण प्रयोग बताए गए हैं। स्त्रियों को वशीभूत करने के लिए जितने विविध प्रयोग अथर्ववेद में हैं, उतने किसी और वेद में नहीं है। आथर्वणतंत्र के अनुसार स्त्री-वशीकरण प्रयोग दो प्रकार के हैं। एक तो विवाह से लेकर गर्भ-धारण और प्रसव से सम्बद्ध। दूसरा सपत्नियों (सौतों) को वशीभूत करने अथवा उन्हें नष्ट करने से संबंधित हैं तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं को सम्मोहित करने से संबंधित हैं। इस गण में स्त्री-वशीकरण संबंधी ऐसे भी प्रयोग हैं, जिनसे पुरुषों को नपुंसक और स्त्रियों को दुर्भगा बनाया जाता है। ये प्रयोग अथर्ववेद के ६-१३, ७-९०, १-१४ सूक्तों और मंत्रों में हैं।

५. सौमनस्यानि—सौमनस्य प्रकरण के अन्तर्गत वे मंत्र हैं, जिनके प्रयोगों द्वारा मनुष्य के मन, चित्त और हृदय को अपने अधीन किया जाता है। किन्तु इस प्रकार के मंत्रों को चौथे वर्ग के प्रयोगों से भिन्न नहीं समझा जा सकता है। जैसे अथर्ववेद (१-३४) के मंत्र का प्रयोग स्त्री-पुरुष के बीच परस्पर अनुराग बढ़ाने के लिए और प्रभावित करने के लिए किया जाता है। ऋग्विधान के १-२-५, २-३५-२, १-१-३ तथा २१-४ स्थलों में हृद्यसंवनन-वशीकरण शब्दों के प्रयोग उभयविध मंत्रों के लिए हैं। ये मंत्र किसी विघटित हो रहे परिवार के सदस्यों में सुमति, एकता कायम करने के लिए (६-४२-४३, ६४, ७३, ७४, ७, ५२) तथा सभा में अपनी धाक जमाने के लिए (७-१२), शास्त्रार्थ, वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने के लिए (२-२७), किसी को अपने मनोऽनुकूल बनाने के लिए (६-९४) प्रयुक्त होते हैं।

६. राजकर्माणि—इस गण के मंत्र राज्य से संबंधित समस्त क्रिया-कलापों में प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त इस गण में निम्नांकित विषयों का भी समावेश है—राज्याभिषेक (४-८), राजा का निर्वाचन (३-४); निर्वासित, पराजित राजा को पुनः सिंहासनारूढ़ करना (३-३), अन्यान्य राजाओं के ऊपर आधिपत्य स्थापित करना (४-२२), राज्य-शासन को सुदृढ़ बनाना (३-५), राजशक्ति के ओज और तेज को बढ़ाना (६-३८), राज्य-शासन और शासक के यश को बढ़ाना (६-३९), संग्राम में विजय प्राप्त करना (१-१९, ३-१, ३-२, ५-२०-२१, ६-९७, ९९, ८-८, ११-९, १०)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७. ब्राह्मणों के हित के लिए प्रार्थना और शाप—इस गण में जो प्रार्थना मंत्र हैं, वे सब श्रुतशास्त्र को ज्यों का त्यों धारण करने तथा प्रायश्चित्त के लिए हैं (१-१)।

८. शान्ति कर्म—ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए तथा विपत्तियों के निवारण के लिए इस गण के मंत्रों से प्रयोग किया जाता है। जैसे ऐश्वर्य प्राप्ति, सन्तति लाभ, पशुसंवर्द्धन, गृह, क्षेत्र, नदी, वर्षा, वार्ता, व्यापार, यात्रा, सर्पभयनिवृत्ति, बाधा, विपत्तिशमन, दुर्दृष्टि निवारण आदि के लिए शान्ति-कर्म के मंत्रों से प्रयोग किया जाता है। इस गण के मंत्रों से अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के लिए, विपत्तियों, सर्पों से रक्षा के लिए, दुर्वृष्टि, दुर्दिन के निवारण के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इसी में जलवृष्टि कराने के लिए भी मंत्र हैं।

९. प्रायश्चित्तानि—इस गण के अन्तर्गत मंत्रों के प्रयोग कृत्या (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि) के निवारण के लिए, पाप-शाप के निवारण के लिए, मलिन बनाने वाले टोटका, टोना के निवारण के लिए किए जाते हैं। इस गण के मंत्रों से यज्ञ कर्म में होने वाली त्रुटियों, मानसिक अपराधों, दुष्कर्मों, दुःस्वप्नों, दुराचरणों को दूर करने के लिए शान्ति कर्म विधान हैं। ये कर्म अथर्ववेद के का० ६, सू० १, २६, २७, ४५, ४६, ११२, ११४, ११५ एवं का० ७, सू०११५ के मंत्रों से किए जाते हैं।

१०. सृष्टिक्रम, अध्यात्म—इस वर्ग में सृष्टिक्रम बताने वाले तथा अध्यात्म संबंधी मंत्र हैं। इनके अतिरिक्त वर्ग ११, १२, १३, १४ में क्रम से संस्कार-संबंधी, व्यक्तिगत उद्देश्य तथा कुन्ताप मंत्र हैं।

अथर्ववेद में कर्मजन्य व्याधियों को दूर करने के लिए अम्बादिगण, अपांगण और पिप्पलादिगण में पठित सर्वकामार्थ परिभाषा में १. निशा कर्म, २. वाजीकरण, ३. भैषज्य, ४. कार्य सिद्धि विधान, ५. शान्ति जल विधान, ६. वन्ध्या प्रजनन-विधान, ७. क्षेत्रिय दोष निवारण, ८. मृत अपत्य दोष निवारण विधान, ९. शत्रु-विनाशन विधान, १०. अभय प्राप्ति विधान, ११. पतिवेदन (प्राप्ति) विधान, १२. पतिवरण विधान, १३. पत्नी-प्राप्ति विधान, १४. ईर्ष्या निवारण विधान, १५. अलक्ष्मी विनाशन विधान बताए गए हैं।

अथर्ववेद के मन्त्रभाग में अनेकानेक नितान्त गम्भीर दार्शनिक, पारमार्थिक विचारधाराएँ प्रसङ्गात् प्रस्फुटित हुई हैं। यह अथर्वसंहिता सब प्रकार के विषयों में, सभी प्रकार की वस्तुओं में विश्व सृष्टि संबंधी सामर्थ्य से परिपूर्ण है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. शान्ति पुष्टिकर्म-विधान

आचार्यों ने अथर्ववेद के मंत्रों को शान्ति, पुष्टि, अभिचार तीन विभागों में विभक्त किया है। जब हम सम्पूर्ण अथर्वसंहिता के मंत्रों का चिन्तन करते हैं, तो यही प्रतीत होता है कि अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति, विनाश से रक्षा, दुर्भाग्य का निवारण—यही इस संहिता के प्रधान विषय हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण का कथन है कि वह अपने शरणागतों को योग और क्षेम प्रदान करते हैं। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा को योग और क्षेम कहते हैं। यही योग-क्षेम अथर्ववेद में शंयुः, पुष्टिः, शान्तिः पदों से व्यवहृत हुआ है। वस्तुतः अथर्ववेद के शान्ति कर्मों में अभिचार-कर्म निहित हैं; क्योंकि मारण, मोहन, उच्चाटन आदि जो अभिचार कर्म किए जाते हैं, उनका उद्देश्य अपना लाभ, पराये की हानि अथवा अपनी हानि के निवारण के लिए ही किया जाता है। इसलिए अभिचारकर्म का परिगणन शान्तिकर्म के अन्तर्गत होना यथेष्ट है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त, कृत्या आदि अशुभ कर्मों के, अशुभ फल देने वाले दुःस्वप्नादि के शमन के लिए जो मन्त्र प्रयुक्त किए जाते हैं, उनका मूल उद्देश्य शांति ही है। अभिचार कर्मों से होने वाली हानि और अशुभ की शान्ति के लिए जो प्रयोग किए जाते हैं, वे अभिचार मंत्र शान्ति वर्ग के ही अन्तर्गत आते हैं।

रोगों से मुक्ति मिलना और औषधियों तथा भैषज्य मंत्र विधि से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करना पुष्टि कर्म है। अथर्ववेद में कर्मज व्याधियों को दूर करने के लिए जो प्रयोग बताए गए हैं, उनके मूल में अभिचार कर्म और कृत्या दोषों का निवारण ही है, क्योंकि कर्मज व्याधियों—टोटका, टोना तथा अभिचार कर्मों—भूतों, प्रेतों, पिशाचों के प्रभाव तथा शाप आदि से उत्पन्न हुआ करती हैं। ऐसी व्याधियों का निदान डॉक्टर, वैद्य, हकीम कर सकने में असमर्थ पाए जाते हैं। इनका निदान और निवारण आथर्वणतंत्र-विद् विद्वान् आसानी से करते हैं।

आधि-व्याधि के निवारण के लिए प्रयोग करने से पूर्व विभिन्न देवताओं का आवाहन किया जाता है। जैसे जीर्णज्वर, कालज्वर दूर करने के लिए अग्नि, सोम, आदित्य और वरुण देवों का आवाहन किया जाता है। ऐसे असाध्य ज्वरों के प्रयोग पीतल के बरतन में रखे हुए काले धान के लावा (खील) को रोगी के सिर के चारों ओर घुमा कर मंत्र पढ़ते हुए अग्नि में होम किया जाता है। क्षेत्रिय—वंशानुगत कुष्ठ, बवासीर, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह आदि रोगों को दूर करने के लिए जो प्रयोग किया जाता है, उसमें अथर्ववेद (२-१०) के सूक्त मंत्रों को पढ़ते हुए रोगी के रोग ग्रस्त अंग को काम्पील (कबीला) के खंडों से बाँध कर, रोगी को चौराहे पर बैठा कर, दूर्वा दलों से उसके शरीर का मार्जन नदी-जल से किया जाता है। मनुष्य में क्षेत्रिय रोग तभी उत्पन्न होते हैं जब निर्ऋतिः (पाप-देवता) का प्रकोप होता है। निर्ऋति को दुर्गति और यम की पत्नी भी कहा जाता है। तंत्रशास्त्र में यही धूमावती कही जाती है। यह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुर्गति गुरु-द्रोह करने से तथा वरुण का शाप लगने से भी मनुष्य पर प्रकुपित होकर उसकी दुर्गति कर डालती है।

अथर्ववेद में अभिचार कर्म और यातु कर्म का जो वर्णन और निवारण-विधान हैं, उन कर्मों के प्रवर्त्तक अङ्गिरस् ऋषि हैं। भूत-प्रेतों द्वारा अभिचार कर्म करने वाले अथवा इन्द्रजाल द्वारा अद्भुत कर्म करने वाले लोगों को अथर्ववेद में यातुधान कहा गया है। जो भी व्यक्ति अभिचार कर्म करते हैं, उन मनुष्यों और राक्षसों में अथर्ववेद कोई अन्तर नहीं समझता है। अथर्ववेद में भ्रातृव्य (शत्रु), सपत्न (शत्रु, प्रतिद्वंद्वी), अराय, पिशाच और दानव को एक अर्थ में लिया गया है। अभिचार कर्म में जिन कृत्यों का उल्लेख किया गया है, वे सपत्न बाधन, नैर्वाध, विनाशन, पीडन, मारण, वशीकरण, विद्वेषण, मोहन, उच्चाटन, चातन और स्तम्भन आदि हैं।

अथर्ववेद के २-१४-३ के मंत्रों द्वारा भूत, प्रेत, पिशाच की बाधा दूर करने के अतिरिक्त गृह, पशु और मनुष्यों की सुरक्षा के लिए और अन्य मंत्र ३-९-४ में 'विष्कन्ध' तथा 'कवव' (घोर राक्षस) के विरुद्ध मन्त्रोच्चारण द्वारा प्रयोग-विधि बताई गई है। अभिचार प्रयोगों में औषधियों का भी उपयोग किया जाता है। अभिचारकों (यातुधानों) तथा शत्रुओं द्वारा किसी पर कृत्या आदि अभिचार कर्म किए जाने पर 'सदंपुष्पा' (सदाफूली, सदाबहार) के पौधों से किए जाने वाले प्रयोग अमोघ सिद्ध हैं। इस पौधे की पत्तियों का अभिमंत्रित रस पान करने से कैंसर जैसे असाध्य रोग दूर होते हैं। भूख मारने वाले, प्यास मारने वाले, शरीर को सुखाने वाले, पागल बना देने वाले अभिचार कर्मों को अथर्ववेदीय मंत्रों से अभिमंत्रित अपामार्ग (लटजीरा, चिचिड़ा, ओंगा) दूर करता है।

दुष्कर्मों के कारण मनुष्य को जो पाप और शाप पीड़ित करते हैं, उनका निवारण अभिमंत्रित अपामार्ग औषधि से होता है। कोई अभिचारक कच्चे मांस पर कृत्या का प्रयोग करके अपने शत्रु के घर में रख देते हैं—ऐसे कृत्या-दूषणों को अपामार्ग से दूर किया जाता है।

पतिवेदन का अर्थ है पति को प्राप्त करना। जब किसी कन्या की योग्य अवस्था हो जाने पर भी विवाह नहीं होता है, तो उसे पति प्राप्त कराने के लिए अथर्ववेद (२।३६।६, ६०) के दो सूक्तों द्वारा प्रयोग किए जाने पर निश्चय ही विवाह हो जाता है। पतिवेदन का प्रयोग किए जाने से पूर्व कन्या को धान और काले तिल चबाने के लिए देना चाहिए, इसके बाद पतिवेदन मंत्रों से हवन कराना चाहिए। पति को प्राप्त कराने के संबंध में अथर्ववेद (६।६०) का एक और सूक्त है, इस सूक्त के मंत्रों की प्रयोगविधि यह है कि प्रातःकाल कन्या के जागने से पूर्व कन्या का पिता या आथर्वण व्यक्ति पति-वेदन मंत्रों से, घी से अग्नि में हवन करे और घर के चारों ओर काकबलि रख दे। बलि दही और काले उड़द की रखी जानी चाहिए।

जब पति-पत्नी में या प्रेमी-प्रेमिका में परस्पर मनमुटाव, तनाव पैदा हो जाए अथवा किसी कारणवश स्त्री या पुरुष परस्पर घृणा करने लगें, तब परस्पर प्रेम-भाव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्पन्न कराने वाले अभिचार कर्म में अथर्ववेद (६।१३३) के सूक्त से प्रयोग करना चाहिए। यदि पुरुष घृणा करता हो, तो उक्त मंत्र से अभिमंत्रित माष (काले उड़द) को स्त्री उस पुरुष के आने-जाने वाले मार्ग में विखेर दे, तो पुरुष का क्रोध, घृणा-ईर्ष्या भाव समाप्त हो जाता है और वह पत्नी को प्यार करने लगता है। और यदि स्त्री पति या प्रेमी से घृणा करती हो, उसे देखना भी पसंद न करती हो तो पुरुष उस स्त्री को अपने वश में करने के लिए अथर्ववेद (६।८९, ६।१०२, ३।२५, ६।१३९, १।३४, २।३०) के छह सूक्तों को पढ़ते हुए शमी वृक्ष की छाल, धनुष के वाण (सरकंडा)का टुकड़ा, तगर, अंजन और कुष्ठ (कूट) इन औषधियों को पीस कर स्त्री के शरीर में छिड़क दे या किसी अंग में लगा दे, वह विगड़ैल स्त्री उस पुरुष पर पूर्ण आसक्त हो जाती है। यदि स्वयं न कर सके तो औषधियों को किसी आथर्वण व्यक्ति से अभिमंत्रित कराकर उनका चूर्ण स्त्री पर छोड़ना चाहिए।

स्त्रियाँ अपनी सौतों के विरुद्ध प्रायः टोटका, टोना अथवा कृत्याभिचार के प्रयोग कराया करती हैं। अथर्ववेद (३।१८।१) का यह एक सूक्त सौतों को वश में करने में सफल सिद्ध है।

दाम्पत्य-जीवन को सफल वनाने के लिए, पुत्र प्राप्ति के लिए अथर्ववेद (३।२३) का सूक्त, तथा स्त्री को बाँझ वनाने के लिए (७।३५) सूक्त, गर्भवती स्त्री के गर्भ को सुदृढ़ वनाने के लिए (६।१७) सूक्त और सुखपूर्वक प्रसव होने के लिए (१।११) सूक्त बहुत सफल है।

गर्भधारण करने के वाद कभी-कभी किसी रोग-दोष या अन्य कारणों से गर्भवती स्त्री का गर्भपात हो जाया करता है। अथर्ववेद के ८।६ सूक्त में गर्भ-रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है और औषधि सेवन का विधान वताया गया है। इस सूक्त में २६ मंत्र हैं, किन्तु यदि इस सूक्त के साथ २।२ तथा २०।९६ इन दो सूक्तों से भी प्रयोग किया जाए तो रोग-दोष से होने वाला गर्भपात, भूत-प्रेत की वाधा से होने वाला गर्भपात निरुद्ध हो जाता है। वस्तुतः गर्भाधान के वाद गर्भ के अन्दर तरह-तरह के रोग-कीटाणु प्रविष्ट होकर गर्भ को हानि पहुँचाया करते हैं। ऐसे रोग कीटाणुओं से गर्भ को रक्षित और पुष्ट करने के लिए अथर्ववेद में औषधियों के प्रयोग भी बताए गए हैं। ऐसी गर्भ-रक्षक औषधियों में एक औषधि (८।६।३) बज है। आयुर्वेद में इसे काकजंघा कहते हैं। रविवार के दिन इस औषधि की लकड़ी लाकर गर्भवती की कमर में बाँध देने से गर्भपात हर्गिज़ नहीं होता है। गर्भस्राव, रक्तस्राव तुरन्त बन्द हो जाता है।

रोग कीटाणुओं के अतिरिक्त प्रेतों, पिशाचों से गर्भ रक्षित रखने के लिए अथर्ववेद के (८।६।२३) एवं (८।६।१३) मंत्रों से अभिमंत्रित पिंग (सफेद सरसों या पीली सरसों के बीज) गर्भवती की कमर में बाँध देने से भूत-पिशाच जन्य बाधाएँ गर्भ को प्रभावित नहीं करती हैं। पीली सरसों गर्भस्थ शिशु की रक्षा करतो है और यदि तीन महीने का गर्भ हो जाए और पीली सरसों गर्भवती की कमर में बाँध दी जाए तो गर्भस्थ भ्रूण को कन्या नहीं बनने देती है, पुत्र ही उत्पन्न होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके अतिरिक्त सन्तानहीनता, बन्ध्यापन को भी दूर करने के लिए अभिमंत्रित सरसों का प्रयोग किया जाता है। धर्मशास्त्रों में इसी प्रयोग को सीमन्तोन्नयन संस्कार कहा गया है। भाष्यकार सायण ने अथर्ववेद के भाष्य (८।६।१८) में इस सूक्त (८।६) की भूमिका में कौशिक सूत्र (३५।२०) के वचन उद्धृत करते हुए लिखा है कि गर्भिणी के हाथ में पीली और सफ़ेद सरसों बाँधने से गर्भपात नहीं होता है। गर्भ पुष्ट होता है और पुत्र उत्पन्न होता है।

अथर्ववेद में शान्ति कर्म के अन्तर्गत निशाकर्म तन्त्र का विधान है। शान्ति, पुष्टि, अभिचार तथा अद्भुत भेद से अथर्ववेद में चार प्रकार के कर्मों का विधान है, इसके अतिरिक्त सभी प्रकार की व्याधियों की शान्ति के लिए भैषज्य कर्म विधान है। ग्रहों के दोषों के निवारण के लिए यज्ञादि कर्म और अद्भुत, आश्चर्यजन घटनाओं के दर्शन के दोष के निवारण के लिए शान्ति कर्म किए जाते हैं। 'मा नो विदन्' (अथर्ववेद १।४।३) इस सूक्त के अन्तर्गत बताया गया है कि ब्राह्मण द्वारा अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करना, देव-प्रतिमा का हँसना या प्रतिमा की आँखों से आँसू निकलना, प्रतिमा का नाचना आदि अद्भुत कर्म हैं। इनकी शान्ति के लिए आज्याहुति तंत्र में विनियोग है। अथर्ववेद के सम्पूर्ण त्रयोदश अध्याय में अद्भुत कर्मों का वर्णन और उनकी शान्ति के उपाय बताए गए हैं।

मेधाजनन, चित्र कर्म, लक्ष्मी कर्म, अलक्ष्मी विनाश, कृषि निष्पत्ति आदि कर्म पुष्टि कर्म के अन्तर्गत हैं।

४. पाकयज्ञ : निशाकर्म-विधान

शान्ति, पुष्टि, अभिचार, भैषज्य आदि जितने भी आथर्वण कर्म हैं, वे सब पाकयज्ञ कहे जाते हैं। पाकयज्ञ दो प्रकार के होते हैं—१. आज्य तंत्र, २. पाक तंत्र। आज्य तंत्र कर्म में घी की आहुति की प्रधानता होती है और पाक तंत्र में आहुति देने के लिए जो हविष्य बनाया जाता है, उसमें पुरोडाश (दही, उड़द) की प्रधानता होती है। यहाँ पर तंत्र शब्द से आज्य प्रधानता और पाक प्रधानता ही अभीष्ट है।

आथर्वण कौशिक सूत्र में निशाकर्म का जो स्वरूप बताया गया है, वह इस प्रकार है—

येषु निशाकर्मसु तन्त्रं तेष्वयं धर्मः। केचित्स्नातोऽहत वसनः प्रयुंक्ते। सः कर्मणि एते रसाः प्रत्येतव्याः समुच्चयेन।

सारांश यह कि निशाकर्म के तंत्र विधान में प्रयोक्ता स्नान करके शुद्ध, शुभ्र

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्त्र धारण करे। पवित्र यज्ञोपवीत धारण कर सम्पूर्ण निशाकर्म करे। व्याधि से पीड़ित व्यक्ति को अपने सामने बैठा कर रक्षोहण गण के मंत्रों से जलाभिषेचन कर उसकी तत्त्व-शुद्धि और भूत शुद्धि करे। तत्पश्चात् जौ की ढेरी में से एक मुट्ठी जौ लेकर ओखली में डालकर यवों को विना घुमाए, उकसाए, कूट-पीस ले। फिर व्याधि पीड़ित व्यक्ति पर शक्तिपात करके शणसूत्र (पटसन) से उसकी जीभ को स्वच्छ कराए। यह कर्म रात में किया जाना चाहिए, यही निशाकर्म है। इस तंत्र को करने के वाद अथर्ववेद के वरणो-वारयता मंत्रों से अभिमंत्रित कर वरण वृक्ष की मणि रोगी के गले या भुजा में बाँध दे। तत्पश्चात् जंगल में लगी हुई आग (दावाग्नि) से हवन करे। और आग को ताडपत्र से हवा देकर प्रज्ज्वलित करे।

कौशिक सूत्र के भाष्यकार दारिल-केशव का मत है कि निशाकर्म तंत्र तेरह दिनों तक करना चाहिए। तेरहवें दिन पाक यज्ञ तंत्र से पूर्णाहुति देकर मरुद्गणों की पूजा करनी चाहिए। उनका कथन है कि एक ही विषय पर अनेक प्रकार के आथर्वण-तंत्र विधान हैं। उन विधानों से किसी एक विधान से पीड़ित, दुःखी या असाध्य रोग-ग्रस्त रोगी को सुखी, सन्तुष्ट, समृद्ध और नीरोग वनाने का प्रयोग करना चाहिए।

अथर्ववेद में १९ प्रकार के अभिचार कर्मों का परिगणन किया गया है—कृकलास कर्म, शरगृष्टि कर्म, सपत्नीक्षयणीय कर्म, गाँव में जाकर किए जाने वाले ६ प्रकार के अभिचार कर्म, मणि कर्म, पाश कर्म, ३ प्रकार के विकङ्कत स्रुव कर्म और ५ प्रकार के कृत्या अभिचार कर्म। अथर्ववेदीय तंत्रविधान में किए जाने वाले यज्ञ (हवन आदि) वाईस प्रकार के हैं। स्वर्गोदन-तंत्र से सभी प्रकार के कर्म करने चाहिए अथवा स्वर्गोदन तंत्र और ब्रह्मोदन तंत्र दोनों से करना चाहिए। वस्तुतः यहाँ पर तंत्र शब्द का तात्पर्य क्रियाकलापपरक, प्रयोगपरक और प्रकरणपरक ही समझना चाहिए।

तंत्रभूत महाशान्ति कर्म

तंत्रभूत जलों द्वारा शान्ति कर्म करने का विधान है। तंत्रभूत महाशान्ति कर्म के लिए पुण्य जल का विधान अथर्ववेद के शान्तिकल्प (२०।१।२) में इस प्रकार बताया गया है—

तंत्रभूतां महाशान्तिं प्रवक्ष्यामो यथाविधिः
अन्यासां सर्वशान्तीनाममृतां विश्वभेषजीम्।
नदीभ्यो वा ह्रदेभ्यो वा जलं पुण्यं समाहरेत्
सं स स्रवन्तु तद्विद्वानभिमंत्रयते जनः॥

तात्पर्य यह कि सभी प्रकार की आधि-व्याधियों को दूर करने के लिए विश्व-भेषज, अमृत रूप पुण्य जल अमोघ है। किसी नदी या सरोवर का पवित्र जल लाकर उसे अथर्ववेद के 'सं सं स्रवन्तु' मंत्रों से अभिमंत्रित कर रोग-दोष, पाप-शाप और दौर्भाग्य-जनितारिष्ट निवारण के लिए प्रयुक्त करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद की शं त आपो हैमवतीः ऋचा के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि तंत्रभूत महाशान्ति कर्म के लिए शं त आपः इस सूक्त के मंत्रों से नदी या सरोवर से पवित्र जल लाकर उसे अभिमंत्रित कर तत्पश्चात् आथर्वण तंत्र करना चाहिए। तंत्र करने के बाद 'शं त आपः' इसी सूक्त के मंत्रों से मूंज की पतली रस्सी पर शक्तिपात करके उक्त सूक्त के मंत्रों से अभिमंत्रित कर आक्रमणकारी सेना की ओर छोड़ देने से शत्रु-सेना पराजित और विनष्ट हो जाती है।

निशाकर्म प्रयोग में भाष्यकार दारिल-केशव ने दुःख, दारिद्रय दैन्य-पीड़ित अथवा असाध्य आधि-व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति को वरण वृक्ष[1] की जड़ की मणि बाँधने का परामर्श दिया है। अथर्ववेद में मणि शब्द रक्षाकरण्ड और तावीज (यंत्र) का वाचक है। कौशिक सूत्र में स्पष्ट बताया गया है—'दर्भमणि-बन्धने विनियोगः, प्राजापत्याख्यायां सुवर्णरजतलौहमयं मणिबन्धनं कुर्यात्। अर्थात् मणि बन्धन करने से पूर्व उसके सूक्त से पहले विनियोग किया जाए फिर अभिमंत्रित मणि धारण की जाए।

निशाकर्म सायं काल से लेकर आधी रात तक रात में करने का विधान है। इस तंत्रकर्म से ब्रह्महत्या के पाप का निवारण होता है, कृत्यादोष का निवारण होता है, निर्ऋति (दुर्गति) का निवारण होता है। यदि कीटाणुओं के कारण, भूत-प्रेत की बाधा के कारण, घर में युवा-वृद्धों की एक-एक करके मृत्यु होती हो, स्त्रियाँ बन्ध्या हो जाती हों, अथवा गर्भपात हो जाता हो, या पैदा होने के बाद शिशुओं की मृत्यु हो जाती हो, स्त्रियाँ विधवा हो जाती हों, रक्तस्राव, रजस्राव लगातार होता हो, पति, पुत्रों आदि के सुखों का अभाव हो, अभिचार कर्मों के कारण तरह-तरह के कष्टों से पीड़ित हो, घर-परिवार में मतभेद, शत्रुता हो, स्वभाव और चरित्र में परिवर्तन हो जाए, कौवा, उल्लू, कबूतर शिर पर बैठ कर अपशकुन या मृत्यु की सूचना देते हों, कान बन्द करने पर भी कर्णनाद सुनाई पड़ता हो, तब किसी महीने के कृष्ण पक्ष में सन्ध्या काल से लेकर महानिशा काल तक निशा तंत्र की क्रिया करने से सभी प्रकार के पाप, शाप, ताप, रोग, दोष, भय, बाधा, अरिष्ट, अनिष्ट का निवारण होता है।

निशाकर्म में बृहच्छान्तिगण के सूक्त-मंत्रों से हवन करना आवश्यक बताया गया है। हवन के बाद अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १६ में बताई गई शान्ति औषधियों—अपामार्ग, बला (बरियारी), चित्त (चीता), श्यामाक (साँवा, सवाँ), काकजंघा (ककई), तलाश (ताड), वेतस (बत्सक, बनखड़), आडूषक (अडूसा), सीस पत्र (शीशम की पत्तियाँ), शाल्मली (सेमर की लकड़ी), सिपुनांकुरी (हिरन खुरी राँगा), आकृति लोक (क्षेत्रीय मिट्टी का ढेला) या तालाब की मिट्टी, साँप की बाँबी की रज, इन्द्र जौ और शमी की लकड़ी को मिट्टी की हाँड़ी में रखकर या कपड़े की पोटली में रख कर व्याधि पीड़ित व्यक्ति के शिर पर रख कर ऊपर से काले कपड़े से ढक दे और

---

१. वरण वृक्ष एक प्रकार का बिल्व वृक्ष है, जो कश्मीर में टिक्कड़ गाँव के पास पहाड़ में रागना देवी के मंदिर में हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ढाक (पलाश) के पत्तों को 'दीर्घायुत्वाय०'(अथर्व० २।४) मंत्रों से अभिमंत्रित कर उनके ऊपर सेमर की लकड़ियों को 'इन्द्र जुषस्व०' (अथर्व० २।५) मंत्रों से अभिमंत्रित कर रख दे। उसी पर व्याधि पीड़ित व्यक्ति को बैठा दिया जाए, फिर स्वस्त्ययन मंत्रों और रक्षोहण मंत्रों को पढ़ते हुए पीली सरसों चारों ओर बिखेर दे और अथर्ववेद के वेनस्तत० (२।१) तथा दिव्योगन्धर्वो० (२।२) मंत्रों को पढ़ते हुए माष (उड़द) और दधि (दही) की बलि चारों कोनों पर रखवा दे। तत्पश्चात् चाण्डाल अग्नि का आवाहन कर रौद्र-गण के सूक्तों से हवन कराया जाए, अन्त में शान्ति पाठ किया जाए।

स्त्री द्वारा स्त्री को शाप

अथर्ववेद (१।१४) में एक स्त्री को उसकी प्रतिस्पर्द्धिनी स्त्री सदा अविवाहित रहने का शाप देती है। कौशिक सूत्र (३६।१५।१८) में यह सूक्त स्त्री के विरुद्ध शाप रूप में ही ग्रहण किया गया है। किन्तु सायण ने इस सूक्त के भाष्य में इस शाप को स्त्री और पुरुष दोनों के लिए दुर्भाग्य कारक माना है। इसी भाष्य में सायण ने किसी अविवाहित कुमारी को सदा अविवाहित रहने का शाप देने की असित-कश्यप मंत्र-क्रिया बताई है। इस मंत्र-क्रिया का भाव इस प्रकार है :—

'किसी वृक्ष से फूलों का गुच्छा तोड़ लेने की भाँति मैं···(अमुक)···स्त्री के ऐश्वर्य और वर्चस्व को ग्रहण करता हूँ। वह स्त्री किसी घोर पर्वत की भाँति सदा अपने पिता के घर में ही रहे। हे यम, यह कन्या तुम्हारी पत्नी हो और यह अपनी माता के घर पर ही रहे। और अन्त में जैसे स्त्रियाँ पिटारी में वस्तुएँ बन्द करती हैं उसी प्रकार इस शाप की लक्ष्यभूता स्त्री का सौभाग्य असित कश्यपमय मंत्रों से ढक जाए।'

अथर्ववेद के काण्ड १ सूक्त ३४ में अनेक प्रकार के विविध प्रयोजनों के लिए विनियोग हैं। कौशिक सूत्र इस सूक्त के मंत्रों को शास्त्रार्थ और वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाने का निर्देश करता है, किन्तु सायण इस सूक्त का प्रयोग केवल अश्वमेध यज्ञ में शास्त्रार्थ करने के लिए कहता है। इस तरह कौशिक सूत्र और सायण भाष्य में इस सूक्त के विषय और प्रयोग में वैमत्य है। हमारे मत से उपर्युक्त सूक्त प्रेम विषयक है। किसी को अपने प्रेम-जाल में फँसा कर उसे अपने अधीन बनाने के लिए यह सूक्त जादू का-सा असर रखता है। मंत्र का भाव इस प्रकार है :—

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका का हृदय अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए एकान्त में बैठ कर उक्त सूक्त से मधुला (मुलहठी) को अभिमंत्रित कर यह कामना प्रकट करता है—सा नो मधुमतस्कृधि तथा जिह्वायाः अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् मम देह कृतावसो मम चित्तमुपायसि—इन दो मंत्रों को पढ़ने के बाद अभिचार कर्म करने वाला वह पुरुष मुलहठी से भी अधिक मधुर हो जाने का विश्वास रख कर कहता है—त्वं मधुयुक्तशाखावद् मां प्रति स्नेहं कुरु। मधुरोऽस्मि मधुमान् मधुमत्तरः मामित्किल त्वं बनाः शाखां मधुमतीम् अहं त्वां अभितः चतुर्षु दिक्षु इषुभिः।—अथर्ववेद (४।५)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाव यह है कि प्रेमी प्रेमिका के प्रति यह भाव प्रकट करता है कि तुम मुलहठी की मिठास की तरह मेरे प्रति मधुर स्नेह करो, मैं मुलहठी की मिठास से अधिक मधुर तुम्हारे प्रति हूँ और मैं तुम्हारे चारों ओर मिठास ही मिठास होने की कामना करता हूँ। वह फिर आगे कहता है—परिवेष्टियामि तथा त्वामभितः चलामि येन पारस्परिक घृणा न भवेत् त्वं माम् प्रति स्नेहं कुरु तथा मत्तो दूरं न याहि।—मैं तुम्हें दोनों ओर से लिपटाकर तुम्हारे दाहने-बाएँ इसलिए चलना चाहता हूँ, जिससे हम दोनों के बीच एक-दूसरे के प्रति घृणा न पैदा हो। तुम मुझसे प्रेम करो तथा मुझसे कभी दूर न होओ।

यह वशीकरण प्रयोग स्त्री-वशीकरण कर्म में प्रयुक्त होता है।

अपनी सौत को वश में करने के लिए अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त १८ के मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। पति को भी वशीभूत करने में इन्हीं मंत्रों के प्रयोग के साथ वनिता[1] औषधि को निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उखाड़े :—

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां वलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम्॥

इसके बाद उस औषधि को पवित्र स्थान में अथर्ववेद (३।१८) के छह मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित करके सौत या पति जिसे भी वशीभूत करना हो, उसकी शय्या के बिस्तरे के नीचे रखते हुए यह मंत्र पढ़े :—

अहमिव सहमानाथौ त्वमसि सा सहिः।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं (पतिं) मे सहायवै॥

कौशिक सूत्र में इस वशीकरण की एक दूसरी क्रिया भी बताई गई है, जिसका समर्थन आचार्य सायण ने अथर्ववेद के भाष्य में किया है। कौशिक सूत्र का कहना है कि 'जो स्त्री अपनी सौत पर विजय प्राप्त करना चाहे और उसे तथा अपने पति को वश में करना चाहे तो वह वाणपर्णी के पत्तों के चूर्ण को लालरंग की बकरी के दूध के दही के तोर (पानी) में मिला कर अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त १८ के दूसरे और तीसरे मंत्र से अभिमंत्रित कर सौत के बिस्तरे में छिड़क दे, और जिस पात्र में चूर्ण और दही का पानी था, उस पर अभितेषां सहमा नाम् पढ़कर फूंक दे और उस पात्र को सौत की चारपाई के नीचे रख दे। तत्पश्चात् उपतेऽधां सहीयसीम् पढ़कर चारपाई के ऊपर बचा हुआ चूर्ण पात्र से लेकर छिड़क दे।'

इसके अतिरिक्त सौत का पुतला मिट्टी या कपड़े का बना कर उपर्युक्त मंत्र पढ़ते हुए सौत के पुतले के शिर पर लोहे की सलाई के बने हुए बाण से छेदन किया जाता है।

---

१. सौवर्चला (हुलहुल)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुरुष द्वारा स्त्री वशीकरण

अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त २५ और काण्ड ४ सूक्त ५ स्त्री को वशीभूत करने में अमोघ सिद्ध हैं। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष द्वारा किए गए अनेक प्रयत्नों के बावजूद उसकी ओर आकृष्ट न होती हो और उसके प्रति घृणा प्रकट करती हो, तो उसे वशीभूत करने के लिए अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २५ के मंत्रों से अभिचार कर्म प्रयोग करना चाहिए। स्त्री के नाम और रूप का स्मरण, ध्यान करते हुए पुरुष रात ११ बजे के बाद अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त २५ के मंत्रों को पढ़ते हुए उस स्त्री के पुतले के हृदय में बाण चुभाए। यहाँ पर बाण 'काम' का प्रतीक है और यह लाक्षणिक प्रयोग है। इस लाक्षणिक क्रिया से उस स्त्री के हृदय में उसका प्रेमी पुरुष प्रविष्ट हो जाता है। अभीष्ट स्त्री का पुतला या फोटो केवल पुतला या प्रतिच्छवि नहीं है अपितु शरीर और आत्मा के साथ वह साक्षात् अभीष्ट स्त्री ही है। पुरुष को चाहिए कि पुतला या फोटो में ऐतु प्राण, ऐतु मनः मंत्रों द्वारा स्त्री के प्राणों और इन्द्रियों की प्रतिष्ठा कर ले। इसके बाद पुतला या फोटो पर बाण चुभाता हुआ यह मंत्र पढ़े :—

उत्तुदस्त्वोत्तुवत्तु मा धृथाः शयने स्वे।
इषुः कामस्य या भीमा तया विद्ध्यामि त्वा हृदि ॥

इस वशीकरण प्रयोग से स्त्री व्याकुल होकर प्रयोगकर्त्ता पुरुष से मिलने के लिए छटपटाने लगती है। अथर्ववेद में यह 'यातुकर्म' कहा गया है। इस यातुकर्म के प्रयोग के बाद प्रयोगकर्त्ता पुरुष मित्र और वरुण देवताओं से यह प्रार्थना (अथर्ववेद ३।४) करे कि 'मेरी प्रेयसी के हृदय में मेरे प्रति जो घृणा, आक्रोश है, उसे हटाकर मधुर और विनम्र बनाएँ, जिससे वह मेरी ओर आकृष्ट हो।'

अथर्ववेद के काण्ड ४ का सूक्त ५ 'स्वापन सूक्त' है। यह भी 'यातुकर्म' के लिए प्रयुक्त होता है। यदि दो प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे को हृदय से चाहते हैं किन्तु प्रेमी-प्रेमिका के पास तक पहुँचने में सर्वथा असमर्थ हो, तो इस यातु-क्रिया द्वारा वह सात परदे के अन्दर रहने वाली अपनी प्रेमिका के पास बेखटके आसानी से पहुँच सकता है।

उपर्युक्त सूक्त के तीसरे मंत्र से जल को अभिमंत्रित कर मंत्र को पढ़ते हुए उस जल को प्रेमिका के घर में छिड़कने से घर के अन्दर रहने वाले सभी प्राणी गहरी नींद में सो जाते हैं और उक्त सूत्र के छठे मंत्र से अभिमंत्रित जल को घर के मुख्य द्वार पर छिड़कने से घर के बाहर रहने वाले पहरेदार, चौकीदार, कुत्ते जो भी हों सब गहरी नींद में सो जाते हैं।

इस यातुकर्म की सामान्य विधि यह है कि प्रयोगकर्त्ता आधीरात में यह संकल्प करे कि मेरी प्रेयसी के घर के अन्दर और बाहर जो भी गतिशीलता, चहल-पहल है, उसे मैं स्तम्भित करता हूँ। जो कोई भी उस घर में चल फिर रहा है, खड़ा है, बोल रहा है, सब को मैं सुला रहा हूँ। इस प्रकार संकल्प करके स्वापन सूक्त का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जप करे। तदनन्तर निद्रा देवी से प्रार्थना करे कि 'हे निद्रादेवि, तुम इन सब को तब तक सुलाए रखो, जब तक सूर्योदय न हो जाए।

निद्रा देवी से प्रार्थना का मंत्र यह है :—

स्वप्न स्वप्नाभि करणेन सर्वं निष्ठापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतावहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः॥

५. अथर्ववेदीय तन्त्र में निहित रहस्यमयी शक्ति

अथर्ववेद मुख्यतया शान्ति-पुष्टि-कर्मों से संबंधित है। यह वेद ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से एकदम भिन्न नहीं है। ऋग्वेद, यजुर्वेद में भी शान्ति पुष्टि कर्म आदि विषय हैं, किन्तु अथर्ववेद की अपेक्षा कम हैं। चारों वेदों का अनुशीलन करने के बाद यह भली भाँति विश्वास हो जाता है कि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए, मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जो देवी-देवताओं या ईश्वर की स्तुतियाँ की जाती हैं; जो यज्ञ, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि किए जाते हैं, उनके अन्तराल में कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य निहित है। यही नहीं उस रहस्यमयी शक्ति की अपेक्षा देवता भी रखते हैं। ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र का कथन है :—

'वह आदिशक्ति अपनी स्तुतियों से भारत की जनता की रक्षा करे।'

उस आदिशक्ति की उपासना के अतिरिक्त एक और भिन्न कोटि की उपासना का उल्लेख अथर्ववेद में धर्म और यातु की महती शक्ति को मान कर किया गया है। दानवों, राक्षसों, पिशाचों को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए अथर्ववेद में एक उपासनापद्धति मिलती है। जिस प्रकार दानवों, राक्षसों से भय प्रकट किया गया है, उसी प्रकार रुद्र और वरुण देवताओं से भी इसलिए भय प्रकट किया गया है कि ये देवता क्रुद्ध होने पर दानवों से अधिक हानि पहुँचाने में समर्थ हैं।

यातुकर्म : धर्मकर्म

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में यातु भी उपासना का एक आधार है। यह तीसरे प्रकार की उपासना अथर्ववेद में प्रायः धर्म के साथ संयुक्त मिलती है। अथर्ववेद (१।९, ३।११, ४।४०, १९।३४, ४४) में यातु सम्बन्धी तीसरे प्रकार की उपासना कहीं एक ही सूक्त में और कहीं एक ही मंत्र में 'धर्म' से संयुक्त है।

पूर्वकृत अथवा ऐहिक पापों से उत्पन्न व्याधियों को दूर करने के लिए यातुकर्म प्रयोग और धर्मकर्म प्रयोग एक साथ प्रस्तुत किए गए हैं। पाश्चात्य विद्वान् तथा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिकतर भारतीय विद्वान् भी 'यातु' का अर्थ 'जादू', 'इन्द्रजाल', 'टोटका', 'टोना' लगाते हैं, किन्तु गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले अथर्ववेदीय प्रयोग यातु कहलाते हैं। तथा ज्ञान योग, भक्ति योग, ध्यान योग द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न धर्मकर्म कहलाते हैं। सारांश यह कि अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए यातुकर्म किया जाता है और मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्मकर्म किया जाता है।

शान्ति-पुष्टि-अभिचार कर्म की व्यापक सत्ता

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में अनहोनी घटनाओं, आकस्मिक विपत्तियों, दुष्परिणामी अपशकुनों, ईति-भीति, भय और विभीषिकाओं का परिचय देते हुए उनकी शान्ति के उपाय पुष्टि कर्म के अन्तर्गत बताए गए हैं। ऐसे आथर्वण तंत्र कर्म के विधान को तथा अथर्ववेद के विषय के रूप में शान्ति, पुष्टि, अभिचार कर्म की सत्ता को मीमांसकों[1] ने भी स्वीकार किया है।

श्रीमद्भागवत[2] में निर्देश है कि दुष्टग्रहों और दौर्भाग्य जनित अरिष्टों की शान्ति के लिए आथर्वण तंत्र द्वारा शान्ति कर्म कराए जाएँ। मार्कण्डेय पुराण[3] में अभिचार शान्ति कर्म युक्त अथर्ववेद का उल्लेख है। पुराणों में कतिपय विशिष्ट और असंभव अभीष्टों की पूर्ति के लिए आथर्वण प्रयोगों को प्राथमिकता दी गई है। जैसे देवी पुराण[4] में बताया गया है कि 'जब कोई व्यक्ति सन्तान न पैदा होने पर निराश हो जाए, उसके सारे धार्मिक अनुष्ठान, भौतिक उपाय असफल हो जाएँ, तब वह सन्तानोत्पादक आथर्वण मंत्रों द्वारा अनुष्ठान कर्म या तंत्र प्रयोग कराए, निश्चय ही सन्तानोत्पत्ति होगी।' आथर्वण तंत्र प्रयोग से शक्ति स्तम्भन,[5] आथर्वण मंत्र जन्य शोषिणीविद्या से अगस्त्यकर्तृक-समुद्रपान[6] तथा पातञ्जल योग भाष्य[7] के अनुसार शत्रु के क्षयार्थ आथर्वण तंत्र का सामर्थ्य, अथर्ववेदीय प्रत्यङ्गिरस् का शान्ति कर्म हरिवंश-पुराण[7] की नीलकंठी टीका, अथर्ववेदीय तंत्र प्रयोग से राजाबेन[8] की हत्या, आथर्वण तंत्रदीक्षा[10] इत्यादि आथर्वण कर्म सिद्ध होने के प्रमाण हैं।

'गोपथब्राह्मण'[11] अथर्ववेद को भैषज्य वेद मानता है। अथर्ववेद में अनेक ऐसे सूक्त हैं जो मनुष्य के दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों का हरण करते हैं। स्थापत्य कला का मूल उत्स अथर्ववेद है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[12] में विस्तार से यह बताया गया है। गिरिजनों, आदिवासियों, डाकिनी स्त्रियों, नीच व्यक्तियों द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि सिद्ध शाबर मंत्र अथर्ववेद के अवशिष्ट हैं। नेपाल के राजगुरु स्व०

---

१. अथर्ववेद भाष्य भूमिका, पृष्ठ १२३। २. १०।५३।१२। ३. १०।२।२
४. ६।२।३३। ५. नागर खंड १७०।१-२। ६. ना० ख० ६०।२-३
७. ४।१०। ८. हरिवंशपुराण १।३।६५। ९. प्रभास क्षेत्र खंड ३३६।८६
१०. पुरुषोत्तम खंड २८।१७। ११. १।३।४। १२. २।११।२९।११-१२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हेमराज शर्मा ने काश्यप संहिता के उपोद्घात[1] में अथर्ववेदीय रोगोपचार का विवेचन वैज्ञानिक दृष्टिकोण रख कर किया है।

आथर्वण मंत्रों के जप का प्रभाव

अथर्ववेदीय तंत्र विधान में शान्ति, पुष्टि कर्मों के लिए हवन और जप को प्रधानता दी गई है। अथर्ववेदीय मंत्रों के जप का प्रभाव प्रत्यक्ष लाभप्रद सिद्ध है। जप मात्र से अभीष्टसिद्धि प्राप्त होती है। सायण आचार्य ने अथर्ववेद भाष्य में स्कन्द-पुराण के कमलालय खण्ड का एक वचन उद्धृत किया है, जिसका सारांश यह है :—

'श्रद्धापूर्वक अथर्ववेद के मंत्रों का जप करने से मंत्र के अर्थ के अनुकूल फल मिलता है। अथर्ववेद के मंत्र जप के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।'

अथर्ववेद के मंत्रों को जपने की परंपरा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। 'काठक संहिता'[2] के ब्राह्मण में ऋगादि मंत्र-जन्य शंसनादि के साथ अथर्व-मंत्र-जन्य जप क्रिया का ही निर्देश मिलता है। चारों वेदों में से अथर्ववेद के मंत्रों को विशेषज्ञों ने बहुत ऊँचे स्तर पर रखा है। अथर्ववेद ही एक ऐसा वेद है, जिसके मंत्रों के प्रयोग और उपयोग किसी वैदिक यज्ञ के आश्रय के बिना स्वतंत्र रूप से किए जा सकते हैं। अथर्ववेद की यह मौलिकता ही इसकी प्रमुख विशेषता है। इसीलिए इस वेद के तंत्र-मंत्र की साधना, उपासना के द्वार बिना किसी भेद-भाव के प्रत्येक धर्म, जाति और देश के निवासी के लिए खुले हुए हैं।

अथर्ववेद में रोगों के निदान और चिकित्साकर्म

अथर्ववेद में कर्मज व्याधियों के निदान और व्याधियों की चिकित्सा का वर्णन मिलता है। चिकित्सा में उपयोगी विधान, रोगों के कारण, रोग-सम्प्राप्ति और रोग के लक्षण आदि को अथर्ववेद में 'निदान' संज्ञा दी गई है। शारीरिक रोगों में यक्ष्म ज्वर, मानसिक रोगों में उन्माद और आगन्तुक (बाह्य) रोगों में आघात तथा क्षत को प्रमुखता दी गई है।

अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में रोगों के सामान्य कारण का उल्लेख करते हुए ज्वररोग का उत्पत्ति-प्रदेश, ज्वर के वात, पित्त आदि कारण, ऋतु-ज्वर (मौसमी बुखार), शोक, मोह आदि से उत्पन्न ज्वर, ज्वर की सम्प्राप्ति, ज्वर के लक्षण आदि निदान रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। ज्वर का निदान अथर्ववेद के आठ मन्त्रों द्वारा किया गया है और आठ प्रकार के ज्वर-रोगों का विवरण दिया गया है। ज्वर रोग को महाव्याधि कहकर बताया गया है कि ज्वर पुराना हो जाने पर जीर्ण-ज्वर कहलाता है और जीर्ण

---

१. पृ० ९-१२
२. पृ० १२२
३. ४०।७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्वर जब धातुओं का क्षय कर देता है तब वह क्षय रोग अथवा राजयक्ष्मा कहलाता है। अथर्ववेद में क्षय रोग को महा-रोग, महाव्याधि ज्वर, उसका उत्पत्ति स्थान, कारण, सम्बन्ध और सम्प्राप्ति तथा लक्षणों पर विस्तार से विवेचन किया गया है।

मानसिक रोगों में उन्माद तथा दुःस्वप्न अथवा निद्राक्षय को प्रधान मानकर इन रोगों का कारण बताते हुए कहा गया है कि जब मनुष्य विद्वानों, संतों और सदाचार परायण व्यक्तियों का सत्संग त्याग देता है और शिष्टजनों, गुरुजनों, देवों, पितरों का निरादर करने लगता है, उनकी निन्दा करने में तत्पर रहता है और सात्विक आचरणों का उल्लङ्घन करता है, इन्द्रिय लोलुप बनकर भोग-विलास में रत रहता है तब वह उन्माद रोग से ग्रस्त होता है।

दूसरा कारण यह बताया गया है कि जब आदमी दुर्जनों का चाटुकार बनकर उनके अधीन हो जाता है और उनके साथ पापाचरण करने लगता है, तामस भावों में निरत रहता है; शोक, मोह और चिन्ता से ग्रस्त होता है; दुष्प्रवृत्तियों, दुष्कर्मों में मन की शक्ति का अपव्यय करता है; मन के स्रोतों तथा सूक्ष्म तरंगों और तन्तुओं के निरन्तर विपरीत कम्पन होते रहने से मस्तिष्क-क्षोभ, तन्तुविच्छेद, शैथिल्य और जड़ता आ जाती है, जिससे मनुष्य उन्माद का रोगी हो जाता है।

अथर्ववेद[1] दुःस्वप्न को पाप-वासना, काम-वेग, चिन्ता, दरिद्रता, सम्पत्ति-नाश का और पराजय का पुत्र मानता है। दुःस्वप्न रोग से मन व्याकुल रहता है, मस्तक-शूल रहता है और भ्रम, मूर्च्छा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

आघात अथवा क्षत आदि आगमिक रोगों के कारण और लक्षण बतलाते हुए अथर्ववेद[2] में कहा गया है कि 'शर आघात से शरीर के अंग कट जाने से, पत्थर की चोट या रगड़ से घाव या दबाव आ जाने से आघात सम्बन्धी रोग होते हैं।'

इस प्रकार रोगों का निदान बतलाते हुए अथर्ववेद आयुर्वेदीय चिकित्सा का भी विधान बतलाता है। औषधियों द्वारा व्याधियों को दूर करने का नाम आयुर्वैदिक चिकित्सा है, जिसके उपाय-भेद से निम्नांकित भेद बताए गए हैं।

१. आश्वासन चिकित्सा—इसके द्वारा रोगी को सर्वप्रथम आरोग्य होने का आश्वासन दिया जाता है।

२. उपचार चिकित्सा—रोगी के उपचार के लिए कैसे उपचारक होने चाहिए, रोगी से किस प्रकार की बातें की जानी चाहिए, उससे कैसा व्यवहार करना चाहिए। उपचार चिकित्सा में मुख्यतया चार बातें कही गई हैं। प्रथम रोगी के उपचार में उसके आत्मीयजन, स्नेही, शुभचिन्तक रहें। दूसरे वर्तमान सम्बन्धियों पर रोगी के हृदय में प्रेम उत्पन्न करना और मरे हुए सम्बन्धियों का स्मरण न करने देना। तीसरे रोगी की औषधि को उसके माता, पिता, भाई, बहिन ही तैयार करें। चौथी बात यह है कि

---

१. १६।५।१, ४, ७
२. ४।१२।७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेद मन्त्र का उपदेश है कि प्रत्यक् सेवस्वभेषजं अर्थात् औषधि या भेषज को आत्मीय भाव से अपनाकर सेवन करना चाहिए।

३. सूर्यकिरण चिकित्सा—प्राणिमात्र का जीवनदाता सूर्य है। सूर्य किरणें व्याधियों को दूर करने में सहायक हुआ करती हैं, वे रोगों के विष को शरीर के अन्दर से खींच लेती हैं। अथर्ववेद[1] में सूर्यकिरण-चिकित्सा का विधान है।

४. जल चिकित्सा—प्राकृतिक पदार्थों में जल को महौषधि माना गया है तथा जल को रोग दूर करने वाला और जीवनीशक्ति देने वाला अमृत कहा गया है। इसीलिए वैदिक निघण्टु[2] में जल का नाम अमृत दिया गया है।

अथर्ववेद में जल को नित्य आहार की वस्तु मानने के साथ प्राकृतिक चिकित्सा का एक परम उपाय कहा गया है। वृष्टि का जल, झरनों का जल, नदी-प्रवाह का जल और कूप का जल भेषज जल[3] है। इन जलों में भेषज धर्म रहता है, जो विविध प्रकार के रोगों को दूर करता है।

५. अग्नि, वायु तथा हवन चिकित्सा—अग्नि भेषज रूप है। यह शीत-प्रकोप की औषधि[4] है। शीत, सन्निपात ग्रस्त रोगी को अग्नि का उपयोग करना चाहिए। आग से सेंकना, आग से भभका देना, रुग्ण अंगों को गरम रखना अग्नि चिकित्सा है। अग्नि-चिकित्सा बतलाते हुए अथर्थवेद कहता है—'अग्नि में होम करना ही अग्नि-चिकित्सा है।' अग्नि में होम करना, अग्नि और वायु की संयुक्त चिकित्सा तथा होम चिकित्सा है। होम-चिकित्सा का विधान अथर्ववेद[5] में है। अथर्ववेद यज्ञ प्रधान होने से ब्रह्मवेद कहलाता है।

६. शल्य चिकित्सा—अथर्ववेद में तीन प्रकार की चिकित्सा में से एक शल्य-चिकित्सा भी है। (१) औषधियों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा औषधि चिकित्सा है। (२) प्राकृतिक पदार्थों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा और (३) शल्य चिकित्सा।[6]

७. विष चिकित्सा—शरीर में किन्हीं कारणों से प्रविष्ट विष तथा विष के प्रभाव को दूर करने, नष्ट करने का नाम विष-चिकित्सा है। स्थावर, जंगम और कृत्रिम भेद से विष तीन प्रकार के माने गए हैं। स्थावर और जंगम विष स्वाभाविक होते हैं। किन्तु कृत्रिम विष बनाया जाता है, यह विष पदार्थों के संयोग से बनता है।

---

१. १।२२
२. १।१२
३. अमृतमुदकं नाम (अथर्व० १।४।४), अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजं तथा सोमोऽब्रवीदन्त विश्वानि भेषजा (वही १।६।२) एवं आपःवृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम (वही १।६।३) और ज्योक च सूर्यं दृशे (वही)
४. अग्निष्कृणोतु भेषजम् (अथर्ववेद ६।१०६।३)
५. अथर्ववेद (१९।३८)
६. अथर्ववेद (४।१२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थावर विष के दो भेद हैं—(१) वनस्पतिज, (२) खनिज। वनस्पतिज विष वनस्पतियों, कन्द, मूल, वनस्पतिसार, वनस्पतियों की छाल, दूध, गोंद, पत्तियों, फलों और फूलों में होता है। खनिज विष खदानों, भूमि, पर्वतों में खोदने से निकलने वाला संखिया, हरताल, पारा आदि के रूप में होता है। अथर्ववेद में अनेक सूक्त स्थावर और जंगम विषों के प्रभाव को दूर करने में प्रभावी सिद्ध हैं। औषधियों द्वारा भी विष-प्रभाव दूर करने के अनेक उपाय अथर्ववेद में बताए गए हैं।

शरीर के अंगों में कृमियों का प्रवेश न हो। खान-पान के पदार्थों में कृमियों का सम्पर्क न होने पाए आदि सब प्रकार के कृमि-दोषों को दूर करने के उपाय का नाम कृत्रिम विष चिकित्सा या कृमि चिकित्सा[1] है।

८. केश रोग चिकित्सा—अथर्ववेद में शिर से लेकर पैरों तक सभी रोगों की चिकित्सा का विधान है। शिर के बालों के विविध रोगों को दूर करने के उपाय अथर्ववेद[2] में हैं।

९. शिरो रोग चिकित्सा—सिर दर्द, फोड़ा, फुन्सी, शिरो-ग्रंथि, गूंगापन, बहरापन, ब्रेनहैमरेज, हाई ब्लडप्रेशर आदि शिर को प्रभावित करने वाले जितने भी रोग होते हैं, उनकी चिकित्सा अथर्ववेद[3] में मिलती है। इस प्रकार के रोग जलाभिषेचन, हस्ताभिमर्ष, मणिबन्धन से दूर किए जाते हैं।

१०. मानसिक रोग चिकित्सा—समस्त मानसिक रोगों को मन्त्रों द्वारा तथा औषधियों द्वारा दूर करने के प्रयोग अथर्ववेद[4] में हैं।

११. भूतोन्माद रोग चिकित्सा—बाह्य सूक्ष्म कीटाणुओं के शरीर में प्रविष्ट हो जाने से जो उन्माद पैदा हो जाता है, उसे भूतोन्माद कहते हैं। यह रोग अधिकतर स्त्रियों को हुआ करता है। रजस्वला होने की अवस्था में अथवा उसके बाद जब उनके गुप्तांग में गन्दगी बनी रहती है अथवा सहवास करने के बाद गुप्तांग की सफाई नहीं की जाती है, तब सूक्ष्म कीटाणु उनके शरीर में प्रविष्ट होकर ऐसा उन्माद उत्पन्न करते हैं कि लोग उसे प्रेत बाधा समझकर झाड़ फूंक करते हैं, अथवा डाक्टरों की चिकित्सा करते हैं। इस रोग का निदान आथर्वणतन्त्रविद् विद्वान् आसानी से कर लेते हैं और आथर्वण तन्त्र[5] के प्रयोग से रोगी को आरोग्य प्रदान करते हैं।

१२. अपस्मार चिकित्सा—मृगी, मूर्च्छा, हिस्टीरिया को अपस्मार कहा गया है। इस रोग की चिकित्सा अथर्ववेद में दशमूलारिष्ट, दशमूल का काढ़ा, दशमूल रस,

---

१. अथर्ववेद ५।२३
२. अथर्ववेद ६।१३६
३. अथर्ववेद ८।८
४. अथर्ववेद ६।४३,८६
५. अथर्ववेद ४।३७

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8592

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दशमूल घृत, दशमूल अर्क, दशमूल चूर्ण और वटी आदि के द्वारा बताई गई है और काण्ड ८ सूक्त ४ से जलाभिषेचन करना भी बताया गया है।

१३. नेत्र रोग चिकित्सा—धुंधलापन, रतौंधी, आँखों में जलन, आँखों से आँसू गिरना, आँखों की लाली, आँखों का ग्लुकोमा, आँखों का नाखूना, आँखों की फूली, आँखों में माडा, आँखों की पलकों के वाल झरना, मोतियाबिन्द आदि जितने प्रकार के नेत्र रोग होते हैं, उनको दूर करने के उपाय अथर्ववेद के कई स्थलों में बताया गया है। इस उपचार क्रम में जल चिकित्सा, अंजन और मणिवन्धन विधियाँ भी बताई गई हैं। औषधियों में कुष्ठ (कूट) औषधि, कमल पुष्प, कमल मधु द्वारा नेत्र रोग दूर करने के उपाय अथर्ववेद[1] में बताए गए हैं। कच्चे आँवले का रस और मधु को मिश्रित कर अंजन की तरह आँखों में लगाने से मोतियाविन्द चक्षु-रोग दूर होता है।

१४. कास रोग चिकित्सा कास (खाँसी-दमा) की तीन स्थितियाँ होती हैं। १. श्वास रोग के साथ, २. यक्ष्म रोग के साथ और ३. स्वतंत्र रूप। सूखी, कफज, कुकुर खाँसी, काली खाँसी आदि अनेक भेद कास के हैं। अथर्ववेद में गीली खाँसी,[2] सूखी खाँसी[3] की चिकित्सा बताई गई है। यह भी बताया गया है कि सूखी खाँसी में समुद्र फेन और गीली खाँसी के लिए मन का संकल्प, रेहू मिट्टी और समुद्र फेन महौषधि हैं। जंगल या पर्वत पर निवास करने से गीली खाँसी दूर हो जाती है।

कुकुर खाँसी के संवंध में बताया गया है कि खाँसते समय बहुत कष्ट होता है। जहाँ पर कफ जमा रहता है, वहाँ ज्यादा कष्ट होता है, उस स्थान पर मन को एकाग्र करना चाहिए। मन एकाग्र हो जाने पर और कष्ट का स्थान मन की पकड़ में आ जाए तो उस स्थान पर जमे हुए कफ को ढीला करने और उसे ढकेल कर बाहर निकालने का संकल्प करना चाहिए। कहा गया है कि मन शरीर के अन्दर की विद्युत् शक्ति है, वह जमे हुए कफ को, शोथ को पिघला कर, ढीला करके बाहर निकाल देता है। इस प्रकार की चिकित्सा को संकल्प चिकित्सा कहा गया है।

१५. अपची (गण्डमाला) चिकित्सा—गले के चारों ओर हार की तरह जो गाँठें पैदा हो जाती हैं, उन्हें अपची या गण्डमाला कहा गया है। इस रोग की चिकित्सा अथर्ववेद में कई स्थलों पर बताई गई है। अथर्ववेद[4] में इस रोग की भीषणता और इसके स्वरूप का वर्णन किया गया है जिसका सारांश यह है कि लाल रंग वाली (लोहितीनां), बुरी तरह से संचित, न पकनेवाली गाँठों को (अपचिताम्), कृष्ण रंग वाली दूषित रुधिर की नाड़ी उत्पन्न करने वाली (कृष्णा माता) अपची को मैं मुनिदेव (अगस्त्य वृक्ष) की जड़ से या पलाश वृक्ष की जड़ से बींधता हूँ, (विध्यामि)—दबाता हूँ।

१. अथर्ववेद ४।२०
२. अथर्ववेद १।१२।३
३. अथर्ववेद [illegible]
४. अथर्ववेद [illegible]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूक्त में अपची गण्डमाला की चिकित्सा अगस्त्य वृक्ष की जड़ तथा हस्ति-कर्ण पलाश द्वारा बताई गई है। साथ ही अगस्त्य और पलाश की जड़ का स्वरस पान तथा गण्डमाला की गाँठों को उस स्वरस से धोना बताया गया है।

संक्षेप में यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त रोगों के अलावा अथर्ववेद में हृदय रोग, श्वास रोग, उरःक्षत, अग्निमान्द्य, अर्श, शूल रोगों की चिकित्सा, प्रत्येक अंग में उत्पन्न रोगों की चिकित्सा, वाजीकरण चिकित्सा, योनि-कृमि चिकित्सा, गर्भ-ह्रास चिकित्सा, गर्भ दृढ़ीकरण चिकित्सा, गर्भभक्षक कृमि चिकित्सा, अपमार्जनीय रोग चिकित्सा, किलास (कुष्ठ रोग) चिकित्सा, वात-व्याधि चिकित्सा, हलीमक (पाण्डुरोग) चिकित्सा, क्षत रोग चिकित्सा, विद्रधि रोग चिकित्सा, विसर्प रोग चिकित्सा, क्षेत्रिय (वंशगत) रोग चिकित्सा, रसायन चिकित्सा और पशुरोग चिकित्सा के विधान हैं।

६. भैषज्य-विद्या : मन्त्र-विद्या

'अथर्ववेद' यह नाम ही चित्त वृत्तियों के निरोध एवं स्थित प्रज्ञता का अर्थ रखता है और इन विषयों (इन्द्रिय-निग्रह, स्थित प्रज्ञता) का विशद निरूपण अथर्ववेद में मिलता है। अथर्वा[1] शब्द का निर्वचन करने से ज्ञात होता है कि चंचल चित्त-वृत्तियों का निरोध एवं स्थित प्रज्ञता की अवस्था और उसके उपायों का प्रतिपादक वेद 'अथर्व-वेद' है। इस वेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी प्रकार के रोग, दोष, पाप, शाप, ताप, दौर्भाग्यजनितारिष्ठ, आधि-व्याधि के विनाशक, निवारक मन्त्र हैं। इसीलिए अथर्ववेद में अथर्ववेद को भेषजा भी कहा गया है।[2]

गोपथ ब्राह्मण[3] में उल्लिखित—योऽथर्वाणस्तद् भेषजं तदमृतं यदमृतं तद्ब्रह्म—अनुवाक् यह बतलाता है कि अथर्ववेद में प्राणिमात्र के शारीरिक, मानसिक रोगों, कष्टों के निवारण के उपाय प्रतिपादित हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण[4] भी यही कहता है—'अथर्ववेद के सूक्त आधि-व्याधि के निवारण से सम्बन्ध रखते हैं।' यही ब्राह्मण यह भी कहता है कि 'अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट अथर्ववेद के मन्त्र देवों के लिए 'भेषज' प्रतिपादक हैं, जिनसे

---

१. न थर्वश्चरति क्रमतिकर्मा तत्प्रतिषेधः।
२. ऋचः सामानि भेषजा यजूंषि ११।६।१४
३. गोपथ ब्राह्मण (पूर्वार्द्ध) ३।४
४. भेषजं वाऽथर्वाणि।—ता० ब्रा० १२।८।१०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आरोग्य प्राप्त होता[1] है। 'भेषज' प्रधान होने से अथर्ववेद आयुर्वेद का उद्गमस्थल माना जाता है।[2]

अथर्ववेद केवल 'भेषज' का ही प्रतिपादक नहीं है। इसमें पदार्थ-विज्ञान, मनोविज्ञान, अक्षर विज्ञान, कर्मजव्याधि विज्ञान, भैषज्य विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, सृष्टि विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, देवता विज्ञान, भूविज्ञान और ब्रह्म विज्ञान का विशद निरूपण किया गया है। आयुर्वेद विषयक नौ सूक्त, ओषधि-भैषज्य विषयक पच्चीस सूक्त, रोग-निवारक उपाय विषयक बत्तीस सूक्त, विष-निवारक विषयक सात सूक्त—जिनमें विष, विष-दूषण निवारण सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रयोग हैं। अनेक प्रकार के कृमि, कीटाणु हैं और वे शरीर में प्रविष्ट होकर अनेक प्रकार के विष और रोग उत्पन्न किया करते हैं, उन्हें नष्ट कर आरोग्यता प्रदान करने के विविध उपाय तीन सूक्तों में हैं। असुर-प्रभाव, पिशाच-प्रभाव, कृत्या-दूषण (मूठ-मारण) प्रयोग, दस्यु-पीडा, शत्रु-पीडा, ईर्ष्या, दरिद्रता, अलक्ष्मी आदि सैकड़ों प्रकार के जो अरिष्ट होते हैं, उन सबको नाश करने के उपाय बारह सूक्तों में बताए गए हैं।

मन्त्र-विद्या का वर्गीकरण

अथर्ववेद में उल्लिखित मन्त्र-विद्या पाँच प्रकार की है।

१. संकल्प, आवेश; २. अभिमर्षण, मार्जन; ३. आदेश; ४. मणि-बन्धन; ५. कृत्या और अभिचार।

१. संकल्प, आवेश—दुःस्वप्न, दुरित, दुःख, पाप, शाप और दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए 'संकल्प' अथवा 'आवेश' मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। प्रयोक्ता रोगी या दुःखी प्राणी के शिर पर हाथ रखकर मन्त्र पढ़ते हुए उसके नीरोग और सुखी होने का संकल्प करता है।

यह एक प्रकार का शक्तिपात है, जो संकल्प शक्ति द्वारा रोग, दोष, पाप, शाप का निवारण क्षण मात्र में करता है। संकल्प शक्ति द्वारा भयंकर उन्मादग्रस्त, प्रेतग्रस्त आदमी तुरन्त स्वस्थ हो जाता है। संकल्प करके मंत्र पढ़ने से असाध्य रोग दूर हो जाता है। किन्तु यह शक्तिपात कोई सरल प्रक्रिया नहीं है। प्रयोक्ता साधना द्वारा जब मन की चंचलता दूर कर एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, संकल्प शक्ति अर्जित कर लेता है, तभी ऐसे रोगों, दोषों को दूर करने में समर्थ हो सकता है। आत्मशक्ति ही इस प्रक्रिया का मुख्य साधन है। आत्मशक्ति सम्पन्न प्रयोक्ता संकल्पपूर्वक जब मन्त्र पढ़ता है, तो मन्त्र के वर्णों और उसकी मात्राओं से ऐसी ध्वनि तरङ्गें निकलती हैं, ऐसी विद्युत् लहरों के स्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं, जो दुःखी, असाध्य रोगी के सारे दोषों को बाहर निकाल

---

१. भेषजं वै देवानामथर्वाणः भेषज्यार्थं वारिष्टयै।—ता० ब्रा०
२. इह खल्वायुर्वेदोनाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।—सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानं, अ० १०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर उसके तन-मन को पवित्र बना देते हैं। तन, मन, प्राण की पवित्रता ही मनुष्य की आरोग्यता, उसकी उन्नति का कारण होती है।

२. अभिमर्षण --अभिमर्षण का अर्थ है दोनों हाथों की अँगुलियों से रोगी के शरीर के अंगों को ऊपर से नीचे तक स्पर्श करना। इसे इंग्लिश में 'पॉस' कहते हैं। दोनों हाथों की दसों अँगुलियों से रोगी के शरीर के सर्वांगों को स्पर्श करते हुए प्रयोक्ता जब मन्त्र पढ़ता है, तो रोगी के अन्दर प्रयोक्ता द्वारा प्रक्षेपित विद्युत् तरङ्गें उसके अंग-अंग को कम्पित स्पन्दित करती रहती हैं। सारे शरीर में सनसनाहट पैदा हो जाती है, शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। रोगी की बेहोशी की-सी हालत हो जाती है और फिर वह स्वस्थ प्रसन्न हो जाता है। दिल के दौरे में, हाई ब्लडप्रेशर में, वज्राघात में यह क्रिया तत्काल प्रभाव डालती है। अभिमर्षण क्रिया करने वाला प्रयोक्ता जब तन, मन, प्राण से पवित्र; ओज, तेज से सम्पन्न और संकल्पनिष्ठ होता है और वेद मन्त्रों की ध्वनियों, तरंगों का ज्ञान रखता है; अपने शरीर की विद्युत् लहरें रोगी के शरीर के अन्दर अँगुलियों के नखों से प्रक्षेपित करने की क्रिया-शक्ति का अभिज्ञ होता है; कितनी मात्रा में रोगी पर शक्ति पात करना चाहिए—इस विषय का ज्ञाता होता है; तभी यह अभिमर्षण क्रिया सद्यः फलवती होती है।

३. आदेश क्रिया—आदेश, मन्त्रों की भावना द्वारा रोग, दोष, मस्तिष्क विकार, मानसिक-विकार दूर करने की प्रक्रिया है। 'आदेश-क्रिया' को अथर्ववेद में संवशीकरण भी कहा गया है। जो व्यक्ति चंचल मनोवृत्ति के होते हैं, एक काम को छोड़ कर दूसरा, तीसरा काम करने लगते हैं अथवा कोई काम मन लगा कर नहीं करते हैं, सर्वत्र लापरवाही बरतते हैं; बिना सोचे-समझे हानिकर कार्य कर बैठते हैं, किसी के समझाने पर, परामर्श देने पर अमल नहीं करते हैं अथवा जो उद्दण्ड, दुर्विनीत, असीमक्ष्यकारी, घमंडी और उन्मत्त व्यक्ति होते हैं—उन लोगों पर आदेश-मंत्रों की क्रिया करने से तुरन्त लाभ होता है। यही 'संवशीकरण' है। संवशीकरण का तात्पर्य है कि प्रयोक्ता आदेश मन्त्रों द्वारा उद्दण्ड, रोगी या पीड़ित व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर उत्तम सर्जनकारी प्रभाव डालकर उसे अपने आदेश (मन्त्र में उल्लिखित) पर कार्य करने और सोचने के लिए अनुगामी, आज्ञाकारी बना लेता है। रोगी को संबोधित करते हुए प्रयोक्ता उस पर आदेश-मन्त्रों का इस प्रकार प्रयोग करता है—'मैं तुम्हारे मन और चित्त को अपने मन और चित्त से मिलाता हूँ। तुम्हारे हृदय को अपने वश में कर रहा हूँ, जिससे तुम मेरे अनुयायी, आज्ञाकारी बन कर अपने अभ्युदय के लिए कार्य करो।'

इन आदेश-मन्त्रों से प्रयोक्ता पागलों, उद्दण्डों, डाकुओं, हत्यारों, दुराचारियों, चिन्तातुरों, आलसियों, ईर्ष्यालुओं को जब अपना अनुगत बना ले, तब फिर वह आम की समिधाओं से अग्नि को प्रज्ज्वलित कर कपूर, चन्दन और तुलसी के बीजों से अथर्ववेद के आभ्युदयिक मन्त्रों से रोगी द्वारा १०८ आहुतियाँ दिलाए। रोगी उसी दिन से उन्नतशील होने लगता है।

आदेश एक विद्या है, जिसके अनेकानेक मन्त्र अथर्ववेद में हैं। जीर्ण ज्वर,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकान्तरा ज्वर, तिजारी, चौथिया, टाइफाइड आदि ज्वर, महाज्वर, कालज्वर, राजयक्ष्मा, स्नायुदौर्वल्य, इस्नोफीलिया, लकवा, हृदय रोग, मस्तिष्क रोग, कैन्सर आदि घातक असाध्य रोग भी दूर करने के लिए आदेश-मन्त्रों के प्रयोग किए जाते हैं। इन मन्त्रों के विधिवत् प्रयोग से आदमी उन्नतशील जीवन, यशस्वी जीवन जीने के लिए जीवन-पथ पर अग्रेसर होता है।

४. मणिबन्धन के प्रयोग युद्धों में विजय प्राप्त करने के लिए, शत्रुओं को परास्त करने के लिए; अनिष्टों, अरिष्टों का नाश करने के लिए, दुर्भाग्य एवं पाप, शाप को दूर करने के लिए, सतत अभ्युदय प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। मणि का तात्पर्य अथर्ववेद में लताओं, वृक्षों के मूल, फूल, फल, बीज को अभिमंत्रित कर तावीज में भर कर बाँधना है। हाँ, शंखमणि निश्चय ही एक रत्न है, जिसको अथर्ववेद में 'मणि' कहा गया है। अथर्ववेद में फालमणि, शंखमणि, अञ्जनमणि, अभीवर्तमणि, वरणमणि, जङ्गिडमणि, पर्णमणि, दर्भमणि, शतवारमणि, औदुम्बरमणि, प्रतिसरणमणि, स्राक्त्यमणि आदि मणियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में हिरण्यमणि वृक्ष, लता की मणि न होकर कनकमणि है, जिसे कनक लहसुनिया कहते हैं। फालमणि रुद्राक्ष की एक प्रजाति का फल है। इसकी उत्पत्ति कर्नाटक, तमिलनाडु में होती है। निघण्टु में 'फालं-बदरीफलम्' बताया गया है, जो रुद्राक्ष का बोधक है। स्राक्त्यमणि रुद्राक्ष है। अथर्व-वेद के स्राक्त्यमणि सूक्त से अभिमन्त्रित रुद्राक्ष धारण करने पर शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। मस्तिष्क रोग, हृदय रोग नहीं होते हैं। प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है। विवेक बुद्धि जाग्रत रहती है। अरिष्टों, अनिष्टों का निवारण होता है। शंखमणि मस्तिष्क और बुद्धि तथा हृदय संबंधी रोग दूर करती है। मन-मस्तिष्क-बुद्धि का सन्तुलन बनाए रखती है। बुद्धि निर्मल होती है। दुर्विचार नहीं उत्पन्न होते हैं। अथर्ववेद के आठवें काण्ड के सूक्त ५ में प्रतिसरण मणि तथा इसी काण्ड में पूतद्रु रुद्राक्ष के बोधक हैं। जङ्गिड मणि (अर्जुन वृक्ष की जड़) हृदय दौर्वल्य, यौन-रोग का निवारण करती है तथा विष-दोष, कफजन्य विकार, वायु-विकार, स्नायुदौर्वल्य, ज्वर, नेत्र-विकार आदि रोगों को दूर करती है। प्रतिसरण मणि ओज और बल प्रदान करती है। दर्भमणि हर प्रकार की बाधाओं से रक्षित कर धार्मिक, सात्विक भाव उत्पन्न करती है। औदुम्बर मणि, दैन्य, दुख, दरिद्रता, धनाभाव को नष्ट करती है। हरिण शृङ्ग मणि हृदय रोग, कण्ठमाला, ग्रीवा रोग, पक्षाघात दूर करती है और हिरण्य मणि धन, समृद्धि, बुद्धि वर्द्धक होती है।

५. कृत्या-दूषण और अभिचार कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और वशीकरण) के प्रभाव को दूर करने के लिए अथर्ववेद के एतत्संबंधी बत्तीस मन्त्रों द्वारा हवन करने का विधान है। कृत्या और अभिचार कर्म का परिगणन अरिष्ट में किया गया है। कृत्या परिहरण, अभिचार निवारण के अलग-अलग सूक्त अथर्ववेद में हैं।

इनके अतिरिक्त अथर्ववेद में राज्य शासन, विजय साधन, राजराष्ट्र साधन, संग्राम, शत्रु-नाशन, सुख-सम्पत्ति प्राप्ति, पशु-रक्षण, व्यापार-व्यवसाय, अधिदैवत,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गृहस्थ प्रकरण, अध्यात्म प्रकरण; ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास प्रकरण और शरीर-विज्ञान प्रकरण हैं।

७. शरीरतंत्र विज्ञान

मनुष्य का शरीर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों से निर्मित है। इसमें हृदय है, कुलकुण्डलिनी है, षट्चक्र हैं, सहस्रारचक्र है। ऐसे उत्तम शरीर को वेदों में, उपनिषदों में ब्रह्मपुरी कहा गया है और इस पुरी में निवास करने के कारण ब्रह्म को 'पुरुष' कहा गया है।[1]

अनन्त ब्रह्माण्ड से युक्त समस्त विश्व, ब्रह्म की रचना है। विश्व को क्षरब्रह्म और 'पुरुष' को अक्षर बताया गया है। अक्षर पुरुष (ब्रह्म) से क्षरब्रह्म (विश्व) की उत्पत्ति हुई है। विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों की रचना कर स्वयं ब्रह्म उसमें प्रविष्ट है। ब्रह्म से अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह ब्रह्मपुरी (मानव-शरीर) चारों ओर से अमृत से ढकी हुई है और इसका आधार अमृत है।[2]

चारों ओर अमृत से ढकी हुई इस ब्रह्मपुरी (मानव-शरीर) को केवल ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। क्षेत्रज्ञ कहे जाने वाले ब्रह्मविद् जन इस शरीर को और इसके भीतर रहने वाले अक्षर पुरुष (ब्रह्म) को समाधिस्थ होने पर जान पाते हैं।

शरीर की इस प्रकार की दिव्यता का वर्णन करने का अथर्ववेद का यही प्रयोजन है कि रोग, दोष, पाप, शाप, दुर्भाग्य से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को शरीर की दिव्यता को समझ कर उस पर श्रद्धा करनी चाहिए। उसे मल, मूत्र, मेदा, मज्जा, रोग-दोष का केन्द्र और जरा-जीर्ण होने वाला समझकर उपेक्षा या घृणा न करे, बल्कि देह के रोम-रोम में देवताओं का वास समझे। हृदय प्रदेश को साक्षात् भगवान् का अधिष्ठान समझे।

अथर्ववेद का उपदेश है कि 'अपने क्षेत्र (शरीर) को दिव्य भावनाओं, दिव्य कर्मों से नीरोग बनाओ। यह क्षेत्र (शरीर) किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक व्याधि से क्लिष्ट न होने पाए, क्योंकि दैहिक, दैविक, भौतिक त्रयताप ही अमीव (व्याधियाँ) हैं, जिनसे प्राणी संतप्त और दुखी रहते हैं।'[3]

---

१. अथर्ववेद १०।२।२८
२. अथर्ववेद १०।२।२९-३०
३. स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज।—अथर्ववेद ११।१।२२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद की इस शिक्षा को ग्रहण करते हुए शरीर को आरोग्य बनाए रखने के लिए; जरा, व्याधि से मुक्त रखने के लिए भारतीय वैदिक चिकित्सा पद्धति ने आयुर्वेद के अन्तर्गत तीन प्रकार की चिकित्सा पद्धति को स्वीकार किया है :—

१. आसुरी चिकित्सा—इसके अन्तर्गत शल्यक्रिया—चीर-फाड़, ऑप्रेशन होता है।

२. मानुषी चिकित्सा—इसके अन्तर्गत काष्ठादि औषधियों द्वारा चिकित्सा की जाती है।

३. दैवी चिकित्सा इसके अनुसार आसन, प्राणायाम, जप, हवन, अनुष्ठान का विधान है।

आसुरी चिकित्सा-विधि के द्वारा यौवन की प्राप्ति अच्छी नहीं मानी गई है। काष्ठ औषधियों के सेवन से शरीरस्थ रसों की जीर्णता दूर होती है, उनमें नवशक्ति का संचार होता है और स्थायी प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह चिकित्सा-पद्धति उत्तम मानी गई है। काष्ठ औषधियों की चिकित्सा से शरीर और मन का संस्कार होता है। जब मन सुसंस्कृत होता है, तो शक्तिशाली बनता है। रसों में पवित्रता उत्पन्न होती है। व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त करता है।

क्रोध, ग्लानि, चिन्ता और भय; ये सब मानसिक विकार हैं। मानसिक विकारों से शरीर में चालीस प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं। उन विषों को दूर करके शरीर की नसों, नाडियों को विशुद्ध और निर्विष बनाना दैवी चिकित्सा – योगासन, प्राणायाम, बन्ध, महाबन्ध गुणकारी उपाय माने गए हैं। इसीलिए दैवी चिकित्सा को अथर्ववेद प्राणविद्या कहता है, क्योंकि मरने वाले शरीर को अमर बनाने वाले प्राण ही हैं।

वेदों में अश्विद्वय (अश्विनीकुमारों) को दैवभिषक्—देवताओं का वैद्य[1] कहा गया है। अथर्ववेद में दैवभिषक् की स्तुति में कहा गया है—'हे दैवभिषक् अश्विनी-कुमारो ! अपनी शक्ति द्वारा हमें मृत्यु से रक्षित रखो।'

ये दो भिषक् कौन हैं ? इनका परिचय देते हुए अथर्ववेद[2] कहता है :—

'हे प्राण और अपान तुम इस शरीर में बराबर संचरण करते रहो। शरीर को छोड़ कर मत जाओ। तुम दोनों सयुजौ (जुड़वाँ) बनकर संयुक्तसखा की तरह रहो। हे मनुष्यो ! तुम निरन्तर वर्धिष्णु होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहो। वशिष्ठ अग्नि तुम्हारा रक्षक है।'

ब्राह्मणों और पुराणों में एक कथा है, च्यवन ऋषि की जवानी से सम्बन्धित। कथा लम्बी है। उसका सारांश यह है कि वृद्ध च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की कि वह उन्हें अपने औषधोपचार से जवान बना दें। अश्विनीकुमारों ने च्यवन

---

१. अथर्ववेद ७।५३।१
२. अथर्ववेद ७।५३।२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऋषि के सामने यह शर्त रखी कि तुम हमें यज्ञ में सोमपान कराओ, तो हम तुम्हें जवान बना देंगे।

यह प्रतीक-कथा है। अश्विद्वय मनुष्य-शरीर के अन्दर रहने वाले 'प्राण' और 'अपान' हैं और च्यवन क्या है? शरीर के अन्दर जो प्राण-शक्ति रहती है, उसका प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पड़ता है। प्राणोत्पादिनी जीवनी-शक्ति ही सब कुछ है। यह शक्ति बचपन से लेकर जवानी तक बढ़ती रहती है। प्रौढ़ावस्था आने पर क्रमशः घटती हुई बुढ़ापे में क्षय होने लगती है। इस शक्ति के क्षीण होने पर मृत्यु आ घेरती है। बुढ़ाई की क्षीणता का प्रभाव शरीरगत धातु, रस, स्नायु, मज्जा, मेदा सभी पर पड़ता है। सभी अवयव क्षीण होने लगते हैं। इसी क्षयशील स्थिति का नाम च्यवन है। च्यवन-स्थिति आने पर शरीर छीजने लगता है। व्याधि, जरा, मृत्यु आदि च्यवन के विभिन्न रूप हैं।

शरीर के अन्दर जो रेतस् है, वीर्य है और रस है, उसका नाम सोमरस है। यह सोमरस मनुष्य के शरीर के अन्दर सुषुम्णा जाल या मेरुदण्ड रूप वानस्पत्ययूप है, जो उसी में भरा रहता है। यही सोमरस मनुष्य के मस्तिष्क में भी भरा रहता है, जो अधोभाग स्थित सुषुम्णा नाडी की शाखाओं, प्रशाखाओं को सींचता हुआ मनुष्य को विशुद्ध, विवेकी और शक्तिशाली बनाता है। यह सोमरस वीर्य के रूप में शरीर में संचित होता है। जब मनुष्य संयम नहीं बरतता है, तब वीर्य शरीर से बाहर निकल कर नष्ट हो जाता है। जब तक प्राण और अपान रूप अश्विद्वय इस सोम को पीते रहते हैं, तब तक शरीर बलिष्ठ और जवान बना रहता है।

इसी आशय को लेकर अथर्ववेद का एक मंत्रद्रष्टा ऋषि किसी के दीर्घायुष्य के लिए प्रार्थना करता है :—

'इसके शरीर में प्राण और अपान प्रविष्ट होते रहें—जैसे गोष्ठ में दो वृषभ रहते हैं। स्तोता की यह आयुरूप निधि अरिष्ट (अक्षय) रूप में बढ़ती रहे।'[1]

तदनन्तर यह सतत कामना की गई है :—

'मेरे शरीर में प्राण, आत्मा, चक्षु और जीवन की पुनः प्रतिष्ठा हो। शरीर-रक्षक तनूपा अग्नि अघृष्य रह कर सब दुरितों को हटाता रहे। वर्चस्, प्राण, रस और तनु के साथ हमारा मेल बना रहे। हमारे शरीर में जीर्णता का जो अंश विरिष्ट हो, उसे त्वष्टा या शरीर के निर्माता प्राण धो डालें।'

अथर्ववेद का कथन है कि 'मानव-शरीर के भीतर और बाहर अपरिमेय दिव्य-भूमा का अमृत-सिन्धु भरा हुआ है। मानव-शरीर में विराट् शक्तियों का निवास है। यह शरीर देवताओं की अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी अयोध्या[2] है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि इसे आधि-व्याधि से सर्वथा मुक्त रखने के लिए, अल्पता, जड़ता और

---

१. अथर्ववेद ७।५।३५
२. अथर्ववेद १०।२।३१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मृत्यु से दूर रहने के लिए शिव-संकल्पमय बने।' यही बात तैत्तरीय ब्राह्मण भी कहता है।[1]

शिव-संकल्प

'इस विराट् विश्व में जो अग्नि, वायु आदि देव हैं, उन्हीं के प्रतिनिधि वाक्, प्राण आदि हमारे शरीर में हैं। उन देवों का अधिष्ठान हृदय (बुद्धितत्त्व) में है। विज्ञानात्मक बुद्धितत्त्व मुझ चैतन्य में अधिष्ठित है और 'मैं' (चैतन्य) अविनाशी, अक्षर-ब्रह्म में अधिष्ठित हूँ। यह अमृत अक्षरब्रह्म ही है। हृदय, आयु, प्राण, मन सब मुझे पुनः प्राप्त हों। उनकी खोई हुई शक्ति को अमृत-स्रोत के साथ मिलकर मैं प्राप्त करूँ। अमृत (सूर्य की किरणों) में विद्यमान मेरा वैश्वानर अन्तरात्मा अमृतत्त्व का रक्षक बने। मैं मृत्यु से हटकर अमृतत्त्व चाहता हूँ और इन शिव-संकल्पों के दृढ़ पारायण से निरन्तर प्रतिदिन अमृत को प्राप्त करता हूँ।'

यह शिव-संकल्प दीर्घायुष्य, मनोबल, संकल्पबल और आत्मबल का संवर्द्धन करता है।

अथर्ववेदीय शारीरस्थान

अथर्ववेद में उल्लिखित शरीर की उत्पत्ति, उत्पत्ति का मूल तत्त्व, शरीर को विकसित बनाने वाली धातुएँ, शरीर का आधार स्थान, शरीर का वृद्धि-क्रम, शारीरिक बाह्य अंगों का परिगणन, आन्तरिक सूक्ष्म वृत्तियाँ, गर्भ और गर्भ की स्थिति तथा प्रसव, शरीर के सुरक्षा-संबंधी उपाय, उपचार—ये सब अथर्ववेदीय शारीरस्थान के अध्ययन के विषय हैं।

शारीरस्थान के विषयों का अध्ययन शरीर की उत्पत्ति से प्रारम्भ होता है। शरीर की उत्पत्ति बताते हुए अथर्ववेद[2] कहता है, 'शरीर का अधिष्ठाता जीव नित्य है। विश्व-सृष्टि के प्रारम्भ में जब सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों का प्रादुर्भाव हो चुका, तब जीव कर्म-मोह बन्धन के अनुसार मनुष्य, पशु आदि योनियों में उत्पन्न होकर शरीरधारी बना। रस, रक्त मज्जा आदि शरीर की सात धातुएँ जीवशरीर के अवयव बने। इन्हीं सप्त धातुओं से शरीर का निर्माण और विकास हुआ।'

अथर्ववेद आगे बतलाता है—'शरीर का निर्माण करने वाली रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र—ये सात धातुएँ सप्तमातरं दक्षिणाम्[3]—वात, पित्त और कफ हैं। कर्म के भोग रूप फल के आधार शरीर का पालन स्वाभाविक अवस्था में सात-

---

१. तै० ब्रा० ३।१०।८
२. अथर्ववेद १८।४।२८
३. अथर्ववेद १८।४।२९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धातुएँ और वात, पित्त, कफ क्रिया करते हैं और यदि ये अस्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होते हैं, तो कुपित होकर शरीर में तरह-तरह के रोग पैदा करते हैं। वात, पित्त, कफ शरीर में सदा व्याप्त रहते हैं। इन्हें सन्तुलित, प्रकृतिस्थ रखने पर मनुष्य कभी रोगाक्रान्त नहीं होता है।'

शरीर का आधार-स्तम्भ

अथर्ववेद[1] का कथन है कि 'जीवात्मा की चेतना शक्ति से प्रेरित प्राण हृदय में प्रविष्ट होकर रक्तवाहिनी नाडियों के रक्ताशयों को पुनः-पुनः कम्पित करता है। नाडियों में भ्रमण करता हुआ रक्त जीवात्मा की स्थिरता—जीवन का कारण बनता है। हृदय में प्रविष्ट प्राण पहले के रक्ताशय से दूसरे रक्ताशय में असंख्य सूक्ष्म तन्तुओं वाले मार्ग से प्रेरित करता है। इसी प्रकार अनेकानेक मार्गों से रक्त का संचार बराबर बना रहता है। रक्ताशयों द्वारा रक्त के गमनागमन से जीव का शरीर के साथ संबंध बना रहता है—यही शरीर का आधार-स्तम्भ है।'

शरीरगत नाडियाँ

अथर्ववेद में शरीरगत प्रमुख चार नाडियाँ बताई गई हैं। ये चारों नाडियाँ शरीर के अन्दर रक्त आदि को उसी तरह प्रवाहित करती हैं, जैसे नदियाँ जल को प्रवाहित करती हैं। रक्त प्रस्राविणी ये नाडियाँ योग्य तत्त्वों से शरीर का पोषण भी किया करती हैं। कहीं-कहीं इन नाडियों में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ भी रहती हैं, जो बहते हुए रक्त को चूसा करती हैं।[2]

अथर्ववेदीय शरीर के अंग

अथर्ववेद[3] में शरीर के प्रत्येक अवयव और अंग का विशद निरूपण किया गया है। अंगों के वर्णन के साथ अंग-अंग में उत्पन्न रोगों के नाम तथा उनके निवारण की क्रियाएँ बताई गई हैं। अथर्ववेद की अंग-सूची इस प्रकार हैं :—

१. दो आँखें, २. नासिका के दो छिद्र, ३. दो कान, ४. मुख, ५. मस्तिष्क, ६. जिह्वा, ७. ग्रीवा भाग, ८. कण्ठ के भाग, कण्ठ, कण्ठ-नाडियाँ, ९. मेरुदण्ड, १०. दो कन्धे, ११. दो भुजाएँ, १२. हृदय, १३. दक्षिण फुफ्फुस, १४. बाम फुफ्फुस, १५. दो पसलियाँ, १६. दो गुर्दे, १७. प्लीहा, १८. यकृत, १९. आन्त्र (आँतें), २०. गुदा और गुदा वलय, २१. बड़ी और छोटी आँतें, २२. उदर, २३. दो कुक्षियाँ (कोखें), २४. मूत्राशय, २५. दो जंघाएँ २६. दो घुटने, २७. दो एड़ियाँ, २८. दोनों

---

१. अथर्ववेद १८।४।५८, ६०

२. अथर्ववेद १८।४।३३

३. अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त ३३ तथा काण्ड २०, सूक्त ९६, मन्त्र १७-२३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पैरों के पंजे, २९. दो कूल्हे, ३०. दो गुप्तेन्द्रियाँ, ३१. अस्थियाँ, ३२. मज्जा (चर्बी), ३३. शिराएँ, ३४. धमनियाँ, ३५. दो हाथ, ३६. दस अंगुलियाँ, ३७. नख, ३८. माँस-पेशियाँ, ३९. संधियाँ, ४०. शिर और ४१. बाल।

अथर्ववेदीय शरीर की रचना में शरीर की चेष्टाएँ और अन्तःकरण के धर्म भी बताए गए हैं, इनका महत्त्वपूर्ण संबंध अथर्ववेदीय चिकित्सा से है।

शरीर की चेष्टाएँ

१. ऋद्धि (पूर्णता), २. समृद्धि (पुष्टि), ३. अव्युद्धि (अक्षीणता, समता), ४. बल, ५. जव (स्फूर्ति), ६. नृत (नृत्य-नाचना-अभिनय), ७. जरा (बुढ़ाई), ८. खालत्य (गंजापन), ९. पालित्य (केश पकना), १०. ओज (शरीर की कान्ति), ११. क्षुध् (भूख), १२. तृष्णा (प्यास), १३. हस् (हँसना), १४. नरिष्ठा (उदासीनता), १५. आस्तेयी (शरीरगत द्रव पदार्थों का अस्तित्व), १६. वास्तेयी (मूत्राशय में मूत्र का रहना), १७. त्वरणा (शीघ्र गति से होना), १८. कृपणा (मन्द गति से होना), १९. गुह्या (गोपनीय ढंग से होना), २०. शुक्रा (शुभ्र रूप में होना), २१. स्थूला (गाढ़ा होना), २२. अलाप (ऊँचा बोलना), २३. प्रलाप (बकवास), २४. अभिलाप (उचित बोलना), २५. संलाप (वार्ता करना), २६. विलाप (विलख-विलख कर रोना), २७. अपलाप (बुरी-बुरी बातें करना), २८. अनुलाप (दूसरे की बातों का अनुकरण कर बोलना), २९. प्रहार, ३०. आहार, ३१. संहार, ३२. विहार और ३३. परिहार।

अन्तःकरण के धर्म

१. प्रिय, २. अप्रिय, ३. स्वप्न, ४. संबाध (निद्राक्षय), ५. तन्द्रि (आलस्य), ६. आनन्द (सुषुप्ति-शान्ति), ७. मनस् (सुख), ८. आर्ति (पीड़ा-वेदना), ९. अर्वति (अरुचि), १०. निर्ऋति (निराशा), ११. अमति (बुद्धिहीनता), १२. मेधा (धारणा-शक्ति), १३. पाप्मा (पाप-भावना), १४. हन्त (हाँ में हाँ मिलाना), १५. न (इनकार करने की प्रवृत्ति), १६. श्रद्धा (विश्वास), १७. अश्रद्धा (अविश्वास), १८. मोद (हर्ष), १९. प्रमुद (विनोद), २०. अभीमोदमुद (बारम्बार अनुराग), २१. आशिषः (आशाएँ), २२. चित्त और २३. संकल्प।

शरीर की उत्पत्ति, रचना, विकास आदि बताने के साथ अथर्ववेद शरीर की चेष्टाएँ, अन्तःकरण के धर्म बतला कर बड़े ओजस्वी पूर्ण शब्दों में विश्वासपूर्वक कहता है :—

कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् (अथर्व० १०।२।१४)

अर्थात् मनुष्य के शरीर में मृत्यु और अमृत कैसे रखा हुआ है ? मर जाने का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाम मृत्यु है। किन्तु अमृत के दो अर्थ बताए गए हैं—एक दीर्घ जीवन और दूसरा अमर आत्मा—जीवात्मा।

अथर्ववेद (८।९।२६) में सृष्टिक्रम और शरीर का रूपक द्वारा तात्विक विवेचन करते हुए बताया गया है कि 'पृथिवी पर एक ही 'गौ', एक ही 'ऋषि', एक ही 'धाम', 'एक ही 'आशीर्वाद', एक ही 'रीति' है। सब का ऋतु एक और एक ही उपास्यदेव है, जिसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। यह एक मूलतत्त्व है, जो तेजोमय ज्ञानस्वरूप परमात्मा है। यही सर्वात्मा 'एकदेव' है। यह सत, रज, तम गुणों से युक्त प्राकृतिक शय्या पर शयन करता है। इस विराट् रूपी कामधेनु का यह शिशु गुहा के अन्दर अपने रहने के लिए तीन शरीर बनाता है, जो गुह्य में गुप्त है प्रकट नहीं है। उसके महाकारण, कारण और सूक्ष्म शरीर हैं। इन्हीं से जगत् की स्थिति है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ३

अध्यात्म-विज्ञान

१. प्राणशक्ति : प्राणविद्या

मनुष्य शरीर की रचना मात्र रासायनिक पदार्थों से ही नहीं है, उसमें विद्युत्-प्रवाह की स्वचालित व्यवस्था है; इसी आधार पर शरीर के अवयवों की बहुमुखी कार्य-पद्धति गतिशील रहती है।

मशीनों को चलाने के लिए तेल, बिजली, भाप आदि के माध्यम से ऊर्जा जुटानी पड़ती है। यदि ऊर्जा जुटाने का प्रबन्ध न हो सके तो बहुमूल्य यन्त्र भी निष्क्रिय हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीर की रासायनिक संरचना हर दृष्टि से उपयुक्त होते हुए भी अपनी निर्धारित गतिविधियों को चलाने के लिए ऊर्जा की अपेक्षा रखती है। स्रष्टा ने इसकी समुचित व्यवस्था भी जीवन-प्रदान करने के साथ ही की है।

शरीर एक पावर हाउस है। मस्तिष्क उसका केन्द्र है। शरीर के मेरुदण्ड से होते हुए अगणित विद्युत् तार शरीर के समस्त अवयवों में कलापूर्ण ढंग से गुंथे हुए हैं। इन तारों को ज्ञानतन्तु कहा जाता है, जो शरीर और मस्तिष्क के मध्य जानकारियों का आदान-प्रदान किया करते हैं। किन्तु इस विचार में आंशिक सत्य है। वस्तुतः शरीर बिजली से चलने वाला यन्त्र है। शरीर के अवयवों को, अपने घटकों को सजीव एवं सक्षम बनाए रखने के लिए रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है और वह आवश्यकता आहार के माध्यम से पूरी होती है। इतने पर भी इस जटिल तन्त्र को गतिशील बनाए रखने के लिए एक विशिष्ट मात्रा में विशिष्ट-स्तर की ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, जो पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त एवं उत्पन्न भी होती रहती है। इस ऊर्जा का नाम प्राणविद्युत् है।

विद्युत् दो ध्रुवों के पारस्परिक सहयोग से उत्पन्न होती है, इन ध्रुवों को ऋण (−) और धन (+) कहते हैं। शरीर की विद्युत्-व्यवस्था में मूलाधारचक्र को ऋण (−) और सहस्रार-चक्र को धन (+) विद्युत् का केन्द्र माना जाता है। मेरुदण्ड के माध्यम से उनके मध्यवर्ती प्रवाह गतिशील रहते हैं। इसके बाद ज्ञानतन्तुओं के माध्यम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से समस्त शरीर में उस प्राण-ऊर्जा का वितरण होता रहता है। इसके आधार पर शरीर की चेतन और अचेतन गतिविधियाँ तो चलती ही रहती हैं; साथ ही स्फूर्ति, मेधा, प्रतिभा और जीवनी-शक्ति जैसी रहस्यमयी विभूतियाँ भी उसी आधार पर जाग्रत और संवर्द्धित होती हैं। पाँच तत्त्वों से बने शरीर को चलाने में पाँच प्राणों का ही सामर्थ्य काम करता है। इस प्राणमयी ऊर्जा की उपयुक्त मात्रा होने से ही मनुष्य प्राणवान् बनता है अन्यथा प्राणी अल्पप्राण बनकर रह जाता है।

प्राणशक्ति की उपयोगिता जीवनचर्या की गतिशीलता बनाए रखने तथा विभिन्न प्रकार के पुरुषार्थ करने में ही है, किन्तु उनका उपयोग चिकित्सा-प्रयोजन में भी हुआ करता है। समर्थ शक्ति की प्राणशक्ति दुर्बल को उसी प्रकार दी जाती है, जैसे सम्पन्न, समृद्ध व्यक्ति अपने धन-वैभव से निर्धनों की सहायता करते हैं।

प्राण-विद्युत् का सामान्य आदान-प्रदान तो अनायास चला करता है। मस्तिष्क की विद्युत् तरंगें, दृष्टिपात, मुखमुद्रा, हस्तचालन जैसे माध्यमों से एक की प्राणक्षमता का दूसरे के लिए सहज ही उपयोग होता है। एक व्यक्ति का शरीर दूसरे व्यक्ति के शरीर के निकट होने पर या सट जाने पर यह ऊर्जा सबल शरीर से निर्बल शरीर की ओर दौड़ती है। युवक और युवती के शरीर जब एक दूसरे से सटते हैं तब यह विद्युत् अत्यन्त उद्धत हो उठती है।

इस प्राणशक्ति को स्वस्थ, सबल व्यक्ति, दुर्बल, अस्वस्थ व्यक्ति को अनुदान के रूप में देकर उसके अभाव, कष्टों, रोगों के शमन के लिए भारी सहायता प्रदान कर सकते हैं।

योगशास्त्र, तंत्रशास्त्र और पुराणों में प्राण-दान और शक्तिपात के अनेक प्रकार के अनुदानों के विधान और वर्णन मिलते हैं। आजकल इस प्रक्रिया का उपयोग बहुत हल्के रूप में हो रहा है। 'मैस्मरेजिम' सिद्धान्तों के आधार पर की जाने वाली प्राण-चिकित्सा को इसी स्तर का माना जा सकता है। उसमें मात्र शरीरगत विद्युत्-प्रवाह का आदान-प्रदान होता है और उससे ग्रहणकर्त्ता को अधिक लाभ होता है। किन्तु प्रदाता को अधिक घाटा नहीं सहन करना पड़ता है; क्योंकि दैनिक-जीवन के विभिन्न कार्य-कलापों में इस विद्युत् का निरन्तर व्यय होता रहता है। चिकित्सा-प्रयोजन में इतना ही करना पड़ता है कि प्राण-विद्युत् का कुछ समय तक बिखराव रोकना पड़ता है और एकाग्रता तथा संकल्प-शक्ति के सहारे उसे रोगी को देना पड़ता है। इसे शारीरिक-शक्ति का अनुदान कह सकते हैं।

वस्तुतः सभी प्राणियों के जीवन का आधार सूक्ष्म प्राणशक्ति है, किन्तु मनुष्य में वह प्राणशक्ति विशेष मात्रा में होती है और विभिन्न साधनात्मक उपायों से इसे संवर्द्धित किया जा सकता है। शरीर और मन दोनों प्राणशक्ति पर अवलंबित हैं। भारत में योगी जन प्राणशक्ति के द्वारा असाध्य रोगों को दूर ही नहीं करते बल्कि पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। किसी को हृदय का दौरा पड़ने पर अथवा हृदय-गति अवरुद्ध हो जाने पर डॉक्टर, वैद्य रोगी के वक्ष और हृदय पर हस्ताभिमर्श कर के उसे प्राण-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति के विद्युत्-प्रवाह द्वारा चैतन्य बनाते हैं।

प्राणशक्ति के माध्यम से हृदय रोग, मृगी-मूर्छा रोग, कैंसर आदि रोगों को हस्ताभिमर्श या शल्य प्रयोग द्वारा स्वस्थ आरोग्य बनाते मैंने फिलीपाइन्स द्वीप समूह में देखा है। वहाँ यह चिकित्सा अनपढ़ ग्रामीण स्त्री-पुरुष करते हैं। वहाँ रहते हुए मैंने उनकी प्राणचिकित्सा का यत्किंचित् अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि यह चिकित्सा-पद्धति सामान्य प्रशिक्षण द्वारा नहीं सिखाई जाती, इसमें शक्ति का प्रचण्ड रूप प्रदर्शित होता है। नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का दृढ़ होना इसके लिए बहुत ज़रूरी है। वहाँ के उच्चकोटि के योगी गुरु सुपात्रअधिकारी को ही इस प्राणविद्या को सिखाते हैं। इस शक्ति का अपव्यय होने पर यह शक्ति नष्ट भी हो जाती है।

हमारे इस ब्रह्माण्ड के कण-कण में प्राणशक्ति का सतत प्रवाह प्रवाहित रहता है। यही शक्ति प्राणियों में संचरित होकर जीवन प्रदान करती है। शरीर के अविकसित, अस्वस्थ कोशों को प्राणशक्ति ही जीवनी शक्ति प्रदान करती है। गायत्री मंत्र में सविता के ध्यान द्वारा प्राणशक्ति का आकर्षण एवं संवर्द्धन होता है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध और ध्यान आदि के द्वारा प्राणशक्ति का संचार सुचारु रूप से होने लगता है।

हाथों की अँगुलियों से प्राणशक्ति अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक मात्रा में निःसृत हुआ करती है। प्राण-विद्युत् एक आध्यात्मिक सम्पदा है। इस सम्पदा का विनियोग आत्मविकास और लोककल्याण के लिए किए जाने का उपदेश अथर्ववेद में है।

प्राणविद्या-साधना

ब्राह्ममुहूर्त्त में शय्या त्याग करने से पूर्व गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु और परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। नासिका के दो छिन्द्रों में से जिस छिद्र से उस समय जो स्वर प्रवाहित होता हो, जैसे यदि दाहना स्वर चल रहा हो तो दाहने हाथ से बायाँ छिद्र दबा कर दाहने स्वर को ऊपर खींचते हुए तीन बार सहस्रारचक्र से लेकर कण्ठ तक ले जाना चाहिए, पुनः तीन बार परिक्रमाक्रम से हाथों की हथेलियों से शरीर में अभिमर्षण करना चाहिए। इसके बाद शय्या त्याग कर नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर सुखासन या सिद्धासन से बैठकर प्राणविद्या की साधना निम्नांकित प्रक्रिया से करनी चाहिए।

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य षोडश सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। प्राणः अपानः आयुः देवताः। (एकावसानम्) एकपादासुरी त्रिष्टुप्, आसुरी उष्णिक्, एकपादासुरी गायत्री छन्दांसि। प्राणरायुरभिमंत्रणे, संकट निवारणे, संरक्षणे, अभयार्थे च विनियोगः।

मंत्र

ॐ प्राणापानौ मृत्यो र्मा पातं स्वाहा।
ॐ द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ सूर्यचक्षुषा मा पाहि स्वाहा।
ॐ अग्ने वैश्वानर विश्वै र्मा देवैः पाहि स्वाहा।
ॐ विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा॥

इसके बाद निम्नांकित दूसरे मंत्र का विनियोग करके उसे पढ़ना चाहिए।

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पंचम काण्डस्य नवम सूक्तस्य एकतः सप्तम मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः। वास्तोष्पतिः, आत्मा देवते। दैवीवृहती, दैवीत्रिष्टुप्, दैवी-जगती, विराडुष्णिग्वृहतीगर्भा, पञ्चपदा जगती, पुरस्कृतिः त्रिष्टुवृहतीगर्भा, चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती छन्दांसि। बलं तेजः पुष्टिः प्राप्तये संरक्षणे, अभयार्थे, प्राणआत्मा, मनः इन्द्रियशरीरानुमन्त्रणे, सूर्योपस्थाने च विनियोगः।

विनियोग के बाद दोनों हाथों को ऊपर की ओर तान कर यह मंत्र पढ़ना चाहिए।

मंत्र

ॐ दिवे स्वाहा। पृथिव्यै स्वाहा। अन्तरिक्षाय स्वाहा।
अन्तरिक्षाय स्वाहा। दिवे स्वाहा। पृथिव्यै स्वाहा।
सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षयात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतोनामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय।

इसके बाद तीसरे मंत्र का विनियोग करके उसका पाठ किया जाए।

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य चतुश्चत्वारिंशत् सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। आञ्जनं, वरुणो देवते। अनुष्टुप्, चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, निचृद्विषमा छन्दांसि। ओजः तेजः बलं, वर्चस्वं, संरक्षणं प्राप्त्यर्थे, प्राणानुमंत्रणे च विनियोगः।

मंत्र

ॐ प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्योमुञ्च॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः॥

फिर चौथा विनियोग करके मंत्र का पाठ करे।

४. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य नवम काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य द्वितीय चतुर्थयोः मंत्रयोः अथर्वा ऋषिः। अश्विनी देवते। त्रिष्टुप् अभिपंक्तिश्छन्दः। संरक्षणार्थे, संकट निवारणे, तेजः बलं धनं धान्यं ऐश्वर्यं प्राप्त्यर्थे, प्राण संवर्द्धनार्थे, अमृतावाप्तये, संजीवने, पुष्ट्यर्थे, समस्त विघ्न निवारणे प्राणानुमंत्रणे च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंत्र

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत् एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ।।
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् गर्भश्चरति मर्त्येषु ।।

फिर पाँचवाँ विनियोग करके मंत्र का पाठ करना चाहिए ।

५. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य सप्तदशसूक्तस्य प्राणः अपानः आयुर्देवताः । एकावसाना एकपादासुरी त्रिष्टुप्, आसुरी उष्णिक् छन्दांसि । प्राणानुमंत्रणे क्षीणप्राण वलमायुष्यं पुनः संस्थापने संवर्द्धने प्राणेन्द्रियानुमंत्रणे सूर्योपस्थाने, आत्मयज्ञार्पणे च विनियोगः ।

इसके बाद मंत्र का पाठ करते हुए सूर्य की ओर मुँह करके दोनों भुजाओं को ऊपर उठाए रखना चाहिए ।

मंत्र

ॐ ओजोस्योजो मे दाः स्वाहा ।
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।
वलमसि वलं मे दाः स्वाहा ।
आयुरस्यायु र्मे दाः स्वाहा ।
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ।
चक्षुरसि चक्षु र्मे दाः स्वाहा ।
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ।

इसके बाद विनियोग करके परमात्मा की स्तुति करे ।

६. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य एकसप्ततिः सूक्तस्य अथर्वाऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । परब्रह्मोपस्थाने विनियोगः ।

ब्रह्मस्तुति मंत्र

परित्वाग्ने पुरं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गु रावतः ।।

स्तुति करने के बाद ध्यान करने का विनियोग करके समाधिस्थ होकर ध्यान करना चाहिए ।

७. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशतिकाण्डस्य षष्ठि सूक्तस्य तथा च पञ्चम काण्डस्य दशम सूक्तस्य अष्टम मंत्रस्य इन्द्रियनिग्रहार्थे एवं च षष्ठकाण्डस्य त्रिपञ्चाशत् सूक्तस्य तथा च सप्तमकाण्डस्य सप्तषष्ठिसूक्तस्य ब्रह्मानुमंत्रणे ध्याने च विनियोगः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्यान एवं इन्द्रिय निग्रह मंत्र

ॐ वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिता केशाः अशोणादन्ताः वहुर्वाह्वोर्बलम् ।।१।।
उर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ।।२।।
(अथर्व० १९।६०)

वृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्य्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ।।१।।
(अथर्व० ५।१०।८)

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो वृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ।।१।।
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वनरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ।।२।।
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टुं तन्वो३ यद्विरिष्टम् ।।३।।
(अथर्व० ६।५३)

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ।।
(अवर्व० ७।६७)

उक्त ध्यान-मंत्रों को हृदयंगम करते हुए इन्द्रियों को एकाग्र कर ब्रह्मध्यान में लीन हो जाना चाहिए । यह प्राणविद्या-साधना अद्वितीय है । इससे ईश्वर-सिद्धि प्राप्त होती है ।

अथर्ववेद से ज्ञात है कि प्राचीन ऋषि, मुनि प्राणविद्या की साधना अमृतत्व की प्राप्ति के लिए किया करते थे । वे ऋषिगण सोम्य, मधु तथा दुग्धपान करके निरन्तर साधनारत रहा करते थे । सनातन योगविद्या का नाम 'प्राणविद्या' है, और प्राण के गुह्यतम रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना 'योगसम्प्राप्ति' है । प्राणायाम क्रिया-योग द्वारा दीर्घायुष्य और अजरत्व प्राप्त करने की विधि को अथर्ववेद में 'दैवी चिकित्सा' कहा गया है । 'प्राण' और 'अपान' इन दो अश्विनीकुमारों को भलीभाँति रोक रखने से पुनर्यौवन, दीर्घजीवन और वर्चस् प्राप्त किया जा सकता है । प्राणायाम करने से शरीरस्थ रस पुनः यविष्ठ बनते हैं । अथर्ववेद[1] के प्राण सूक्त में 'प्राण' और 'अपान' को देवताओं का वैद्य 'अश्विद्वय' कहा गया है । यही पुराणों में अश्विनीकुमार कहे गए हैं । उक्त

---

१. अथर्व० ११।५ तथा ७।५३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राण सूक्त में देवभिषक् अश्विद्वय से प्रार्थना की गई है कि 'हे अश्विनीकुमारो ! मृत्यु से हमें दूर ले जाओ। इस शरीर को तुम मत छोड़ो। तुम दोनों जुड़वाँ भाई (सयुजौ सखायौ) बन कर यहीं रहो। हे प्राण और अपान ! हमें शतायु करो।'

प्राणविद्या की उपासना स अथवा नियमित संयमनियम पूर्वक प्राणायाम करते रहने से शरीरगत, मनोगत, जन्मान्तरागत पाप, शाप, रोग, दोष तथा दौर्भाग्यजनिता-रिष्ट नष्ट होते हैं। दिव्यता, ऋजुता तथा श्रेय-प्रेय की प्राप्ति होती है।

२. ब्रह्मकवच-साधना

ब्रह्मकवच एक प्रकार का आत्मयज्ञ है। इससे मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है। हृदय और मन पवित्र होता है, ईश्वरीय ज्ञान बढ़ता है। छठी इन्द्रिय जाग्रत होती है। पाप-शाप-ताप स्पर्श नहीं कर पाते हैं। ब्रह्म, कवच बन कर साधक की सब प्रकार से रक्षा करता है। वह निर्द्वन्द्व, निर्लिप्त बन कर विचरण करता है। किसी प्रकार की बाधाएँ उसे प्रभावित नहीं कर पाती हैं। वह ब्रह्म तेज से प्रदीप्त होकर अपने आसपास के वातावरण को तेजोमय बनाता है। दृष्टि-निक्षेप मात्र से दूसरों के दुःख-दारिद्य, पापों और संकटों को दूर कर देता है। लोक-लोकान्तर उसके लिए हस्तामलक हो जाते हैं। जो ब्रह्मकवच धारण कर लेता है वह ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करता है।

ब्रह्मकवच धारण करने की प्रक्रिया इस प्रकार है :—

पहले सूर्योपस्थान द्वारा दीक्षा ग्रहण करे।

दीक्षा ग्रहण के बाद अग्नि के उपस्थान द्वारा आत्मतत्त्व का शोधन और आत्म-यज्ञ करे।

फिर सविता देवता का उपस्थान करते हुए तेजोमय अविनाशी सविता देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए प्राणों और आत्मा को अनुमंत्रित करे।

इसके बाद अथर्ववेद के तीन अर्थसूक्तों द्वारा मन, चित्त, बुद्धि की क्षीण वृत्तियों को हटाकर, अनेक अरिष्टों को दूर करने के लिए हवन करे। हवन के धुएँ से उन्हीं मंत्रों को पढ़ते हुए तीन बार सम्पूर्ण शरीर में हस्ताभिमर्ष करे।

तत्पश्चात् अथर्ववेद (५।१०) के मंत्रों से ब्रह्मकवच धारण करे। ब्रह्मकवच धारण करने के बाद यह भावना संकल्पनिष्ठा पूर्वक करे :—

१. मैं पूर्ण स्वस्थ, नीरोग हूँ।
२. मैं शुद्ध-बुद्ध-निर्लेप हूँ।
३. मैं सत्-चित्-आनन्दरूप हूँ।
४. मैं सर्वोन्नति का मूल हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५. मैं काल, कर्म तथा माया से मुक्त हूँ।

६. मैं अविनाशी, अजर, अमर, सर्वत्रव्याप्त, शान्तस्वरूप आत्मा हूँ।

यह संकल्प ही आत्मयज्ञ है। यह साधना निरन्तर तीन वर्ष तक ब्राह्म मुहूर्त्त में करनी चाहिए। इससे साधक की प्रसुप्त ब्राह्मी शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं।

सामान्य विधि—ब्रह्मकवच धारण करने का इच्छुक साधक ब्राह्म मुहूर्त्त में स्नान आदि से पवित्र होकर पवित्र एकान्त स्थान में या पुण्य सरिता के तट पर अथवा पुण्य स्थल, तीर्थस्थल में बैठकर कुश-अपामार्ग से तीर्थ जल द्वारा अपने शिर पर जलाभिसेचन करते हुए निम्नांकित मंत्रों को पढ़े :—

ॐ सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥११।८।३१॥
ॐ उत्वा यज्ञा ब्रह्मपूतावहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥१३।१।३६॥
ॐ ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति। हन्त्वेनान् प्रदहत्वरिर्योनः पृतन्यति।
अघासपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि।
अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं वृहस्पते।
स्वर्विदोरोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते।
यश्चगांपदास्फुरति प्रत्यङ् सूर्यश्चमेहति तस्य वृश्चामि ते मूल मनच्छायां करवोऽपरम्।
नमस्ते अस्तुपश्यत पश्यमापश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मण वर्चसेन।
प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम्। दिवंगच्छ प्रतितिष्ठाश्शीरैः स्वर्गंयाहि पथिभिः देवयानैः।
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्द्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम्।
वृहस्पतिर्म आत्मा नृम्णा नाम हृद्यः। असन्तापं मे हृदयं मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहायपरागात्।
सूर्योमाह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पथिवेभ्यः॥

जलाभिसेचन के बाद दीक्षा-ग्रहण के लिए विनियोग करे।

विनियोग - ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य त्रयश्चत्वारिंशत् सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्म बहुदैवत्यम्। त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापंक्तिः। दीक्षा ग्रहणे उपस्थाने च विनियोगः।

विनियोग के बाद सूर्य के विराट् तेज का ध्यान करते हुए दोनों हाथों को ऊपर उठाकर दीक्षा-मंत्रों का पाठ करे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीक्षा-मंत्र

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ।।१।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायु र्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ।।२।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ।।३।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रोदधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ।।४।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पथः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ।।५।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु वलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ।।६।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ।।७।।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ।।८।।

इसके बाद आत्मतत्त्व शोधन के लिए विनियोग किया जाए ।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य ऊनषष्ठि सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः । अग्निःदेवता । त्रिष्टुप्, गायत्री छन्दसी । भूतत्त्व, आत्मतत्त्व संशोधने विनियोगः ।

विनियोग के बाद नीचे लिखे मंत्रों को पढ़ते हुए शिर से पैरों तक हस्ताभिमर्श करे ।

मंत्र

ॐ त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।।१।।
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणां आविवेश ।।२।।
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ।।३।।
(अथर्व० १९।५९)

इसके बाद मन, इन्द्रिय के निग्रहार्थ, विघ्न शमनार्थ उपर्युक्त त्वमग्ने आदि तीनों मंत्रों से आत्मान्यास, इन्द्रियन्यास और अंगन्यास करके ब्रह्मकवच धारण करने के लिए उपस्थान और होम के लिए विनियोग करे ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य एकादश काण्डस्य चतुर्थं सूक्तस्य भार्गवो वैदर्भीः ऋषिः । प्राणः देवता । अनुष्टुप्, शङ्कुमती, पथ्यापंक्तिः, निचृत्, भुरिक्, अनुष्टुप्-गर्भात्रिष्टुप्, मध्ये ज्योतिर्जगती, त्रिष्टुप्, बृहतीगर्भा छन्दांसि । ब्रह्मकवचप्राप्त्यर्थे होमे, अभिमर्षणे, उपस्थाने च विनियोगः ।

यह विनियोग करने के बाद नीचे लिखे मंत्रों से, अष्टांग हवन सामग्री से, आम की समिधाओं से अग्नि प्रज्ज्वलित कर हवन करे । हवन के बाद हवन के धुएँ से शरीर का अभिमर्षण कर इन्हीं मंत्रों को पढ़ते हुए हाथों को ऊपर उठाकर उपस्थान करे ।

हवन, अभिमर्षण, उपस्थान-मंत्र

ॐ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥
यत्प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्रवीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो वह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥
यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥४॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्त त्प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नोधेहि जीवसे ॥९॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च नः ॥१०॥
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्वं उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्देवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेणं पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥१८॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवातस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृण्वत्सुश्रवः ॥१९॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०॥
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस ऊर्ध्वचरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्यऽच्छेत् कदा चन ॥२१॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तुते ॥२३॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥२४॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननुतिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥२५॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६॥

(अथर्व० ११।४)

इसके बाद ब्रह्मकवच धारण करने के लिए यह धारणा करे :—

मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मकवच धारण कर रहा हूँ। सर्वद्रष्टा परमात्मा के बल एवं तेज से परिपूर्ण होकर पूर्ण आयु तक सुकर्मरत रहूँ।

ऐसी धारणा करते हुए यह मंत्र पढ़ना चाहिए।

मंत्र

ॐ प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्म्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब ब्रह्मकवच धारण करने के लिए विनियोग किया जाए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चम काण्डस्य दशम सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। वास्तोष्पतिः देवता। यवमध्या त्रिपदा गायत्री, यवमध्या ककुप्, पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा, पराष्टिः त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती छन्दांसि। रक्षोहणे, ब्रह्मकवच धारणे च विनियोगः।

ब्रह्मकवच का विनियोग करने के बाद सूर्य की ओर मुँह करके पद्मासन से बैठकर ब्रह्म का निर्विकल्प ध्यान करते हुए ब्रह्मकवच धारण के सात मंत्रों का पाठ एकाग्रचित्त होकर करे।

ब्रह्मकवच धारण मंत्र

ॐ अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्यादिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥१॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥२॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥३॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥४॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥५॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥६॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥७॥

(अथर्व० ५।१०।१-७)

३. ज्ञानकवच

ज्ञानकवच एक आध्यात्मिक उपासना है। इसे नित्य, नियमानुसार, निरन्तर करते रहने से बुद्धि, विवेक और ज्ञान की वृद्धि होती है। किसी प्रकार के पाप-शाप, दुःख-दारिद्रय, अनिष्ट-अरिष्ट स्पर्श भी नहीं कर पाते हैं। इहलोक और परलोक सुखद, शान्त बनता है। श्रेय और प्रेय करतलगत होते हैं।

ज्ञानकवच की सिद्धि प्राप्त करने के लिए नित्य, नियमानुसार विनियोगपूर्वक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहले आसनीय जप किया जाता है। इसके बाद अथर्ववेद के चार संकल्प मंत्रों का अभीष्ट सिद्धि के लिए एकाग्र मन से जप या पाठ किया जाता है। तत्पश्चात् शकधूम-चार ऋचाओं से आम की समिधा अथवा जंगली कण्डों की आग प्रज्ज्वलित कर घी की आहुति दी जाती है।

आसनीय जप मंत्र

ॐ वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशाः अशोणा दन्ता वहु वाह्वोर्बलम्॥
ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः॥
(अथर्व० १९।६०।१-३)

संकल्प मंत्र

१. द्यावपृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरुवातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने॥
२. इदं देवाः श्रृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।
पाशे स वद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥
३. इदमिन्द्र श्रृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥
४. आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपिगच्छतु॥
(अथर्व० २।१२।१,२,३, ८)

इसके वाद नीचे लिखे मंत्रों से मन और इन्द्रियों का अभिमर्षण करते हुए इन्द्रिय-निग्रह करे।

वृहता मन उप ह्वये मातरश्विना प्राणापानौ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा॥५।१०।८।

इसके वाद ज्ञानमय ब्रह्म का निम्नांकित मंत्रों से ध्यान करे।

ध्यान

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो वृहन् दक्षिणया पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च॥१॥
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानिविश्वा॥२॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा नो अत्र वरीय कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम्॥३॥
(अथर्व० ६।५३।१-३)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्यान के बाद आज्याहुति प्रदान करे। आहुति देने से पूर्व विनियोग किया जाए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य शताधिक्रमष्टाविंशति सूक्तस्य अथर्वाङ्गिराः ऋषयः। सोमः शकधूमः देवते। अनुष्टुप् छन्दः। ज्ञानकवच धारणे होमे विनियोगः।

शकधूम-होममंत्र

ॐ शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥
भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥
अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्यां।
भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्थमथो दिवा।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥
(अथर्व० ६।१२८)

होम करने के बाद निम्नांकित प्रार्थना-मंत्रों का पाठ करे।

ॐ ऋतेनगुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तोभव्येनचाऽहम्।
मा मा प्रापत्पाप्मामोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥
(अथर्व० १७।२९)

ॐ बृहस्पति र्नः परिपातुपश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः परस्तादुतमध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥
(अथर्व० ७।५१)

विशेष—ज्ञानकवच धारण करने से मानसिक शक्ति का विकास होता है। मन की शक्ति से मनुष्य की योग्यता निश्चित होती है। जिसका मन शुद्ध और पवित्र होता है, वह महात्मा होता है और जिसका मन मलिन विचारों से अपवित्र रहता है, वह दुष्ट कहलाता है। ज्ञानकवच के धारण करने की उपासना से आत्मबल, मनोबल बढ़ता है। परमात्मा की भक्ति, उपासना, सद्विचार, सद्भावना का मनन मन को पवित्र बनाता है। मन जब पवित्र हो जाता है, तब मानसिक शक्ति का विकास होता है। संकल्प से ज्ञान-शक्ति विकसित होती है। ज्ञान को ज्ञानाग्नि, जातवेद अग्नि कहते हैं। जिससे वेदों का आविर्भाव हुआ है, वही जात-अग्नि है और जिससे ज्ञान प्रकाशित हुआ है वही यह अग्नि है। इसी को ज्ञानाग्नि, ब्रह्माग्नि, आत्माग्नि, जातवेद आदि कहा जाता है। मानसिक शक्ति का विकास अथवा आत्मिक बल-वृद्धि करने की अभिलाषा जिसमें हो, वह इस अग्नि की शरण में जाकर ज्ञानकवच धारण करे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

४. आत्मोन्नति

अथर्ववेद में बताई गई ब्रह्मविद्या की उपासना से आत्मोन्नति होती है। हर व्यक्ति अपनी उन्नति की आकांक्षा रखता है, किन्तु आत्मोन्नति के मूल आधार को छोड़ कर वह शाखाओं, प्रशाखाओं की उन्नति को आत्मोन्नति समझ कर दिग्भ्रान्त रहता है, तनिक-सी आर्थिक उन्नति हो जाने पर कृतकृत्य हो जाता है। सामाजिक या राजनैतिक जीवन को आत्मोन्नति समझ कर वह फूला नहीं समाता है।

आत्मोन्नति का मार्ग बताते हुए अथर्ववेद (कां० ५, सू० ६) में कहा गया है :—

आत्मोन्नति चाहने वाले व्यक्ति को सिद्धि का मार्ग अपनाना चाहिए। सिद्धि का मार्ग ही धर्म-मार्ग है। धर्म-मार्ग पर चलते रहने से सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है। वह धर्म-मार्ग कौन-सा है, इसे चार सूत्रों द्वारा बताया गया है :—

१. परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रख कर भगवद्भक्ति करना।

२. अपने जीवन के हर कार्य-व्यवहार में अपने से पूर्व श्रेष्ठ जनों के आदर्शों को अपने सामने रखना।

३. पाप का भय धारण करना।

४. उन्नति के बाधक शत्रुओं, संकटों, बाधाओं को दूर करना।

अथर्ववेद इन्हें उन्नति के चार सूत्र कहता है। और चार मंत्रों (५, ६, ७, १०) में चार चार वार स्वाहा शब्द के प्रयोग का महत्त्व बताते हुए उपदेश देता है कि 'स्वाहा' करने से ही आत्मोन्नति की सिद्धि मिलती है। अपने सर्वस्व (स्व) को त्याग देना (हा) स्वाहा है। तात्पर्य यह कि अपने अधिकार में जो तन, मन, धन है; उन सब का जनता की भलाई के लिए समर्पण कर देना 'स्वाहा' है। अपनी शक्ति को केवल अपने भोग-सुखों के बढ़ाने में खर्च न करके सम्पूर्ण जनता की भलाई के लिए व्यय कर देना 'स्वाहा' शब्द से बताया गया है। इसीलिए यज्ञ या हवन करते समय 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका आशय यह है कि मैं जो यज्ञ, हवन कर रहा हूँ, उसमें दी जाने वाली आहुतियाँ दूसरों की उन्नति के लिए दे रहा हूँ। उनसे मैं अपने भोग-सुख नहीं बढ़ाना चाहता हूँ। (इदं न मम्)।

द्रव्ययज्ञ, विद्यायज्ञ, ज्ञानयज्ञ आदि कई प्रकार के यज्ञ होते हैं। इन यज्ञों का तात्पर्य यह है कि द्रव्य, विद्या और ज्ञान आदि का परोपकार के लिए समर्पण करना है। परोपकार के लिए अपना 'स्व' समर्पण करना ही स्वाहाकार है। यह स्वाहाकार जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक उच्च सिद्धि प्राप्त होगी।

हम अपने जीवन काल में अथवा पूर्वजों के इतिहास से यह अनुभव कर सकते हैं कि संसार में निजी स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने वालों की विशेष प्रतिष्ठा होती है और स्वार्थी मनुष्य उनके सामने नगण्य रहते हैं।

आठवें मंत्र में तीन उपदेश दिए गए हैं :—

१. पापाचरण से दूर रहना।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. आत्मसमर्पणरूप यज्ञ करना।

३. अमृत को प्राप्त करना।

पाप कर्मों से बचना, सत्कर्म करना और मृत्यु के भय को दूर करना—अथर्ववेद के तीन उपदेश विश्व के सभी धर्मों में स्वीकृत हैं।

अथर्ववेद ने शत्रु-भय, संकटों, बाधाओं को दूर कर आत्मोन्नति करने का सुझाव दिया है। संसार में शत्रु का भय शस्त्रों से दूर किया जाता है। शत्रु-भय को दूर करने के लिए शस्त्रास्त्र एकत्र करने, सैन्य-बल को बढ़ाने की होड़ लगा करती है। इस होड़ की कोई सीमा नहीं है। किन्तु अथर्ववेद शस्त्रों के शस्त्र प्रस्तुत करते हुए कहता है कि 'आँख, मन, ज्ञान और तप—ये महान् अस्त्र हैं।' भौतिक अस्त्रों से इनमें लाखों गुना अधिक शक्ति रहती है। इसलिए भौतिक, आणविक शस्त्रास्त्रों के पशुबल का प्रतीकार नेत्र, मन, ज्ञान और तपरूपी आत्मिक बल वाले आध्यात्मिक शस्त्रास्त्रों से किया जा सकता है। केवल दृष्टि निक्षेप से, केवल मानसिक संकल्प से, केवल ज्ञान योग से अथवा तप के प्रभाव से पाशविक शस्त्रों का प्रतीकार किया जा सकता है। सब से शक्तिशाली आत्मिक बल होता है। आत्मोन्नति मार्ग से आत्मशुद्ध होकर मनुष्य वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक और पारमार्थिक उन्नति की साधना कर सकता है।

आत्मोन्नति की साधना तीन प्रकार से की जाती है :—

१. ब्रह्मविद्या सूक्त के मंत्रों से नित्य, नियमानुसार, निरन्तर कुश-अपामार्ग द्वारा जलाभिषेचन करना।

२. प्रतिदिन इन्हीं मंत्रों से आज्याहुति देना।

३. ब्रह्मविद्या के मंत्रों का मनन-चिन्तन करना।

तीसरी विधि कठिन है। अभ्यास-साध्य है। जलाभिषेचन, हवन सरल, साध्य हैं।

५. ब्रह्मविद्या

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पंचम काण्डस्य षष्ठ सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। सोमाग्नी देवते। अनेकधा छन्दांसि। आत्मोन्नति प्राप्त्यर्थे जलाभिषेचने च विनियोगः।

यदि हवन करना हो तो 'होमे' और मनन करना हो तो 'मनने' विनियोगः कहना चाहिए।

मंत्र

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद्वः एतत् पुरो दधे ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सहस्रधार एव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥३॥
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४॥

न्वे३ तेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५॥
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७॥
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवाद्याञ्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये३.स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥
यो३ स्मांश्चक्षुषा मनसा चित्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्या मेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रस्य गृहोऽसि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन । ॥११॥
इन्द्रस्य शर्मासि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन । ॥१२॥
इन्द्रस्य वर्मासि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्रविशा मिसर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन । ॥१३॥
इन्द्रस्य वरूथमसि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन । ॥१४॥

विशेष—इस ब्रह्मविद्या सूक्त के मंत्रों को पढ़ते हुए जलाभिषेचन करने से समस्त रोग, दोष, दुःख, दारिद्रय, संकट, संघर्ष, भूत-प्रेत की बाधाएँ भी दूर हो जाती हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६. गुह्य अध्यात्मविद्या

अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १ के पाँच मंत्रों द्वारा गुह्य अध्यात्मविद्या बताई गई है। इस गुह्य अध्यात्मविद्या को विद्या, पराविद्या, गुह्यादगुह्यतरविद्या, गूढ़विद्या, गुप्त-विद्या, गूढ़ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मविद्या भी कहा गया है। वेदों और आगमशास्त्रों में सब विद्याओं में गुह्यअध्यात्मविद्या मुख्य मानी गई है।

इस गुह्यविद्या की साधना अति कठिन है। इसकी साधना से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसकी साधना की अनेक क्रियाएँ हैं किन्तु सर्वसाधारण जन के लिए यह सब असंभव है। इन्हें वीतराग, ब्रह्मनिष्ठ योगीजन ही करने में समर्थ हैं। आत्मज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने का यह परम साधन है।

इस गुह्यविद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच सोपान बताए गए हैं।

१. प्रथम सोपान अज्ञानावस्था का है। इस अवस्था में साधक को अपने और जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान रहता है।

२. दूसरा सोपान भोगावस्था का है। 'जगत् अपने भोग के लिए है' ऐसा मानना और जगत् को अपने अधीन करने का प्रयत्न करना। जगत् पर अपना वर्चस्व, प्रभुत्व स्थापित करना। इस अवस्था में भोग और ऐश्वर्य बढ़ाए जाते हैं।

३. तीसरा सोपान त्यागावस्था का है। जगत् के भोगों से उदासीन होकर विभक्तों में व्यापक अविभक्त सत्तावाली सद्वस्तु को खोजने का प्रयत्न करना। साधक की यह जिज्ञासु अवस्था होती है।

४. चौथा सोपान भक्तावस्था है। इस अवस्था में साधक विभिन्न विश्व में व्यापक एक अभिन्न आत्मतत्त्व को देखने लगता है और श्रद्धाभक्ति पूर्वक उसकी उपासना करने लगता है।

५. पाँचवाँ सोपान स्वरूपावस्था है। इस अवस्था में साधक की भक्ति और उपासना जब दृढ़ होकर सहजभाव को प्राप्त हो जाती है, तो वह अपने उपास्य के तद्रूप हो जाता है। उपासक और उपास्य के मध्य कोई भेद, अन्तर नहीं रह जाता है। यह अवस्था साक्षात्कारावस्था है। यहाँ पहुँचने पर उसे सब कुछ प्रत्यक्ष होने लगता है।

साधना द्वारा यहाँ तक पहुँचने के बाद वह पूर्णअवस्था प्राप्त करने की साधना में निरत हो जाता है। पूर्ण अवस्था में उसे जब आत्मज्ञान हो जाता है, तब वह आत्मज्ञानी साधक अमृतधाम को अपनी हृदय-गुहा में अनुभव करता है। वह यह अनुभव करता है कि अनन्त शक्तियाँ उसकी हृदय-गुफा में एकत्र हैं। वह अपने हृदय में ही परमात्मा को देखता है।

संक्षेप में गुह्यविद्या का यत्किंचित् परिचय देने के बाद सर्वसाधारण के लिए उपयोगी और करणीय एक प्रयोग अपने अनुभव के आधार पर दिया जा रहा है। मनुष्य के हृदय में कामनाओं का जाल बिछा रहता है। उसके मन में निरन्तर संकल्प-विकल्प उठते-बैठते रहते हैं। अनेक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए वह विकल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहता है। अनेक प्रश्न उसके हृदय में छलाँगें लगाते रहते हैं और वह उनके उत्तर पाने के लिए छटपटाया करता है। ऐसी अवस्था में एकमात्र गुह्यविद्या ही उसकी सहायता सरलता से कर सकती है। उसके विधान इस प्रकार हैं :—

१. पाँच गाँठों से युक्त बाँस की पतली डाल और काम्पील (कबीला) की शाखा दोनों को अथर्ववेद, काण्ड २ सूक्त १ (वेनस्तत०) से अलग-अलग विनियोग पूर्वक अभिमंत्रित करे। इसके बाद अपने अभीष्ट कार्य का चिन्तन मन ही मन करके और सफलता सूचक दिशा निश्चित करके उन दोनों शाखाओं को समतल भूमि पर खड़ा करे। यदि खड़ी हुई शाखाएँ पूर्व निर्धारित सफलता की दिशा में गिरती हैं तो निश्चय ही कार्य सफल होता है और विपरीत दिशा में गिरने से असफल होता है।

२. चोरी गया धन अथवा खोया हुआ आदमी या पशु किस दिशा में है—यह जानने के लिए मिट्टी के कलश में पवित्र जल भर कर उसे लाल वस्त्र से ढक कर उक्त सूक्त से अभिमंत्रित कर आठ या दस साल की लड़की से कहा जाए कि इसे उठाकर ले जाए, जिधर वह कन्या जाएगी उधर ही नष्ट धन, खोया हुआ आदमी या पशु मिलेगा।

३. एक ताम्रदीप में घी और सिन्दूर से निम्नांकित यंत्र अनार की लेखनी से लिखकर उस पर घी का दीपक जलाया जाए। दीपक की वत्ती (फूल बत्ती) खड़ी रहे और उस पर भी घी-सिन्दूर लगा दिया जाए। इसके बाद काण्ड पाँच के छठे सूक्त के प्रथम मंत्र (ब्रह्म यज्ञानं) और काण्ड २ के प्रथम सूक्त (वेनस्तत०) से अभिमंत्रित कर किसी ८ या १० साल की लड़की या लड़के को दीपक के पास बैठा दिया जाए और

ऐं	ह्रीं	क्लीं
चा	मुं	डा
यै	वि	च्चे

वह दीपक की ज्योति की ओर देखता रहे। प्रश्नकर्त्ता अपना प्रश्न प्रस्तुत करे और एक आदमी वेनस्तत०, इस सूक्त के मंत्रों को पढ़ता रहे, तो दीपक-ज्योति में प्रश्न का उत्तर अकारादि क्रम से उभरने लगेंगे। उन्हें पढ़ कर बालक बता सकता है। खोये हुए आदमी अथवा पशु या चोर-डाकू की आकृति और स्थान भी दिखाई पड़ता है। दुर्गति, कृत्या, अभिचार कर्मों तथा समस्त आधि-व्याधि, दुर्भाग्य, अरिष्ट, अनिष्ट के ज्ञान की पुष्टि इसी से हो जाती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूक्त-मंत्र

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य प्रथमसूक्तस्य वेनः ऋषिः। ब्रह्मा आत्मा देवते। त्रिष्टुप्, जगती छन्दसी। अभीष्ट प्रयोजने सिद्धयर्थे विनियोगः।

ॐ वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१॥
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान्गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२॥
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥४॥
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५॥
(अथर्व० ३।१)

७. स्वस्त्ययन

विश्वकर्मण गण के अन्तर्गत स्वस्ति-ऋचाएँ, मेधाजनन, वर्चस्वप्राप्ति, कल्याण-कर्म के अतिरिक्त दीर्घायुष्य, धन-सम्पत्ति संवर्द्धनार्थ, पुत्र, पौत्र, मित्र, भृत्य के कुशल क्षेमार्थ, भाग्य की वृद्धि के लिए, ज्ञान-प्राप्ति के लिए, प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए, शान्ति और पुष्टि प्राप्ति करने के लिए, शौर्य और साहस प्राप्त करने के लिए बताई गई हैं। इनकी उपासना उपासक को सफल मनोरथ बनाती हैं। आत्मिक, आध्यात्मिक, भौतिक उन्नति के लिए यह अद्वितीय है। ये मंत्र अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त १६ में हैं। मुख्यतया इनकी उपासना भक्तिमार्गी और योगमार्गी दो प्रकार की है। दोनों प्रकार की उपासनाओं की विधियाँ भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न हैं।

यहाँ पर ऐसी सरल, साध्य विधि लिखी जा रही है, जो सब के लिए उपयोगी, साध्य और मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। मन्त्र ये हैं :—

ॐ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भग प्रणतेर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु ॥६॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
(अथर्व० ३।१६)

वैदिक पद्धति के अनुसार इस सूक्त में एक ही परमात्मा के अग्नि, इन्द्र आदि नाम आए हैं, ये सब नाम एक ही परमात्मा के वाचक हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न गुण-धर्म रखते हैं।

जैसे :—

१. अग्नि—तेज, प्रकाश, उष्णता और गति करने वाला गुण-धर्म रखता है।

२. इन्द्र—शत्रुओं का संहार करता है। ऐश्वर्यवान्, नियामक, महान् शासक और राजा है।

३. मित्र—सुहृद्भाव सम्पन्न, सब पर प्रेम रखने वाला, सबका हितकारी है।

४. वरुण—श्रेष्ठ, निष्पक्षभाव से सत्यासत्य का निरीक्षण करने वाला, वरिष्ठ है।

५. अश्विनौ—धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों से युक्त, वेगवान्, सर्व-व्यापक है।

६. भग—भाग्यवान्, ऐश्वर्यवान्, धनवान् है।

७. पूषा—तुष्टि-पुष्टि प्रदान करने वाला है।

८. ब्रह्मणस्पति—महान् ज्ञानी है।

९. सोम—शान्त, आह्लादक, मधुर, कलाधर, कलानिधि, हर्षद है।

१०. रुद्र—उग्र, प्रचण्ड, भयानक, घोर गर्जन करने वाला, महाशूर, वीरभद्र, शत्रुसंहारक, शत्रुओं को रुलाने वाला है।

उपासना विधि

१. उक्त सूक्त के सात मंत्रों का एकाग्रचित्त से मनन करते हुए परमात्मा के उक्त गुणवाचक नामों से उसका ध्यान कर उन गुणों को अपने में बढ़ाने की इच्छा रखकर उपासना की जाती है। यह उपासना योग से संबंधित है, इसमें प्राणों और नाड़ियों का तालमेल बैठाना पड़ता है। षट्चक्रों द्वारा की गई इस उपासना (चिन्तन, मनन, निदि-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्यासन) से मन का वायुमंडल मनन के आधार पर बनता है और आवश्यक गुण मन में विकसित होने लगते हैं। इस पद्धति में कर्म-शक्ति से युक्त धारणावती बुद्धि को ध्यान में विशेष रूप से धारण किया जाता है। सौभाग्य, धन, ऐश्वर्य, प्रभुत्व की वृद्धि इसी धारणावती बुद्धि के सामर्थ्य से हुआ करती है। उक्त सूक्त के तीसरे मंत्र में 'इमांधियं उदव ददत् नः' कह कर यह स्पष्ट बोध कराया गया है कि 'धीः' शब्द में जिस प्रकार बुद्धिमत्ता का भाव है, उसी प्रकार पुरुषार्थमयी कर्मशक्ति का भी भाव है। यह 'धी' जितनी बढ़ेगी उतनी ही मनुष्य की योग्यता और पुरुषार्थ-शक्ति बढ़ेगी। इस उपासना-विधि की क्रिया सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य और साध्य नहीं हो सकती, इसलिए इसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

२. दूसरी विधि के अनुसार उक्त सूक्त के मंत्रों से उपस्थान, हवन किया जाता है। दूसरों के लाभार्थ मंत्रों को पढ़ते हुए जलाभिषेचन किया जाता है। ये क्रियाएँ विनियोग द्वारा इस प्रकार प्रारंभ करनी चाहिए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य षोडशसूक्तस्य अथर्वाऋषिः। अग्निः, इन्द्रः, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, भगः पूषा, ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रुद्रः, भगः, आदित्यः, इन्द्रः, दधिक्रवा, अश्वाः, उषा देवताः। त्रिष्टुप्, आर्चीजगती, भुरिक्पंक्तिः छन्दांसि। मेधाजनने, ब्रह्मवर्चसे, स्वस्त्ययने, दीर्घायुष्ये, रयिसंवर्द्धने, पुत्र, पौत्रादि, मित्र, भृत्यादि संवर्द्धने जलाभिषेचने च विनियोगः।

३. इससे हवन तथा उपस्थान भी किया जाता है। हवन घी और आम की लकड़ी से अग्नि प्रज्ज्वलित कर किया जाता है। उपस्थान पूर्व की ओर मुंह करके पद्मासन से बैठकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर किया जाता है।

४. प्रातःकाल उठकर इस सूक्त का जप या पाठ करना चौथी विधि है। इसमें विनियोग करने की आवश्यकता नहीं है।

विशेष—अथर्ववेद (३।१६) के उपर्युक्त सूक्त से जलाभिषेचन या हवन करने से दुःख-दारिद्रय-दुर्भाग्य का नाश होता है। अभ्युदय और निश्रेयस् की प्राप्ति होती है। त्रयताप नष्ट होते हैं। यह अनुभवसिद्ध प्रयोग है।

८. मेधाजनन

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए अथर्ववेद में 'मेधाजनन' की प्रक्रिया बताई गई है। मेधाजनन का सामान्य अर्थ 'बुद्धि-संवर्द्धन' है। जीवन का निर्माण करने वाली, जीवन को अभ्युदय प्रदान करने वाली तन्त्र-प्रक्रिया 'मेधाजनन' से मेधा बुद्धि का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। इसके प्रयोग से मनुष्य मेधावी और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्नतशील बनता है। मेधा बुद्धि से प्रज्ञा बुद्धि का उदय होता है। 'ऋतम्भरा' बुद्धि को 'प्रज्ञा' कहा जाता है। ऋत (सत्य) को धारण करने वाली बुद्धि 'प्रज्ञा' कहलाती है।

'मेधा' का शाब्दिक अर्थ 'धारणा' वाली बुद्धि है। यह बुद्धि सतोगुण को बढ़ाती है। मेधाजनन का साधन है मन की शक्ति बढ़ाना। अथर्ववेद में मेधा शक्ति बढ़ाने वाले अनेक सूक्त हैं। जलाभिषेचन, हवन आदि प्रयोगों द्वारा जड़ बुद्धि कुशाग्र बनती है। मस्तिष्क के विकार दूर होते हैं। नृशंसता, क्रूरता, दुर्बुद्धि का विनाश होकर अभ्युदय प्रदान करने वाली मेधा बुद्धि का उदय होता है।

मेधा शक्ति प्राप्त होने पर विघटन की भावना नष्ट होती है और संगठन का भाव उत्पन्न होता है। पारिवारिक एकता, सामाजिक और राष्ट्रिक एकता के उदात्त भाव उत्पन्न होते हैं। मेधाजनन से क्रूर, कुचाली, आततायी, नृशंस व्यक्ति भी सौम्य, सुजन, सहृदय और सेवाभावी बनता है। आत्मोन्नति द्वारा वह अपना और समाज का कल्याण करता है।

मेधाजनन-संबंधी कतिपय अथर्ववेदीय प्रयोग यहाँ दिए जा रहे हैं, जिनकी विनियोगपूर्वक जलाभिषेचन क्रिया अभीष्ट सिद्ध करती है।

मेधाजनन (बुद्धि-संवर्द्धन)

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। वाचस्पतिः देवता। अनुष्टुप् विराड्रोवृहती छन्दसी। सर्वकर्मारम्भे मेधाजननार्थे जपे, होमे, जलाभिषेचने च विनियोगः।

१. मेधाजनन सूक्त
[काण्ड १, सूक्त १]

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

१. मेधाजनन सूक्त के उपर्युक्त चार मंत्र यज्ञ में, दान में, मन्त्र के उच्चारण में और वाणी-जन्य उच्चारण-दोषों से नष्ट हुई पवित्रता को पुनः प्राप्त कराते हैं। इन मंत्रों को नित्य जपने से अथवा इनके द्वारा नित्य हवन करने से आत्मशक्ति, मानसिक-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति, मेधाशक्ति की वृद्धि होती है। प्रज्ञा बुद्धि का उदय होता है। अतीन्द्रिय ज्ञान और वर्चस्व की प्राप्ति होती है।

२. किसी भी प्रकार का आथर्वण कर्म, प्रयोग या साधना करने से पूर्व उक्त सूक्त के चारों मंत्रों का पाठ करना अनिवार्य है। इन मंत्रों से जलाभिषेचन अथवा हवन करने से बुद्धि की जड़ता, मन्दता दूर होती है। स्मृतिशक्ति, मेधाशक्ति बढ़ती है। ओज, तेज, बल, रोग, दोष आदि के निवारण के लिए भी इन मंत्रों के प्रयोग जलाभिषेचन, हवन, जप आदि क्रियाओं द्वारा किए जाते हैं।

मेधाजनन के और भी अनेक सूक्त हैं, किन्तु उपर्युक्त एक ही सूक्त के मंत्रों द्वारा जलाभिषेचन, हवन आदि प्रयोग करने से ऊपर बताए गए सभी प्रयोजन सिद्ध होते हैं। मेधाजनन विषयक सभी सूक्तों के मंत्रों से प्रयोग करने पर ज्ञात-अज्ञात रोग-दोषों का शमन होता है और शीघ्र ही प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

२. मेधाजनन
[काण्ड, ६ सूक्त १०८]

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य अष्टोत्तरशत सूक्तस्य शौनकः ऋषिः। मेधा अग्निश्च देवते। अनुष्टुप् उरोबृहती पथ्याबृहती छन्दांसि। अभीष्ट संसिद्धयर्थे मेधाजनने, जलाभिषेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥३॥
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधया मे मेधाविनं कृणु ॥४॥
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां माध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

३. मेधाजनन
[काण्ड ६, सूक्त (पर्याय) १०८]

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य अष्टोत्तरशत पर्यायसूक्तस्य शौनक ऋषिः। मेधा अग्निश्च देवते। ऊरु बृहती, पथ्यापंक्तिः, अनुष्टुप् छन्दांसि। मेधाजननार्थे सकलाभीष्ट सिद्धयर्थे जलाभिषेचने, होमे, जपे च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ मेधां मह्यमङ्गिरसो मेधां सप्तऋषयो ददुः ।
मेधानिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां धाता ददातु ते ॥१॥
मेधां ते वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती ।
मेधां ते वरुणो अश्विनौ देवा नो धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥
यां मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यम्मनः ।
देवी या मानुषी मेधा सा मा मा विशतादिमाम् ॥३॥
यन्मे नोक्तं तद्रमतां शकेयं यदनुब्रुवे ।
निशामतं नि शामहै मयि व्रतं सह व्रतेषु भूयासं ब्रह्मणा संगमेमहि ॥४॥
शरीरं मे चिचक्षणं वाङ् मे मधुमत् दुहाम् ।
अवृद्धमहमसौ सूर्यो ब्रह्मणा नी स्थः श्रुतं मे मा प्र हासी ॥५॥
मेधां देवीं मनसा रेजन्मे वां गन्धर्व जु प्रति नो जुषस्व ।
मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद मेधावी भूयासमजराजरिष्णुः ॥६॥
सदस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् स निं मेधानथासिषम् ॥७॥
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥८॥
मेधाव्यहं सुमनः सुप्रतीकः श्रद्धामनाः सत्यमतिः सुशेवः ।
महायशा धारयिष्णुः प्रवक्ता भूयासमस्मै शरया प्रयोगे ॥९॥
नाशायित्री पलाशस्यारुषसौ पथिकामसु ।
अथो ततस्य यक्ष्माणमपापा रोगनाशिनी ॥१०॥
ब्रह्मवृक्ष पलाश त्वं श्रद्धां मेधां च देहिमे ।
वृक्षाधिप नमस्तेऽस्तु अत्र त्वं सन्निधो भव ॥११॥

इस सूक्त के मंत्रों का प्रयोग हवन द्वारा किया जाता है। पलाश (ढाक) वृक्ष की समिधाओं से, गोघृत से मंत्रों को पढ़ते हुए हवन करना चाहिए। इस प्रकार का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया जाता है, जिसका मस्तिष्क विकृत हो जाता है। हृदय में श्रद्धा का भाव तिरोहित रहता है। क्रूरता और अविश्वास की भावना भरी रहती है।

४. मेधाजनन

[काण्ड ७, सूक्त ६१]

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य एकोत्तर षष्ठिसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। मेधाजनने सर्वाभीष्ट सिद्धयर्थे च जपे विनियोगः।

ॐ यदग्ने तपसा तप उप तप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥१॥
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन मंत्रों को रोगी के नाम से विनियोग करके जप किया जाता है। आयुक्षीणता, बुद्धिक्षीणता, दौर्भाग्यजनितारिष्ट-निवारण में इनका प्रयोग किया जाता है।

मेधाजनन प्रयोग से धारणावती बुद्धि प्राप्त होती है। सत् और असत् का विवेक करने की क्षमता प्राप्त होती है। वाणी का गौरव बढ़ता है। मस्तिष्क के तन्तु सशक्त और ऊर्जस्वल बनते हैं। स्मृति शक्ति बढ़ती है। निर्णायक बुद्धि प्राप्त होती है और विकल्प दूर होकर संकल्प शक्ति बढ़ती है। मनुष्य को क्रूर, कुमार्गी, दुराचारी बनाने वाले परमाणु नष्ट होते हैं। जड़ता, हठधर्मिता, मिथ्याभिमान का क्षय होता है। व्यक्तित्व और विचार निर्मल बनते हैं।

मेधाजनन सूक्त के मंत्रों से विनियोगपूर्वक जलाभिषेचन करने से अथवा वट की समिधा से आज्याहुति देने से समस्त बुद्धि दोष, मस्तिष्क रोग दूर होते हैं।

९. वाक्-सिद्धि, विवाद-विजय, बालग्रह दोष
[काण्ड ७, सूक्त १०, मंत्र १-४]

निम्नांकित चार मंत्रों से जलाभिषेचन अथवा हवन करने से बालकों के पूतना-गृहीत दोष, शकुनिग्रह दोष, जमुआ (सौरिग्रह का रोग) आदि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त चोरी गया हुआ धन-द्रव्य, किसी की जमीन, जायदाद पर यदि किसी दूसरे ने शक्ति के बल पर अधिकार कर लिया हो, तो इन मंत्रों के जप और हवन से नष्ट धन, सम्पत्ति, परहस्तगता सम्पत्ति पुनः प्राप्त होती है। इन प्रयोजनों की सिद्धि के लिए ११ दिन तक हवन और जप करना चाहिए। वाणी की सिद्धि के लिए ८० दिन तक संयम, नियम, ब्रह्मचर्यपूर्वक मंत्रों का जप, सूर्योपस्थान और हवन करना चाहिए।

सभा में, समिति में, वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने के लिए २१ दिन तक जलाभिषेचन, जप और हवन करना चाहिए। मात्र इतने से मंत्र का देवत्व और शक्ति कर्त्ता को प्राप्त हो जाती है। फिर जहाँ कहीं सभा, समितियों में जाए, तो वहाँ पहुँचकर इन मंत्रों का मन ही मन जप कर लेना चाहिए, तदनन्तर बोलना चाहिए। मेधा शक्ति और स्मृति शक्ति बढ़ाने के लिए अथवा श्रुतधर की क्षमता प्राप्त करने के लिए संयम, नियमपूर्वक २१ दिन तक जप करने से अभीष्ट सिद्ध होता है।

जिस प्रयोजन से साधना करनी हो, विनियोग में उसी प्रयोजन का उल्लेख करना चाहिए, सभी का नहीं। यहाँ हम जो विनियोग दे रहे हैं, वह समष्टि प्रधान है, उसमें सभी प्रकार के प्रयोजनों का उल्लेख है, किन्तु जिसे जो प्रयोजन अभीष्ट हो, उसे विनियोग में उसी प्रयोजन का उल्लेख करना चाहिए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य दशम सूक्तस्य एकतः चतुर्थ पर्यन्त मंत्रस्य उपरिश्रवः ऋषिः। पूषा देवता। त्रिष्टुप्, त्रिपदा, आर्ची गायत्री, अनुष्टुप्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

छन्दांसि। वाग्सिद्धयर्थे, सभायां विजयार्थे, बालग्रहदोष निवारणे, नष्टधन पुनः प्राप्त्यर्थे, अपहृत धन-सम्पत्ति भूमिषु स्वाधिकार प्राप्त्यर्थे, स्मृति-मेधा शक्ति संवर्द्धनार्थे, स्वस्त्यनार्थे च जपे, उपस्थाने, होमे, अभिषेचने च विनियोगः।

ॐ प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥२॥
पूषन्नव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥
परि पूषा पुरस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४॥

वाक्सिद्धि : स्वस्त्ययन

[काण्ड १९, सूक्त ४०, मंत्र १-४]

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य चत्वारिंशत् सूक्तस्य एकतः चत्वारि मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः। बृहस्पतिः विश्वेदेवाश्च देवते। परा अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पुरः ककुम्मती उपरिष्टाद्बृहती, बृहतीगर्भा, त्रिपदा, आर्ची गायत्री छन्दांसि। वाग्सिद्धयर्थे, स्वस्त्ययने च जपे, होमे विनियोगः।

ॐ यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन्।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः।
तामस्मे रासतामिषम् ॥४॥

इन चार मंत्रों का २१ दिन तक जप अथवा हवन करने से वाणी सिद्ध होती है और हर प्रकार का कल्याण होता है। किसी प्रकार की आपत्ति, विपत्ति, संकट, संघर्ष नहीं उपस्थित होते हैं।

सभाजयार्थ

[काण्ड ७, सूक्त १२, मंत्र १-४]

विद्वानों का वह समाज जहाँ सत् और असत् का निर्णय किया जाता है, उसे सभा कहते हैं। यास्क के मत से 'विद्वानों का वह समुदाय जो शास्त्र-सम्मत धर्म का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिपादन करे वह सभा कहलाती है।' इस प्रकार की सभा में उपस्थित होकर अपनी विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से वाणी पर अनुशासन करने के निमित्त इन्द्रदेव की प्रार्थना करनी चाहिए—यह अथर्ववेद का उपदेश है। तैत्तरीय आरण्यक का कथन है कि 'देवताओं ने इन्द्र के पास जाकर उनसे कहा कि हमारी वाणी को व्युत्पादित कीजिए। तब इन्द्र ने मध्य भाग से घुमाकर उनकी वाणी को व्युत्पादित किया।' यह प्रतीकात्मक कथन है। कौशिक सूत्र के भाष्य में भाष्यकार दारिल-केशव ने बताया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी सभा में अपनी विजय का इच्छुक हो, तो वह दही, मधु, घृत (विषम भाग में) का पुरोडाश (प्रसाद) अथर्ववेद के काण्ड ७, सूक्त १२ के पहले मंत्र से लेकर चार मंत्रों से अभिमन्त्रित कर उस पुरोडाश का सेवन करे और इन्हीं मंत्रों का जप सभा में जाते हुए करे, फिर बैठ जाए तो उसकी विजय निश्चित है। (इसका हमें अनुभव नहीं है।)

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य द्वादश सूक्तस्य शौनक ऋषिः। सभा, पितरः, इन्द्रः, मनः देवताः। अनुष्टुप्, भुरिक्, त्रिष्टुप् छन्दांसि। सभाजयार्थे, पुरोडाश अभिमंत्रणे, प्राशने सभायामुपवेष्ठने च विनियोगः।

ॐ सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥१॥
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥
एषामहं सभासीनानां वर्चो विज्ञान मा ददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनंकृणु ॥३॥
यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् व आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४॥

१०. महाविद्या

अथर्वशीर्षम्

अथर्वशीर्ष अथर्ववेद की उपनिषद् है। इसका जप, उपस्थान, होम करने से अथवा नित्य, नियमानुसार इसका केवल पाठ करने से पागलपन, भूत-प्रेत की बाधा, सन्तान, धन की क्षति की शान्ति; आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दोषों का शमन, कृत्या दोषों का शमन; अभिचार कर्मों तथा निर्ऋति (दुर्गति), शापजन्य क्लेशों का निवारण, शत्रु बाधा का शमन, जन्मान्तर के पापों का निवारण होता है। मनीषा, बुद्धि, स्मृति, मेधा, संकल्पशक्ति का संवर्द्धन होता है। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाभ होते हैं, इस उपनिषद् में बताए गए हैं। यह महाविद्या उपनिषद् है। इसके प्रयोग बहुत ही सफल होते हैं। विवेक बुद्धि, प्रज्ञा और आस्था बढ़ाने में यह अद्वितीय सिद्ध हुआ है। वस्तुतः यह दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा देवी की साधना की महाविद्या है। इसकी साधना नवार्णमंत्र (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) से की जाती है, जो सर्व-साधारण के लिए कठिन है, क्योंकि घर पर रहकर दस-बीस दिन में यह साधना सिद्ध नहीं हुआ करती है। किन्तु समस्त रोग, दोष, क्लेश, दुःख, दारिद्रय के निवारण के लिए केवल इसका पाठ पवित्र हृदय से पवित्र वातावरण में सूर्योदय से पूर्व करने मात्र से अमित लाभ देखा गया है।

अथअथर्वशीर्षम् व्याख्यस्यामः

ॐ सर्वे वै देवाः देवीमुपतस्थुः। क्वासि त्वं महादेवीति ॥१॥
साऽब्रवीत्। अहं ब्रह्मस्वरूपिणी।
मत्तः प्रकृतिः पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ॥२॥
अहमानन्दाऽऽनन्दौ। अहं विज्ञानाऽऽविज्ञाने। अहं ब्रह्मा ब्रह्माणी वेदितव्ये।
अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत् ॥३॥
वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहमविद्याऽहम्।
अजाऽहमन जाऽहम्। अधश्चोर्ध्वश्चतिर्यक् चाहम् ॥४॥
अहं रुद्रेभिवसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुतविश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणावुभौविभर्मि अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥५॥
अहं सोमं त्वष्ट्रारं पूषणं भगं दधामि।
अहं विष्णुरुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥६॥
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।
अहं राष्ट्रीसंगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरपस्वन्तः समुद्रे।
य एवं वेद स दैवीसम्पदामाप्नोति ॥७॥
ते देवा अब्रुवन्। नमो दैव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम् ॥८॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचिनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये महासुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥९॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपां पशवो नयन्ति
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुष सुष्टुतैतु ॥१०॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्ष दुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अदितिह्यय जनिष्टः दक्षया दुहितातव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्राः अमृतबन्धवः ॥१३॥
कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाऽभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकलाः मायया च पुरुच्च्यैषाविश्व मातादि विद्योऽम् ॥१४॥
एषाऽऽत्मशक्तिः एषाविश्वविमोहिनी । पाशाङ्कुशधनुर्वाणधरा ।
एषा महाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ॥१५॥
नमस्तेऽस्तु भगवति । मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥१६॥
सैषाऽष्टौ वसवः । सैकादशरुद्राः । सैषा द्वादशाऽऽदित्याः ।
सैषा विश्वेदेवाः । सोमपा असोमपाश्च सैषा यातुधानाः
असुराः रक्षांसि पिशाचाः यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्वरजस्तमांसि ।
सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्र मनवः ।
सैषा ग्रहनक्षत्र ज्योतींषि । कलाकाष्ठादिकालरूपिणी ।
तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥१७॥
पापापहारिणीं देवीं भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीं । अनन्तां विजयां शुद्धां
शरण्यां शिवदां शिवाम् । वियदाकार संयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्द्धेन्दुलसितं देव्याः वीजं सर्वार्थसाधकम् ॥१८॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमयाः ज्ञानाम्बुराशयः ॥१९॥
वाण्या ब्रह्मसूक्तं तस्मात् षष्ठं वाऽत्र समन्वितम् ।
सूर्योऽवाम् श्रोत्रविन्दुसंयुक्ताष्टौतृतीयकः ।
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णाकोऽर्णःस्यान्महदाऽऽनन्ददायकः ॥२०॥
हृत्पुण्डरीक मध्यस्थां प्रातः सूर्यः समप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥२१॥
नमामि त्वां महादेवीं महाभय विनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्य रूपिणीम् ॥२२॥
यस्याः स्वरूप ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया ।
यस्यान्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता ।
यस्याः लक्षं नोपलक्षते तस्मादुच्यते अलक्ष्या ।
यस्याः जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा ।
एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका ।
एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका ।
अतएवोच्यते अज्ञेयाऽऽनन्ताऽऽलक्ष्याऽऽजैकानैकेति ॥२३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्राणां मातृका देवीं । शब्दानां ज्ञानरूपिणीं ।
सा नानाचिन्मयास्तीतां । शून्यानां शून्य साक्षिणीम् ।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२४॥
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णव तारिणीम् ॥२५॥
इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षं फलमाप्नोति ।
इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति ।
शतलक्षं प्रजप्त्वाऽऽपि सोऽर्चासिद्धिं नावविन्दति ।
शतमष्टोत्तरञ्चात्यपुरश्चर्या विधिः स्मृतः ।
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥२६॥
सायमधीयानो दिवस्कृतंपापं नाशयति ।
प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ।
सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति ।
निशीथे तुरीय सन्ध्यायां जप्त्वा महामृत्युंतरति
स महामृत्युं तरति य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥२७॥

११. पुरुषसूक्त

[काण्ड १९, सूक्त ६]

अथर्ववेद में भी पुरुषसूक्त है। शनिग्रह दोष के निवारण के लिए तथा पुत्रेष्टि-कर्म के लिए अथर्ववेदीय पुरुषसूक्त का विधान कभी निष्फल नहीं होता है। शनिग्रह-दोष निवारण के लिए विनियोग में केवल शनि ग्रह-दोष निवारण का ही उल्लेख करना चाहिए और सन्तान-प्राप्ति (पुत्रेष्टि) के लिए केवल पुत्रेष्टि कर्मणि या सन्तान सुख प्राप्त्यर्थे कहना चाहिए। शनिग्रह-दोष निवारण कर्म में जलाभिषेचन किया जाए अथवा अष्टांग हवन सामग्री से होम किया जाए। दो में से कोई एक कर्म किया जाना चाहिए।

पुत्रेष्टि के लिए प्रत्येक महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी को पति-पत्नी व्रत रखें। केवल फलाहार करें। नमक, अन्न आदि का सेवन न करें। तुलसी के बिरवा के पास भगवान् शालग्राम की शिला का विधिवत् पूजन करें फिर गाय के दूध से पुरुषसूक्त से अभिषेक करें। अभिषेक कराने के लिए किसी निर्लोभ, आचार्यवान् पुरुष को नियुक्त करना यथेष्ट होता है। अभिषेक पूरा होने के बाद इसी सूक्त से पति-पत्नी दोनों अग्नि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में आहुति डालें। फल, फलाहार भगवान् को भी भोग के रूप में अर्पित किया जाए, उसी प्रसाद को पति-पत्नी ग्रहण करें। यह उपासना १२ एकादशी तक की जाती है, किन्तु दोनों पति-पत्नी प्रतिदिन स्नान करके तुलसी को स्नान कराकर अक्षत (चावल) चढ़ाएँ, घी का दीपक जलाएँ और १०८ बार ॐ नमो नारायणाय का जप अवश्य करें। पति के लिए संभव न हो, तो पत्नी प्रतिदिन यह उपासना साल भर तक अवश्य करे।

इस प्रकार की उपासना से जन्मान्तरकृत पापों का नाश होता है। इस जन्म के ग्रहों, नक्षत्रों के दोषों का निवारण होता है। यह व्रत, उपासना, अभिषेक करने से वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा (जिसके बच्चे मर जाते हों), या जिसे केवल लड़कियाँ ही पैदा होती हों, वह दीर्घायु, तेजस्वी पुत्र की माँ होने का गौरव प्राप्त करती हैं।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य षष्ठ सूक्तस्य नारायण ऋषिः। पुरुष देवता। अनुष्टुप् छन्दः। (प्रयोजन के अनुसार) शनिग्रह दोष निवारणे, पुत्र-सुख प्राप्त्यर्थे च जलाभिषेचने, अभिषेके, होमे विनियोगः।

ॐ सहस्र बाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥
त्रिभिःपद्भिर्द्यामरोहत्पादस्येहाभवत्पुनः।
तथा व्यक्रामत्विष्वङ्शनानशने अनु ॥२॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येश्वरो य दन्येनाऽभवत्सह ॥४॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यऽकल्पयन्।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥६॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥७॥
नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ३न् अकल्पयन् ॥८॥
विराडग्रे समभवद् विराजोऽअधि पूरुषः।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्या सीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१३॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्याऽनारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४॥
सप्तास्यसन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ४

आधि-व्याधि निवारणविधान

१. अथर्ववेदीय ओषधि-भेषज, आधि-व्याधि समीक्षा

ओषधि

जो ओष (रस) को धारण करती है, वह 'ओषधि' है। रस-प्रधान पदार्थ (ओषधि) शरीर और मन के दोषों, विकारों को दूर करता है। दीपन, पाचन, ओज, बल को बढ़ाने वाली तथा लेपन, पान, मर्दन, बन्धन और भेदनपरक का नाम ओषधि है।

भेषज

हठयोग, राजयोग, साम्ययोग, सांख्ययोग, हवन, यज्ञ, जप, अनुष्ठान, उपासना, आराधना, व्रत, उपस्थान, मार्जन, अवसेचन, अभिमर्षण, अभिमंत्रण, रक्षाकरण्ड-बन्धन, मणिबन्धन, पुरोडाश, सर्षपप्रक्षेपण आदि मंत्रों द्वारा व्याधियों को दूर करने की क्रिया 'भेषज' है।

रोग

शरीरगत धातुओं को क्षीण करने वाले, नाडियों, प्राणों, इन्द्रियों को दुर्बल, शिथिल और निष्क्रिय बनाने वाले, प्रगति और अभ्युदय के बाधक 'उपताप' का नाम 'रोग' है।

आधि

सूक्ष्मतम, मानसिक उपताप का नाम 'आधि' है।

व्याधि

प्राण, मन, अन्तःकरण, चित्त और बौद्धिक उपताप को 'व्याधि' कहा जाता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। व्याधियाँ दो कारणों से उत्पन्न हुआ करती हैं : १. उत्पत्ति-दोष और पापजन्य कर्म से तथा २. मिथ्या आहार-विहार से।

जननदोष निमित्ता कर्मज व्याधियों के निवारण के लिए अथर्ववेदीय तंत्र-विधान है और मिथ्या आहार-विहारजन्य व्याधियों का निवारण अथर्ववेद की चरण-व्यूह शाखा (आयुर्वेद) से निदान और उपचार द्वारा किया जाता है।

अथर्ववेद में उल्लिखित प्रमुख व्याधियाँ

अथर्ववेद (८।२।६) में मुख्यतया पाँच प्रकार की मृत्युएँ बताई गई हैं। १. देवों (सदाचारी, विद्वानों) के शाप से, २. प्रेताग्नि से, ३. अराति (८।२।१२) (शत्रु) द्वारा, ४. निर्ऋति (दुर्गति) से होने वाली और ५. दीर्घकालीन रोगों से मृत्यु हुआ करती है।

इनके अतिरिक्त अथर्ववेद (८।२।२७, ११।६।१६) में छोटे-मोटे कारणों से १०१ प्रकार की मृत्युएँ बताई गई हैं, जिनमें सात प्रकार की प्रमुख मृत्युएँ ये हैं—

१. पिशाच—शरीर के अन्दर प्रविष्ट होकर मनुष्य के रस, रक्त, रुधिर के शोषक, भक्षक कीटाणु 'पिशाच' हैं। दीर्घकाल तक ये रोग के रूप में रहकर मृत्यु के कारण बनते हैं।

२. रक्षः, राक्षस—कपटपूर्ण, घातक व्यवहार करने वाले चोर, चुग़लखोर, दस्यु, आततायी, असामाजिक तत्त्व 'राक्षस' कहे जाते हैं। ये भी मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं।

३. दुर्भूत—अप्रस्तुत प्रशंसा करने वाले, चापलूस, मुँह देखा व्यवहार करने वाले, पिशुन, कपटी, धूर्त, स्वार्थी, अवसरवादी व्यक्ति 'दुर्भूतः' कहे गए हैं, ये भी मृत्यु के कारण बनते हैं।

४. तमः—क्रूर, कुचाली, दुर्मुख, लोभी, कामी, अज्ञानी व्यक्ति 'तमः' कहे गए हैं। ये भी मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं।

५. अभिचार—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और वशीकरण अभिचार कर्म करने वाले मांत्रिक भी मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं।

६. नाष्ट्राः—विषैले कीटाणु फैलाने वाले अस्त्र, प्रक्षेपास्त्र, संहारक, विनाशक, तरह-तरह के अस्त्र भी मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं।

७. शरीरं असवः मा हासिषुः—विविध प्रकार की अकाल मृत्युएँ हैं।

कर्मज व्याधियों की उत्पत्ति के कारण

अथर्ववेद पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों को व्याधियों का कारण मानकर उन्हें 'कर्मज व्याधि' कहता है। यहाँ पर कतिपय ऐसी व्याधियों और उनके कारणों को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनके कारण मनुष्य अगले जन्म या इसी जन्म में व्याधिग्रस्त होता है।

१. हरण, अपहरण, वाक्छल, हत्या, लूट आदि क्रूरकर्म करने वाले व्यक्तियों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का दूसरे जन्म में 'वंश नष्ट' हो जाता है। महारुद्र यज्ञ से ऐसी कर्मज व्याधि शान्ति होती है।

२. पूर्वजन्म में भ्रूणहत्या, अवैध गर्भपात, विष देकर शिशुओं की हत्या करने वाली स्त्रियाँ अगले जन्म में 'मृतवत्सा' होती हैं। अथर्ववेद काण्ड २।१० से जलाभिसेचन और हवन से यह व्याधि दूर होती है।

३. पूर्वजन्म में अवैध गर्भपात कराने वाली स्त्रियों को अगले जन्म में 'गर्भस्राव' का रोग होता है। अथर्ववेद काण्ड ११।६ तथा काण्ड २०।९६ से अभिसेचन, हवन करने से दोष दूर होता है।

४. पूर्वजन्म में पूज्य स्त्रियों से घृणा, ईर्ष्या रखने वाली स्त्री अगले जन्म में 'प्रदर रोगिणी' बनती है। अथर्ववेद काण्ड ८।६ तथा काण्ड २।३ से अभिसेचन, हवन से यह रोग दूर होता है।

५. पापाचरण, पिशुनता, कुटिलता का व्यवहार करने वाले लोगों को अगले जन्म में शक्ति क्षीण करने वाले, बुद्धि को मंद बनाने वाले, सन्तप्त करने वाले रोग हुआ करते हैं। अथर्ववेद काण्ड ९।८ से अभिसेचन और हवन से ये रोग दूर होते हैं।

६. बुद्धि, बल, पौरुष, पुरुषार्थ के रहते हुए माता, पिता, आचार्य, गुरु, सदाचारपरायण लोकोपकारी व्यक्ति की निन्दा सुनकर अथवा निन्द्य व्यक्ति की प्रशंसा सुनकर जो यथार्थ कहने में संकोच करते हैं, अगले जन्म में उनके कान में मवाद पैदा करने वाला रोग उत्पन्न होता है। अथर्ववेद काण्ड १७ (सम्पूर्ण) से सूर्योपस्थान तथा काण्ड ९।८ से जलावसेचन से यह रोग दूर होता है।

७. पूर्वजन्म में नमक की चोरी करने तथा किसी के उपकार के बदले अपकार करने से अगले जन्म में नासिका रोग (पीनस) होता है। अथर्ववेद काण्ड १३, सूक्त १, २ तथा काण्ड १७ सूक्त १ से सूर्योपस्थान करने से यह रोग दूर होता है।

८. झूठी गवाही देने से, झूठी शपथ लेने से, अकारण किसी को दुर्वचन बोलने से और मानसिक पीड़ा पहुँचाने से अगले जन्म में 'मुखपाक' रोग होता है। अथर्ववेद का० ९ सूक्त ८ से अभिसेचन, मार्जन, तथा का० १७।१ से सूर्योपस्थान करने से यह रोग नष्ट होता है।

९. धूर्तता, लम्पटता का व्यवहार करने से; गुरु, पिता, माता से द्रोह करने से अपस्मार (मृगी, मूर्च्छा) रोग होता है। 'सदसस्पति' मंत्र का विनियोगपूर्वक जप तथा हवन करने से यह रोग दूर होता है। विनियोग और मंत्र ये हैं—

विनियोग—ॐ अस्य सदस्पति मंत्रस्य मेधा तिथिः ऋषिः। सदसस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः। अपस्मार, मृगी, मूर्च्छारोग निवारणे जपे, होमे विनियोगः।

सदस्पति मंत्र

ॐ सदस्पतिमद्भुतंप्रियमिन्द्रस्यकाम्यं स निं मेधानथासिषम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१०. धर्म का ह्रास करने वाले कर्म करने से, गुरुपत्नी से सहवास करने से, सगोत्र की कन्या से विवाह करने से अथवा सगोत्र स्त्री से सहवास करने से अगले जन्म में भगन्दर रोग उत्पन्न होता है।

अथर्ववेद के बृहच्छान्ति गण, रौद्रगण के सूक्तों से मार्जन करने तथा अपांगण, अपामार्ग गण के सूक्तों से अभिसेचन करने और काण्ड १३ तथा काण्ड १७ से सूर्योपस्थान करने से यह रोग दूर होता है। प्रत्येक प्रयोग ९-९ दिन करना चाहिए।

११. जो व्यक्ति पूर्वजन्म में अपने गोत्र की स्त्री के साथ बलात्कार करता है अथवा जो स्त्री अपने-सगे भाई अथवा अपने गोत्र के भाई, चाचा के साथ सहवास करती है, उसे हृदय व्रण का रोग अगले जन्म में होता है। अथर्ववेद में इसका उपचार प्राजापत्य व्रत बताया गया है।

१२. मस्तक व्रण—यह रोग अपने से श्रेष्ठ, पूज्य स्त्री के साथ बलात्कार करने से होता है।

१३. नासिका व्रण—यह रोग विज्ञ, विद्वान् की पत्नी से बलात्कार करने पर होता है।

१४. आन्त्रक्षय, पक्षाघात—पूर्वजन्म में जल में डुबाकर, आग में जलाकर अथवा बाँध कर किसी प्राणी की हत्या करने से अगले जन्म में ये रोग होते हैं।

१५. भग व्रण—पूर्वजन्म में विधवा होकर, धर्म विरुद्ध अथवा धर्म का परित्याग कर किसी पुरुष से संभोग कराने से अगले जन्म में भगव्रण होता है और उसके साथ सहवास करने वाले पुरुष को लिङ्गेन्द्रिय जन्य विषाक्त रोग होते हैं।

१६. मधुमेह—मातृगामी, स्वसा (बहिन) गामी, भ्रातृभार्यागामी व्यक्ति मधुमेही होते हैं। स्वगोत्रीय बहिन से संभोगरत होने वाले इक्षुमेही, और चाण्डाली से सहवास करने वाले अगले जन्म में प्रमेह रोग से ग्रस्त होते हैं।

१७. शोथ रोग—पर्वत शिखर पर, नदी तट पर, वृक्ष की छाया में मलमूत्र त्याग करने से शोथ रोग होता है।

१८. वृषण व्याधि—अनजान में या जानबूझ कर पत्नी की बहिन से संभोग करने पर वृषण व्याधि (अण्डकोश-वृद्धि) होती है।

१९. गण्डमाला—गुरुद्रोही, मानसिक आघात करने वाले, गो सर्वघाती को रक्तप्रवाहिका नाडीजन्य रोग, रीढ़ और घुटनों के रोग तथा गुल्म रोग होते हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे लोगों को गण्डमाला, कण्ठमाला रोग भी होते हैं।

२०. कुष्ठ रोग—निरीह प्राणियों की हत्या मनोरंजन के लिए करने वाले, नितान्त स्वार्थी बन कर, इन्द्रिय लोलुप होकर अधम कर्म करने वाले कुष्ठ रोगी होते हैं। यह रोग पूर्वजन्म के कर्मों का फल होता है।

२१. शिरो रोग—शिर में कई प्रकार के साध्य, असाध्य रोग, द्रोहशील, दुःशील व्यक्तियों के अलावा शाप ग्रस्त लोगों को हुआ करते हैं।

२२. नेत्र रोग—पराई स्त्री का नग्न रूप देखने की तुच्छ प्रवृत्ति के व्यक्तियों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को तथा सूर्योन्मुख मल-मूत्र त्याग करने वाले और मिथ्याचारी, कामाचारी व्यक्तियों को कई प्रकार के नेत्र रोग हुआ करते हैं।

२३. कफरोग कृतघ्नी, समाजद्रोही, मानवता के विरुद्ध आचरण करने वाले और निन्दक व्यक्ति कफरोग से पीड़ित हुआ करते हैं।

२४. वातव्याधि—देव-प्रतिमा चुराने वाले, परधनापहरण करने वाले, खाद्य-पेय वस्तुओं में विष मिलाने वाले; खेत, खलिहान, मकान में आग लगाने वाले, खाद्यपदार्थों में मिलावट करने वाले व्यक्ति अनेक प्रकार की वात-व्याधियों तथा कुष्ठ से पीड़ित होते हैं।

२५. धनुर्वात—जो व्यक्ति कर, बल, छल से अभुक्त कन्या, ब्रह्मचारिणी, साध्वी स्त्री से अथवा पराई स्त्री से सहवास करते हैं; वे धनुर्वात, विषम ज्वर, शरीर-दाह, अंग-पीड़ा आदि रोगों से पीड़ित होकर अपमृत्यु को प्राप्त होते हैं।

२६. शूल रोग—निःस्पृह जनसेवी, शान्त, दान्त तपस्वी, श्रोत्रिय तथा दीन-हीन को बुलाकर जो उसका अपमान करते हैं, वे उदर शूल रोग से पीड़ित होते हैं।

२७. गुल्म रोग—जन-द्रोही, समाज-द्रोही, गुरुजन-द्रोही वातगुल्म रोग से पीड़ित होते हैं।

२८. जलोदर रोग—ईश्वर, ईश्वरीय शक्तियों, धर्म-सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की अवहेलना करने वाले व्यक्ति वरुण पाश से आबद्ध होकर जलोदर रोग से पीड़ित होते हैं।

२९. यकृत, प्लीहा रोग—जो लोग विवश-कन्या अथवा अनाथ स्त्री को पथ-भ्रष्ट करते हैं। सेवक या स्वामी अथवा शिक्षक को प्रताड़ित अपमानित करते हैं—वे यकृत, प्लीहा रोग से पीड़ित होते हैं।

३०. पाण्डु रोग—विश्वासघाती लोग पाण्डु रोग से पीडित होते हैं।

३१. क्षय रोग—पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में इन्द्रिय लोलुप, कामान्ध, अगम्या, गमन करने वाले, ईर्ष्यालु, दुश्चिन्ता परायण व्यक्ति क्षय रोगी होते हैं।

उपर्युक्त रोग व्याधियाँ हैं। अथर्ववेद इन्हें कर्मज व्याधि अर्थात् किए गए कर्मों से उत्पन्न व्याधि मानता है। व्याधियों के ये निदान आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी आदि प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों से भिन्न कर्म पर आधारित हैं, जो पूर्वजन्म तथा इस जन्म के कर्म के परिणाम हैं। अथर्ववेदीय कर्मज व्याधियों के ये निदान धर्म या टोटम अथवा अन्धश्रद्धा से प्रभावित न होकर विज्ञान सम्मत हैं। यहाँ पर 'कर्मवाद' सिद्धान्त प्रमुखता रखता है। कर्म मन और बुद्धि से प्रेरित और प्रभावित हुआ करते हैं। पूर्वजन्म का मन दूसरे जन्म में भी प्राप्त हुआ करता है और वह मन बुद्धि को प्रेरित करता है। बुद्धि कर्म करने को प्रेरित करती है और किए गए कर्म से उत्पन्न शारीरिक रोग कर्मज व्याधियाँ बन कर मनुष्य को पीडित किया करते हैं। अथर्ववेद की जलावसेचन क्रिया से पूर्वजन्म, इस जन्म के पापकर्म, शाप और उत्पन्न व्याधियाँ बिना दवा के दूर हो जाती हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुःस्वप्न

अथर्ववेद दुःस्वप्नों को रोग का कारण मानता है। दुःस्वप्नों से रोगी-मनुष्य के रोग की परीक्षा की जाती है। स्वप्नों से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक स्वस्थता-अस्वस्थता का निदान होता है। स्वप्नों, दुःस्वप्नों से मनुष्य के शुभ-अशुभ विचारों का परिचय मिलता है। अथर्ववेद दुःस्वप्नों को रोगो का बीज मानता है। अथर्ववेद काण्ड १६ सूक्त ५ की पहली ऋचा में दुःस्वप्नों के निम्नांकित कारण बताए गए हैं—

१. ग्राह्या, २. निर्ऋत्याः, ३. अभूत्याः, ४. निर्भूत्याः, ५. पराभूत्याः, ६. देवजामीनां पुत्रः स्वप्नः।

१. ग्राही—ऐसा भयानक रोग जो शरीर में सहसा उत्पन्न होकर अतीव कष्ट देता हुआ शरीर का अंत कर देता है, ऐसे रोग के ग्राही कारण दुःस्वप्न होते हैं।

२. निर्ऋतिः—दरिद्रता, दुर्गति, अवनति, अधःपतन, क्षीणता और शरीर को निष्क्रिय बना देने वाले रोगों के कारण नैर्ऋतिः होते हैं।

३. अभूतिः—व्यक्ति को निराश्रित, ऐश्वर्यहीन बना देने वाले रोगों के कारण अभूति होती है।

४. निर्भूतिः—निर्धनता, पलायनपरता, संकटापन्न स्थिति, विपत्ति पर विपत्ति का कारण निर्भूति होती है।

५. पराभूति—पराभव, पराजय, पलायन, परतन्त्रता, दासता, परवशता का कारण पराभूति होती है।

६. देवजामी—इन्द्रिय दौर्बल्य, क्षीणता, विचारों की अपवित्रता और अविवेक का कारण देवजामी होता है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि जिन स्वप्नों से हमें भय होता है, उन स्वप्नों के कारण दूर हों—

यस्मात् दुःस्वप्न्यात् अभैष्म तत् अपगच्छतु।

दुःस्वप्न रोगों और विपत्तियों के बीज हैं अथवा होने वाले रोगों, आने वाले संकटों के पूर्व परिचायक हैं। दुःस्वप्नों और उनके कारणों को दूर करने के लिए अथर्ववेद के दुःस्वप्ननाशन गण के सूक्तों से जलावसेचन, हवन करने से दुःस्वप्न और आने वाले रोग, दोष, संकट टल जाते हैं।

व्याधियों को दूर करने में हवन बहुत उपयोगी विधान है। व्याधि दूर करने वाले मंत्रों से हवन करके हवन के धुएँ से शरीर में अभिमर्षण करने से रोग शीघ्र दूर होते हैं।

मानसिक, शारीरिक आधि-व्याधि, महाव्याधि, अपमृत्यु, अकाल मृत्यु के निवारण के लिए, आरोग्य और दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए अथर्ववेद के आयुष्यगण के सूक्तों, मंत्रों से जलावसेचन, हवन करने के साथ अथर्ववेद के शर्म-वर्मगण, स्वस्त्ययन गण और अभय गण के सूक्तों से जलाभिसेचन, हवन करने का विधान अत्यन्त फलप्रद है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कतिपय ऐसी व्याधियाँ होतीं हैं, जो दुर्निवार और लाइलाज समझी जाती हैं। कोई औषधि फ़ायदा नहीं करती है और न रोग का ठीक ढंग से निदान हो पाता है। ऐसी व्याधियाँ दृष्ट, अदृष्ट, राक्षस, पिशाच (कीटाणु), क्रूर दृष्टिपात (नज़र, टोना) से उत्पन्न हुआ करती हैं। इन्हें 'अरिष्ट' कहा जाता है। ऐसे अरिष्टों के निवारण के लिए ओषधि नहीं, भैषज्य-विधान अथर्ववेद में बताया गया है। जैसे—

सफेद फूल के मंदार (श्वेतार्क) के फल की रुई के धागे से श्वेतार्क की जड़ बाँधकर काण्ड १ सूक्त २८ (उपप्रागाद०) से अभिमंत्रित कर रोगी को पहना देने से अरिष्ट दूर हो जाता है।

कुछ व्याधियाँ पूर्वजन्म के शाप के कारण अथवा इस जन्म में प्राप्त शाप से हुआ करती हैं। ऐसी व्याधियों के भी उचित निदान नहीं हो पाते हैं और न ओषधियाँ कारगर होती हैं। यदि प्रबुद्ध आथर्वण व्यक्ति यह समझ लेता है कि यह व्याधि शाप के कारण है, तो शाप-जन्य व्याधि अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त ७ से जलावसेचन और हवन करने से ३ दिन में दूर हो जाती है। व्याधियों को दूर करने के लिए जलावसेचन, जप, उपस्थान, हवन, रक्षाकरण्ड, मणिबन्धन—ये मुख्य विधान अथर्ववेद में बताए गए हैं। इनके अतिरिक्त आधि-व्याधि दूर करने के अनेकानेक तंत्र अथर्ववेद में हैं। जैसे—

१. ब्रह्मग्रह, प्रेतग्रह, पिशाचग्रह आदि से उत्पन्न भय, उन्माद, हृदय-पीड़ा, यकृत-पीड़ा आदि आधि-व्याधि के निवारण के लिए सदंपुष्पा (सदाबहार, सदाफूली) के पुष्प 'शं नो देवी पृश्निपर्णी०' (अ० २।२५) तथा 'तान्त्सत्यौजा' (४।३६) से अभिमंत्रित कर ताँबे के ताबीज में रखकर रोगी को पहना देने के बाद 'आ पश्यति०' (४।२०) से जलावसेचन करने से तुरन्त बाधा का निवारण हो जाता है।

२. गुंजा (लाल या सफेद घुंघची) का रवि-पुष्य योग में या शुक्र-रोहिणी योग अथवा कृष्णपक्ष की अष्टमी और हस्त नक्षत्र के योग में धूप, दीप देकर पूजन कर उसे उखाड़ लिया जाए। तत्पश्चात् घुंघची के बीज निकाल कर तथा जड़ को अलग करके बीज और जड़ को गाय के दूध से धोकर रख लिया जाए। इसके बाद 'इयं वीरुन्मधु जाता' (अथर्व० १।३४) से अभिमंत्रित कर पवित्र स्थान पर ताम्रपात्र में रख दिया जाए। ब्रह्मराक्षस, प्रेत, पिशाच-ग्रह-गृहीत या उन्माद ग्रस्त, असाध्य उदर विकार, यकृत विकार ग्रस्त रोगी के गले में या दाहिनी भुजा में लाल रेशमी वस्त्र की थैली बना कर गुंजा फल और गुंजा मूल को भर कर सिल दिया जाए और लाल रेशमी डोरे से बाँध दिया जाय तो रोग दूर हो जाता है। गुंजा की जड़ को घिस कर चाटने से विषधर काले नाग का विष उतर जाता है।

३. अभिमंत्रित गुंजा फल को मुँह के अन्दर रख कर सभा, संसद में जाकर जो विचार, प्रस्ताव रखे; वह संसद को स्वीकार होंगे।

४. गुंजा फल और जड़ को ताँबे के ताबीज में भर कर यदि बन्ध्या स्त्री कमर में बाँधे, तो निश्चय ही वह पुत्रवती होती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५. गुंजा फल को घिस कर आँखों में आँजने से आँखों में सम्मोहन शक्ति पैदा होती है।

६. अभिमंत्रित गुंजा फल और गुंजा जड़ को गोरोचन और लौंग के साथ घिस कर शत्रु या विद्वेषी का नाम भोज पत्र पर लिखे तो तीन दिन में शत्रु मित्र बन जाता है।

७. बेल पत्र के रस में गुंजा फल, गुंजा मूल घिस कर अंजन की तरह नेत्रों में लगाकर प्रेत-पिशाच ग्रस्त व्यक्ति की ओर देखे, तो प्रेत उसे छोड़ कर भाग जाते हैं।

८. गोमूत्र के साथ गुंजा फल को घिस कर पीने से चर्म रोग, कुष्ठ रोग दूर होते हैं।

९. किसी आदमी की बेहोशी न दूर होती हो, तो अभिमंत्रित गुंजा फल को गुलाब जल में घिस कर नाभि में लेप करने से ३ घंटे के अन्दर होश आ जाता है।

१०. इस यंत्र को लाल रंग के भोज पत्र पर हुलहुल की शाखा की लेखनी और हुलहुल की पत्तियों के रस से लिख कर अथर्ववेद कां० ७ सूक्त १२ (१३) के 'यद्वो मनः परागतं०' चौथे मंत्र से प्राण प्रतिष्ठा करके तांबे के ताबीज में भर कर नीले रंग के रेशमी धागे में या सन के धागे में पिरो कर गले में धारण करने से एकान्तरा, तिजारी, चौथिया और जूड़ी बुखार दूर हो जाता है।

७	२	८
८	६	४
३	८	५

११. हर प्रकार की आधि-व्याधि और ऐसे रोग जिनका निदान न मिल रहा हो अथवा कोई औषधि लाभ न कर रही हो, तो मदार (आक) या एरण्ड (रेंड) के फूल लाकर उन पर सिन्दूर लगाए। तदनन्तर अथर्ववेद कां० ९ सूक्त ८ 'शीर्षक्ति शीर्षामयं०' के प्रत्येक मंत्र के आदि में 'ॐ श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' बीज मंत्र लगाकर मंत्रों को पढ़ते हुए रोगी के शिर से पैर तक फूल उतारे और फिर उन फूलों को रोगी के घर के बाईं ओर गाड़ दे, तो समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

१२. प्रत्येक नक्षत्र का एक वृक्ष और कई ओषधियाँ हुआ करती हैं। अपने जन्म नक्षत्र के वृक्ष को नित्य स्नान कराने से आयु, आरोग्य, यश और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। अपने जन्म नक्षत्र के वृक्ष के नीचे बैठ कर जो भी उपासना, आराधना या साधना की जाए, वह पूर्ण रूप से सफल होती है। अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त ७ में 'चित्राणिसाकं०' इत्यादि मंत्रों द्वारा नक्षत्रों के वृक्षों के फल बताए गए हैं। नक्षत्रों के वृक्ष इस प्रकार हैं—

नक्षत्र	वृक्ष	नक्षत्र	वृक्ष
१. अश्विनी	कुचिला	५. मृगशिरा	खैर, कत्था
२. भरणी	आँवला	६. आर्द्रा	अगर
३. कृत्तिका	गूलर	७. पुनर्वसु	बाँस
४. रोहिणी	जामुन	८. पुष्य	पीपल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नक्षत्र	वृक्ष	नक्षत्र	वृक्ष
९. अश्लेषा	चमेली	१८. ज्येष्ठा	सेमर, सेमरमूल
१०. मघा	वरगद, बड़	१९. पूर्वाषाढ़ा	वेंत
११. पूर्वाफाल्गुनी	ढाक, पलाश	२०. उत्तराषाढ़ा	कटहल
१२. उत्तराफाल्गुनी	पिलखन	२१. श्रवण	मदार, आक
१३. हस्त	जई, जाई	२२. धनिष्ठा	शमी, छौंकर
१४. चित्रा	वेल, वेलपत्र	२३. शतभिषा	कदम्ब
१५. स्वाती	अर्जुन, वृक्षछाल	२४. पूर्वाभाद्रपदा	आम
१६. विशाखा	बबूल	२५. उत्तराभाद्रपदा	नीम
१७. अनुराधा	नागकेशर	२६. रेवती	महुआ

अथर्ववेद के मतानुसार अपने जन्म-नक्षत्र के वृक्ष या पौधे की सेवा करनी चाहिए। काटने, तोड़ने, उखाड़ने से आयु, यश घटता है—आपदाएँ घेरती हैं।

१३. त्रिलौह का कड़ा (चाँदी १६, ताँवा १२ और सोना १० भाग के अनुपात से) वनवाकर किसी मास के शुक्ल पक्ष में गुरुवार या रविवार को पुष्य नक्षत्र आने पर अथर्ववेद के रक्षोहण मंत्र (कां० ८, सूक्त ३ और ४) से अभिमंत्रित कर दाहिने हाथ में धारण करने से आने वाले संकटों, रोगों, घातों, अपघातों से रक्षा होती है और कृत्या-अभिचार से उत्पन्न पीड़ाओं एवं दारिद्रय, दैन्य का निवारण होकर आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

१४. कुमारी कन्या के हाथ से काते गए सूत से 'सहदेवी' की जड़ को बाँधकर कन्या के द्वारा ही दाहिने हाथ में बँधाने से भूतोन्माद, भूत-ज्वर शान्त हो जाता है।

१५. बालकों को कुदृष्टि, बुरी नजर, टोना लग जाने पर पपीते के बीजों को ताबीज में भर कर गले में पहना देने से नजर, दीठ, टोना दूर हो जाते हैं।

१६. यदि कोई व्यक्ति वात-व्याधि, ज्वरातिसार, मूत्रातिसार रोग से पीड़ित हो, तो उसकी कमर में मूंज की नई डोरी बाँध कर गंगा जी की रेणुका (मिट्टी) अथवा बाँबी (दीमक की) की मिट्टी घोल कर अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त २ के मंत्रों से अभिमंत्रित कर मिट्टी का घोल पिला देने से रोग दूर हो जाता है।

१७. क्षय रोग, कुष्ठ रोग, अर्श, भगन्दर आदि वंशपरंपरा से होने वाले संक्रामक रोगों को अथर्ववेद में क्षेत्रिय रोग कहा गया है। क्षेत्रिय का तात्पर्य खानदानी समझना चाहिए। ऐसे असाध्य क्षेत्रिय रोगों को दूर करने के लिए कर्त्ता अपने दाहिने हाथ में हरिण का सींग लेकर रोगी के सामने बैठ कर पहले यह संकल्प मंत्र पढ़ता है—

नातिदूरस्थो ये एकश्छदिरिव प्रकाशमानो भवति।
तेनाऽहं तवाङ्गेभ्यः क्षेत्रियं अपसारयामि॥

इसके बाद वह ताम्रपात्र में जल भर कर हरिण-शृङ्ग से जल को हिलाते हुए यह अभिमंत्रण-संकल्प मंत्र (३।७) पढ़ता है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपात् सर्वां दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ।।

फिर इसी मंत्र को पढ़ते हुए कर्त्ता हरिण-शृङ्ग से अभिमंत्रित जल को रोगी को पिला देता है। मात्र इतनी प्रक्रिया से धीरे-धीरे रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

१८. इसी तरह केवल मनोवल द्वारा कास-श्वास रोग दूर किया जाता है। संकल्प-भावना द्वारा मंत्र पढ़ते हुए कास-श्वास रोग के प्रति यही भावना मन में रखे कि जैसे मन के विचार तीव्र वेग से उड़ा करते हैं, जैसे धनुष से छूटा हुआ वाण तीव्र वेग से भागता है और जैसे सूर्य की किरणें तीव्र वेग से उड़ती हैं, उसी प्रकार हे कास रोग, तू शीघ्र ही उड़न-छू हो जा, इस रोगी को मुक्ति दे।

यदि रोगी स्वयं भावनापूर्वक मंत्र पढ़े तो उसे 'इस रोगी को' की जगह पर 'मुझको' कहना चाहिए।

मंत्र

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ।।१।।
यथा वाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पतपृथिव्या अनु संवतम् ।।२ ।
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।।३।।

—अथर्व० ६।१०५

इस मंत्र को ४१ दिन तक भावनापूर्वक जप करने से कास रोग दूर हो जाता है।

१९. अथर्ववेद १।१२।३ तथा काण्ड ६, सूक्त १०५ में सूखी खांसी, कुकुर खांसी, गीली खांसी के लिए उपचार वताया गया है। मन की संकल्प शक्ति से गीली खांसी ठीक होती है तथा रेह मिट्टी और समुद्रफेन को हर प्रकार की खांसी के लिए महौषधि बताया गया है।

२०. हर साध्य, असाध्य रोग के शमन के लिए अच्युत, अनन्त और गोविन्द भगवान् के तीन नाम महौषधि हैं। अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः—इन तीन नामों का जप करना चाहिए। इनसे अभिमंत्रित गंगा जल, तुलसी दल पान करना चाहिए और इन्हीं नामों से हवन करना चाहिए।

रविवार को तथा अष्टमी तिथि को इन्हीं तीन नामों का जप करते हुए रोगी को स्नान कराने से रोग दूर हो जाते हैं।

घी, गिलोय (गुरिच, गुड़ूची), काले तिल, दूर्वा से वट वृक्ष की समिधाओं में अच्युताय नमः स्वाहा, अनन्ताय नमः स्वाहा, गोविन्दाय नमः स्वाहा—इस नाम-मंत्र से ११०० आहुतियाँ देने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बेल के वृक्ष अथवा पीपल के वृक्ष को स्पर्श करते हुए इन तीन नामों का ११००० नित्य जप करने या कराने से असाध्य रोग, अपमृत्यु से मुक्ति मिलती है।

मृगी, मूर्च्छा, हिस्टीरिया रोग दूर करने के लिए इन तीन नामों से पीपल की समिधा और दूर्वा से १००० आहुतियाँ नित्यप्रति ११ दिन तक देनी चाहिए।

२१. 'हरिः ओम् तत्सत्' यह मंत्र सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद माना गया है। इसका नित्य जप करने से आरोग्य, आयुष्य, ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

२. जलावसेचन : रक्षाकरण्ड : ओषधि-प्रयोग

वेदों में सिद्धि और साधना-संबंधी चमत्कार-सूचक अनेक साधन और प्रयोग मिलते हैं, किन्तु अथर्ववेद तो आदि से अन्त तक चमत्कारों, सिद्धियों से परिपूर्ण वेद है। इस वेद में अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक विधान हैं। जैसे—

१. हस्ताभिमर्ष (हाथ से पाँस देना) मात्र से असाध्य रोगों, अरिष्टों का निवारण हो जाता है (काण्ड ४ सू० १३)। शरीर या शरीर के किसी अंग में उत्पन्न व्याधि जो लाइलाज मान ली गई हो, अथवा जिसका कोई निदान न हो सका हो, उसे जड़ से दूर करने के लिए पीड़ित अंग को मूँज की पतली रस्सी से बाँध कर जलावसेचन[1] करते हुए मंत्र पढ़ने से अधिक से अधिक दस दिन में असाध्य व्याधि का निवारण हो जाता है (काण्ड १ सू० २)। दिव्य दृष्टि प्राप्त करने के लिए योगबल, तपोबल, साधनाबल का सहारा लिए बिना मंत्र पढ़ते हुए अपने मूर्द्धा में कुश-अपामार्ग से जलावसेचन करने से तीन वर्ष में दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है (कां० ४ सू० २०)। भयंकर से भयंकर कालकूट (विष) का निवारण केवल जलावसेचन से हो जाता है (कां० ४ सूक्त ७ तथा कां० ७ सूक्त ५६)। किसी को साँप ने डस लिया हो, तो सर्प-विष जलावसेचन से एक घंटे में दूर हो जाता है (कां० ५ सू० १३ एवं कां० ६ सूक्त १२ और कां० १० सू० ४)। भयंकर पागलपन, उन्माद रोग जलाभिसेचन से तीन दिन में दूर होता है (कां० २ सू० ९ तथा कां० ९ सू० ८)। किसी पर मारण प्रयोग किया गया हो, अथवा मूठ चलाई गई हो, तो उसका निवारण जलावसेचन से तुरंत हो जाता है (कां० ५ सू० १४ तथा कां० ५ सू० ३१)। किसी क्रोधी, क्रूर तांत्रिक या अभिचारक द्वारा कभी-कभी किसी को शाप दे दिया जाता है। ऐसे शाप का निवारण होने के साथ शाप देने वाले का विनाश जलावसेचन

---

१. भाद्रपद की अमावस्या को उत्पाटित कुश, रवि-पुष्य योग में उत्पाटित अपामार्ग के संयोग से अवसेचन करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से हो जाता है (कां० ६, सूक्त ३७)। पूर्वजन्म अथवा इस जन्म में जाने अनजाने ऐसे कर्म हो जाते हैं, जिनसे आदमी शापग्रस्त हो जाता है और दुःखी, दरिद्र, असफल बनता है। ऐसे शापों का निवारण जलावसेचन मात्र से तीन दिन में हो जाता है (कां० २ सू० ७)।

२. जलावसेचन के अतिरिक्त रक्षाकरण्ड (गंडा) भी अत्यन्त उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध हैं। वेदों में अग्नि, प्रधान देवता है। अग्नि को आयुस्वरूप कहा गया है। अथर्ववेद में दीर्घायुष्य, सुस्वास्थ्य, मृत्यु-भय निवारण, वीर्य, वर्चस्व, यश की वृद्धि के लिए जहाँ जलावसेचन और हवन के विधान हैं, वहीं रक्षाकरण्ड बाँधने का सरलतम विधान है। रक्षाकरण्ड सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा और शुद्ध रेशमी धागा आदि कई प्रकार के प्रयोजन के अनुसार बनते हैं। इन्हें गंगाजल या नदी-प्रवाह के जल से कुश-अपामार्ग से अभिमंत्रित कर पहना देने से रोग-दोष, आधि-व्याधि, दुर्भाग्य, दुःख, क्लेश आदि दूर हो जाते हैं (कां २ सू० २८, कां ३ सू० ११, कां० ४ सू० ९-१०, कां० ७ सू० ५३, कां० ८ सू० १, कां० १९ सू० २६)। अथर्ववेद (कां० १, सू० ३५) में बताया गया है कि शतानीक को दाक्षायण ने सुवर्ण निर्मित रक्षा-सूत्र बाँधा था। हमारा अनुभव है कि चाँदी और सीसा (Lead) बराबर तौल में लेकर कड़ा बनवाकर पहनने से आगन्तुक रोगों का भय नहीं रहता है और क्षेत्रिय (वंश-परंपरागत) रोगों तथा असाध्य रोगों का निवारण होता है। रेशमी धागा में प्रयोजनीय मंत्रों को पढ़ते हुए नौ गाँठें देकर पहना देने से आधि-व्याधि, भय, बाधाएँ दूर हो जाती हैं। विशेषता यह है कि अथर्ववेदीय प्रयोगों में रविवार, मंगलवार, अष्टमी, चतुर्थी आदि दिन, तिथियों का कोई बन्धन नहीं है।

३. भूत कीटाणु रोग तथा व्याधियों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में औषधि प्रयोग बताए गए हैं। जैसे पुराना से पुराना साइटिका रोग महारण की जड़ या शाखा का एक टुकड़ा रक्षोघ्न (कां० ८, सू० ३) मंत्र से अभिमंत्रित कर जिस अंग में साइटिका हो, बाँध देने से ३ दिन में सदा के लिए आराम हो जाता है। तीस वर्ष पुराना साइटिका दूर होते देखा गया है। उच्च रक्तचाप की बीमारी अथवा ब्रेन हैमरेज हो जाने की शंका होने पर भूतजटा (जटामांसी) दो तोला लेकर पाव भर पानी में पकाए, चौथाई पानी रह जाने पर हल्का गर्म काढ़ा सुबह-शाम तीन दिन पीने से पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है।

जलावसेचन-विधि

१. कर्त्ता मन, वचन और शरीर से पवित्र होकर मृगचर्म या कुशासन पर पद्मासन या सिद्धासन अथवा सुखासन से बैठे और जिस पर जलावसेचन करना हो उसे ऊन के आसन अथवा कम्बल पर अपने सामने बैठाए। यदि कोई व्यक्ति अशक्त हो, बैठ न सके, तो उसे पलंग पर ही लेटे रहने देना चाहिए।

आचार्य (कर्त्ता) सर्वप्रथम 'ॐ नमो सर्वात्मने गुरवे नमः, ॐ नमो ब्रह्मवेदाय,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ अथर्ववेदाय नमः, ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्' उच्चारण करते हुए ध्यान करे फिर ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः पढ़ कर आचमन करे। तदनन्तर ताम्रपात्र में वट, शमी, पलाश की लकड़ियाँ और दर्भ (कुश), अपामार्ग छोड़ कर गंगा जल या किसी प्रवाहयुक्त नदी का जल अथवा कूप जल भर कर उसे निम्नांकित मंत्र से कुश-अपामार्ग से स्पर्श कराते हुए अभिमंत्रित करे।

ॐ शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः॥

२. इसके बाद पीड़ित व्यक्ति या रोगी से कहे कि वह 'नमः शिवाय' का मन ही मन जप करे अथवा वह जिस सम्प्रदाय से दीक्षित हो या जिस धर्म का हो, अपने सम्प्रदाय या धर्म के अनुकूल प्रार्थना करे। यदि कोई व्यक्ति अनीश्वरवादी है, तो उसे 'सोऽहं हंसः' कहते रहने का निर्देश देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति कुछ न जपना चाहे, न प्रार्थना करना चाहे, तो भी कोई हर्ज नहीं, वह बैठा अवश्य रहे।

३. आचार्य अम्बादिगण सूक्तों से कुश-अपामार्ग और अभिमंत्रित शान्ति जल से पीड़ित व्यक्ति पर जलावसेचन करे।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्यद्वितीय अपांसूक्तस्य सिन्धु-द्वीपऋषिः। आपः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। अमुकस्य (रोगी का षष्ठयन्त नाम जैसे रुद्रस्य) पाप-शाप-ताप-रोग-दोष, दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे, अभ्युदयार्थे, अभीप्सि-तार्थे जलावसेचने विनियोगः।

जलावसेचन मंत्र

(१)

ॐ शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्त्यूत्स्याः।
शं त सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः॥१॥
शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः॥२॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रागम्भीरेअपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि॥३॥
अपामहादिव्याऽनामपां स्रोतस्यानाऽम्।
अपामह प्र णेजनेऽश्वाभवथ वाजिनः॥४॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः।
यथैव तृप्यते मयस्तात आ दत्त भेषजीः॥५॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य पंचम सूक्तस्य सिन्धुद्वीपऋषिः। (अपांनपात् सोमः) आपः देवता। गायत्री, वर्द्धमाना छन्दसी। (अमुकस्य) पाप-शाप-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ताप, रोग-दोष, भय-बाधा निवारणे, दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे अभ्युदयार्थे, सतत मङ्गलार्थे च जलावसेचने विनियोगः ।

(२)

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः । उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीचर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४॥

(३)

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं यो रभिस्रवन्तु नः ॥१॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्व शंभुवम् ॥२॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥
शं नः खनित्रिमा आपः शमु या कुम्भ अमृताः
शिवानः सन्तुवार्षिकी ॥४॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य त्रयस्त्रिंशत् सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः । (चन्द्रमाः) आपः देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । (अमुकस्य) दुरित-दुःख-दैन्य-दारिद्र्य निवारणे, शारीरिक, मानसिक रोगनाशने, भूत-प्रेत-पिशाच बाधा विनाशने, सुख, सौभाग्य, आरोग्य वृद्धयर्थे जलावसेचने विनियोगः ।

(४)

ॐ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य द्वाविंशत् सूक्तस्य शन्तान्तिः ऋषिः । आदित्यरश्मिः मरुतः देवते । त्रिष्टुप्, चतुष्पदाभुरिग्जगती छन्दसी । (अमुकस्य) आधि-व्याधि, असाध्य रोग निवारणे होमे विनियोगः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हवन मंत्र

(५)

ॐ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
न आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिधृतेन पृथिवीं व्यूऽदुः ॥१॥
पयस्वतीः कृणुथाय ओषधीः शिवा यदेजथाः मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२॥
उदप्रुतौ मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येऽव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य त्रयोविंशति सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः । आपः देवता । अनुष्टुप्, त्रिपदा गायत्री, परोष्णिक् छन्दांसि । (अमुकस्य) दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे, अभ्युदयार्थे, अभिवृद्धयर्थे होमे, विनियोगः ।

(६)

ॐ सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥२॥
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥३॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य चतुर्विंशति सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः । आपः देवता । अनुष्टुप् छन्दः । (अमुकस्य) त्रिविध तापनाशने, पाशादि विमोचने, अभ्युदयार्थे, शान्ति पुष्टि कर्मणि, होमे विनियोगः ।

(७)

ॐ हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन्हृद्दद्योत भेषजम् ॥१॥
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्यो प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्यः स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य एकपञ्चाशत सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः । आपः वरुणः देवते । त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती छन्दांसि । (अमुकस्य) पाप, शाप, ताप, रोग, दोष, भय, बाधा निवारणे, सतत मङ्गलार्थे, अभिवृद्धयर्थे च होमे विनियोगः ।

(८)

ॐ वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।।२।।
यत्किं चेदं वरुण देव्यै जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरन्ति ।
अचित्या चेत्तव धर्मा युयोषिम मा नस्तस्मादेनसो देवरीरिषः ।।३।।

३. रक्षाकरण्ड [रक्षा-सूत्र, गण्डा]

दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए; ग्रहदोष, भूतकीटाणु रोग निवारण के लिए; दुरित, दुर्भाग्यजन्य बाधाओं के विनाश के लिए; दुःस्वप्न, भय, बाधा-निवारण के लिए; टोना, टोटका, नज़र, दीठ दूर करने के लिए; अज्ञात कारणों से उत्पन्न भय, चिन्ता, ग्लानि तथा असफलताओं को दूर करने के लिए एवं रोग-दोष के निवारण के लिए; शत्रु बाधा से रक्षित रहने के लिए रक्षा-सूत्र बहुत ही उपयोगी और सफल साधन हैं।

रक्षा-सूत्र मुख्यतः भय और बाधा तथा अपमृत्यु निवारण के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। भय और बाधा के अनेकानेक कारण होते हैं और अपमृत्यु के भी विविध रूप और कारण होते हैं। रोगों और दोषों के निवारण में जो रोग और दोष मानसिक होते हैं, उनको दूर करने में रक्षाकरण्ड अत्यन्त सफल होते हैं।

रक्षाकरण्ड को ही जन-भाषा में 'गण्डा' कहा जाता है। योद्धा, मल्ल, संगीताचार्य जब किसी को शिष्य बनाते हैं, तो उसे रक्षाकरण्ड (गण्डा) पहना कर दीक्षित शिष्य घोषित करते हैं। बच्चा जब पैदा होता है, तो जात-संस्कार के बाद उसे ऊन का रक्षाकरण्ड कमर में बाँध दिया जाता है। देवोत्थान एकादशी (कार्तिक शुक्ल एकादशी) को हिन्दू गृहस्थ-परिवार के प्रत्येक सदस्य को ऊन का बना हुआ रक्षाकरण्ड पहनाया जाता है। श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन रक्षाबन्धन (राखी बाँधने) की पवित्र परंपरा का मूल उद्गम अथर्ववेद ही है। प्राचीन काल में योद्धा जब युद्ध करने के लिए प्रस्थान करता था, तो पुरोहित उसके माथे में मांगलिक तिलक लगा कर दाहिनी भुजा में रक्षाकरण्ड बाँधता था।

रक्षाकरण्ड बाँधने की परंपरा देव जाति, असुर जाति, मनुष्य, दानव, दैत्य आदि सभी जातियों के लोगों में पुरातन काल में विद्यमान रही है और अब तक उसकी परंपरा अविच्छिन्न है। हिन्दू जाति के अलावा मुसलमान, यहूदी, पारसी आदि सभी सभ्य जातियों में तथा गिरिजनों, आदिवासियों में भी यह परंपरा अक्षुण्ण है।

रक्षाकरण्ड सोने के तारों के अलावा सोना, चाँदी, ताँबा आदि त्रिधातुओं, पंच धातुओं और अष्ट धातुओं के मिश्रण से बनाए जाने के विधान हैं। रक्षाकरण्ड 'कड़ा' के रूप में भी बनाए जाते हैं। नाथ सम्प्रदाय एवं नागा सम्प्रदाय के सन्त तथा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिख-सम्प्रदाय में दीक्षित सर्वसाधारण जन कड़ा पहनते हैं। नाथ एवं नागा सम्प्रदाय के सन्तों के 'कड़ों' से भिन्न सिख-सम्प्रदाय के लोग लोहे के कड़े पहनते हैं। धातुओं से निर्मित रक्षाकरण्डों के अतिरिक्त ऊन, रेशम, सन, सूत के भी रक्षाकरण्ड बनते हैं। वन्यलता विशेष, वृक्ष विशेष की जड़ों, फलों, पत्तियों और फूलों के भी रक्षाकरण्ड विशेष प्रयोजनों के लिए बनाए जाते हैं।

अथर्ववेदीय रक्षाकरण्ड अनेक रूपों में जन-जीवन में अभिव्याप्त है। और जहाँ तक हमारा अनुभव है—रक्षा-सूत्र कभी विफल नहीं होता है, अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होता है।

अथर्ववेदीय रक्षाकरण्ड बाँधने के भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न साधन और भिन्न-भिन्न विधान हैं, किन्तु सर्वसाधारण के लाभ और उपयोग को दृष्टि-गत रखते हुए हम यहाँ पर उन्हीं रक्षाकरण्डों के बाँधने की विधि लिख रहे हैं, जो सर्वजन सुलभ होने के साथ फलप्रद हैं।

रक्षाकरण्ड—रक्षोहण मंत्र विधि

यदि शुद्ध रेशम का धागा मिल सके तो अत्युत्तम, अन्यथा जो भी डोरा मिले प्रयोग किया जाए। लाल रंग या काले रंग का डोरा लेकर शुद्ध जल से कुश-अपामार्ग से 'आपो हिष्ठामयोभुवः···' अथर्ववेद, काण्ड १, सूक्त ५ के ४ मंत्रों से जल द्वारा डोरा का मार्जन करे (ये मंत्र पृष्ठ ११० पर हैं)। इसके बाद निम्नांकित रक्षोहण मंत्रों से डोरा को कुश-अपामार्ग और जल से अभिमंत्रित कर रक्षोहण सूक्त में जितने मंत्र हैं, प्रत्येक मंत्र को पढ़ते हुए उतनी गाँठें डोरा में लगा दी जाएँ। प्रत्येक गाँठ बाँधते समय प्रत्येक मंत्र के अन्त में (अमुकं) रक्ष-रक्ष स्वाहा कहा जाए। तत्पश्चात् उन्हीं रक्षो-हण मंत्रों से अग्नि में हवन करे। प्रत्येक आहुति के बाद अभिमंत्रित रक्षाकरण्ड को हवन के धुएँ से धूपित करके पीड़ित व्यक्ति की कमर या भुजा में बाँध दिया जाए। यह विधि प्रत्येक प्रयोजन के लिए बनाए जाने वाले रक्षा-सूत्र के लिए विहित है। कुछ ऐसे प्रयोजन होते हैं, जिनमें पीली सरसों के दाने रक्षोहण मंत्र द्वारा उक्त विधि से अभिमंत्रित कर रक्षोहण मंत्र पढ़ते हुए पीड़ित व्यक्ति पर फेंके जाते हैं। इसे सर्षप प्रक्षेपण कहा जाता है। सर्षप प्रक्षेपण करने के बाद रक्षाकरण्ड बाँधना चाहिए। सर्षप प्रक्षेपण उस अवस्था में किया जाता है, जब व्यक्ति प्रेतबाधा ग्रस्त हो अथवा ऐसी बीमारी से पीड़ित हो—जिसका निदान डाक्टर, वैद्य न कर पाए हों।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि पीड़ित व्यक्ति शाप से ग्रस्त है, या प्रेत बाधा से ग्रस्त है अथवा निदान रहित बीमारी का मूल कारण क्या है—इस विषय को समझना प्रयोगकर्त्ता (सर्षप प्रक्षेपण करने वाले, रक्षाकरण्ड बाँधने वाले व्यक्ति) की योग्यता और साधना पर निर्भर है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

४. रक्षोघ्न मंत्र

शापमोचनार्थं सर्षप प्रक्षेपण, रक्षाकरण्ड वन्धन

१. शापमोचन

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य अष्टाविंशति सूक्तस्य चातनः ऋषिः। अग्निः यातुधानीः देवते। अनुष्टुप्, विराट्पथ्यावृहती, पथ्या पंक्तिः छंदांसि। (अमुकस्य) शापमोचने रक्षोहणे सर्षप प्रक्षेपणे रक्षाकरण्ड वन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ उपप्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः ॥१॥
प्रतिदह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्यहरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥

२. शापमोचन

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य सप्तम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः देवताः। अनुष्टुप्, भुरिक्, विराडुपरिष्टाद्वृहती छन्दांसि। (अमुकस्य) शाप मोचने सर्षप प्रक्षेपणे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत्सर्वान्मच्छपथाँ अधि ॥१॥
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्चयः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात्सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२॥
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥
परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम्।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४॥
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त्तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. शापमोचन

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य त्रयस्त्रिंशत् सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। पाप्मनाशनो अग्निः देवता। गायत्री छन्दः। (अमुकस्य) पाप-शाप विमोचने, सर्षपप्रक्षेपणे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥१॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥२॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥४॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥५॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥६॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥७॥
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

१. रक्षोहण

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य अष्टाविंशति सूक्तस्य शम्भुः ऋषिः। जरिमा, आयुः, मित्रावरुणौ, द्यावापृथिव्यादयो देवाः। त्रिष्टुप्, जगती, भुरिक् छन्दांसि। (अमुकस्य) सर्वबाधाप्रशमने रक्षोहणे, दीर्घायुष्यप्राप्तये जलाभिषेचने, होमे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ तुभ्यमेव जरिमन्वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात्पात्वहंसः ॥१॥
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२॥
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४॥
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन्।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५॥

२. रक्षोहण

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य एकादश सूक्तस्य ब्रह्मा-भृग्वङ्गिराश्च ऋषयः। इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनं देवाः। त्रिष्टुप्, शक्वरीगर्भा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगती, अनुष्टुप्, उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती छन्दांसि। (अमुकस्य) पाप, त्रयताप, दुर्भाग्यजनितारिष्ट, असाध्य रोग निवारणे, रक्षोहणे होमे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥२॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा हार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषा हार्षमेनम् ॥४॥
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥५॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥७॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद बृहस्पतिः ॥८॥

३. रक्षोहण

निम्नांकित रक्षोहण मंत्र-प्रयोग में सभी प्रकार की रक्षा के लिए आञ्जन वृक्ष की जड़ नीचे लिखे सूक्त से अभिमंत्रित कर रेशमी डोरा में बाँध कर इसी सूक्त से हवन कर रक्षाकरण्ड को हवन धूम से धूपित कर दाहिनी भुजा में बाँध दिया जाता है। इस रक्षाकरण्ड के धारण करने से हर प्रकार से रक्षा होती है। रोग-दोष, भय, बाधा, ग्रह-दोष, प्रेतबाधा का स्पर्श भी नहीं होता है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य नवम सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। त्रैकाकुदाञ्जनम् देवता। अनुष्टुप् छन्दः, ककुम्मती, पथ्यापंक्तिश्छन्दांसि। (अमुकस्य) पाप-शाप-ताप-रोग-दोष-समस्त बाधा निवारणे दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे सुख-समृद्धि संवर्द्धनार्थे रक्षोहणे आञ्जनस्य रक्षाकरण्ड बन्धनार्थे होमे विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंत्र

ॐ एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥
असन्मन्त्राद्दुष्वप्न्यादुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास अदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥
यदाञ्जनम् त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

आञ्जन वृक्ष हिमालय में पैदा होता है और इसी नाम से वहाँ जाना जाता है। इसे त्रैककुद तथा यामुन भी कहते हैं। यह ओषधि परमोपयोगी है। हर प्रकार के ज्वर, राजयक्ष्मा तथा शारीरिक रोग, मानसिक रोग शमन करती है। भूत-प्रेत-पिशाच की बाधा तथा मारण-मोहन, उच्चाटन आदि कृत्या दोषों का निवारण करती है। इसके बाँधने से शत्रु बाधा तथा दुर्घटनाओं का भय नहीं होता है। नवग्रहों के दोषों को शान्त करती है। निर्ऋति दोष का निवारण करती है। तात्पर्य यह कि इसे बाँधने से उपर्युक्त रोग-दोषों का आक्रमण नहीं होता है। उत्तरोत्तर अभ्युदय बढ़ता है।

४. रक्षोहण

निम्नलिखित रक्षोहण मंत्र प्रयोग में शंखमणि का रक्षाकरण्ड बाँधा जाता है। अथर्ववेद के भाष्यकारों ने इसकी पहचान मुक्ता (मोती) से की है; किन्तु मुक्ता बाँस से, हाथी से, सीपी से, मछली सथा समुद्र में उत्पन्न हुआ करता है और शंखमणि केवल शंख से उत्पन्न होता है। शंख समुद्र में ही उत्पन्न होता है। हमारे अध्ययन, अनुभव से शंख में से उत्पन्न मणि शंखमणि है। तूतीकोरन और अंदमन द्वीप समूह में उत्पन्न होने वाले

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शंखों में उत्पन्न शंखमणि कपूर की भाँति धवल किन्तु कठोर होता है। आकार में गोल अथवा बादाम की तरह होता है।

शंखमणि चाँदी में मढ़ाकर पहना जाता है। इसके धारण करने से योद्धा युद्ध-भूमि में सदा विजयी होता है। शस्त्राघात से उसके शरीर की रक्षा होती है। सामान्य आदमी यदि धारण करे, तो शत्रुओं पर सदा विजय होती है। वर्चस्व, आयु की वृद्धि होती है। कभी भी असफलता एवं पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ता है। हर प्रकार के संकटों से, हर प्रकार की बाधाओं, समस्याओं से मुक्त रखती है। शंखमणि दाहिनी भुजा में धारण की जाती है। पहले शंखमणि को गंगा जल या समुद्र जल से पुरुष सूक्त (अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ६) से अभिमंत्रित किया जाता है। तदनन्तर नीचे लिखे सूक्त से हवन कर हवन धूम से सुवासित कर चाँदी की तावीज में भरकर अथवा मणि के आजू-बाजू चाँदी की खोल मढ़ाकर रेशमी डोरा से बाँध कर दाहिनी भुजा में सोमवार या शुक्रवार अथवा पूर्णमासी के दिन धारण करना चाहिए। अभिमंत्रित करते समय पहले पुरुष सूक्त (पृष्ठ ९५ पर लिखा जा चुका है) के ऋषि, देवता, छन्द सहित विनियोग किया जाए, फिर हवन का विनियोग कर मणि को सिद्ध करना चाहिए।

विनियोग — ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य दशम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। शंखमणिः, कृशनः देवते। अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, पञ्चपदा परानुष्टुप्शक्वरी छन्दांसि। आयुषे, वर्चसे, बलाय, दीर्घायुत्वाय समस्त ईति-भीति, बाधा-विपत्ति, संकट, दुःख-दारिद्र्य, दुरित-दैन्य निवारणे शंखमणि बन्धने होमे च विनियोगः।

मंत्र

ॐ अथर्वा ऋषये नमः। अथर्ववेदायनमः। शंखमणये नमः।

मंत्र

ॐ वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वंहसः ॥१॥
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।
शंखेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥२॥
शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः।
शंखो नो विश्व भेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३॥
दिविजातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः।
स नो हिरण्यजाः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४॥
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥
हिरण्यनामेकोऽसि सोमात्त्वमधि जज्ञिषे।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवानामस्थि कृशनं वभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत्ते वध्नाम्यायुषे वर्चसे वलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय
कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

५. रक्षोहण

निम्नांकित रक्षोहण मंत्र से अभिमंत्रित और हवन द्वारा सिद्ध किया गया रक्षा-करण्ड दाहिनी भुजा में धारण करने से जीवन सदा आनन्द-मंगलमय रहता है। चेतना जाग्रत होती है, सद्बुद्धि, सद्विचार और विवेक की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। अभाव, हानि, असफलता का मुँह कभी नहीं देखना पड़ता है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य ऊनपञ्चाशत सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। देवपत्नीः देवताः। आर्षीजगती, चतुष्पात्पंक्तिः छन्दसी। (अमुकस्य) श्रेय-प्रेय प्राप्त्यर्थे सद्बुद्धि सद्विचार जननार्थे, आनन्दारोग्य प्राप्त्यर्थे होमे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्मयच्छन्तु ॥१॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

६. रक्षोहण

निम्नांकित रक्षोहण मंत्र से अभिमंत्रित रक्षाकरण्ड दाहिनी भुजा में बाँधने से हर प्रकार के पाप-शाप-ताप-रोग-दोष, भय-बाधा, दुर्भाग्य, ग्रहारिष्ट, नक्षत्रारिष्ट आदि से रक्षा होती है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य एकपञ्चाशत सूक्तस्य अङ्गिराः ऋषिः। इन्द्राबृहस्पती देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। (अमुकस्य) समस्त बाधानिवारणे सुख-सौभाग्य समृद्धि संवर्द्धनार्थे होमे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥

इस रक्षाकरण्ड की एक विशेषता यह भी है कि इसको जो धारण करता है, वह और उसका परिवार, उसके सुहृद् जन सभी आनन्दमय निर्विघ्न जीवन व्यतीत करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७. रक्षोहण

निम्नांकित रक्षोहण सूक्त अपमृत्यु का निवारण कर, रोग-दोष, पाप-शाप, भय-बाधा को निरस्त कर दीर्घायुष्य और समृद्ध-जीवन प्राप्त कराता है। इस रक्षोहण सूक्त में तीन मन्त्र अभयगण के भी सम्मिलित हैं, जो व्यक्ति को सदा निर्भय, निडर बनाए रखते हैं। उसे शत्रु का, मृत्यु का, रोग-दोष आदि का भय कभी नहीं सताता है। इस सूक्त में एक मंत्र (छठा मंत्र) ऐसा है जो व्यक्ति को सदा सर्वदा उन्नति के शिखर पर आरोहण करते रहने की प्रेरणा देता है। कभी हताश, निराश नहीं होने देता है। इस सूक्त द्वारा अभिमंत्रित रक्षाकरण्ड बाँधने से आत्मबल, संकल्प शक्ति बढ़ती है।

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य अष्टम काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आयुः देवता। त्रिष्टुप्, पुरोवृहती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, प्रस्तारपंक्तिः, त्रिपदाविराड् गायत्री, विराट्पथ्यावृहती, त्र्यवसानापञ्चपदा जगती, त्रिपाद्भुरिङ्महावृहती, एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्वृहती छन्दांसि। (अमुकस्य) अभयार्थे, आत्मशक्ति, संकल्पशक्ति संवर्द्धनार्थे, दैनन्दिने अभ्युदयार्थे, अभिवृद्धयर्थे, पुरुषार्थ चतुष्टय लब्धार्थे होमे, रक्षाकरण्ड बन्धने च विनियोगः।

मंत्र

ॐ अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१॥
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥२॥
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः।
उत्त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३॥
उत्क्रामतः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४॥
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६॥
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन्।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७॥
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८॥
श्यामश्च त्वा मा शवलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९॥
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम् एतत्पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग्विद्युता सह ॥११॥
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात्संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षंरक्षतुदेवहेत्याः ॥१२॥
वोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वामवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्चत्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३॥
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४॥
जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो वलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५॥
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा वहिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत्त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६॥
उत्त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत ।
उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत्पारयामसि ॥१८॥
उत्त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो३मा त्वाघरुदोरुदन् ॥१९॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०॥
व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१॥

५. ओषधि-विधान

जो ओष (रस) को धारण करती है, उसे ओषधि कहते हैं । काश्यपसंहिता का मत है कि 'दीपन-पाचन आदि गुणों से युक्त द्रव्य ओषधि कहे जाते हैं ।' आजकल ओषधि और भेषज को लोग पर्यायी मान कर भेषज को ओषधि समझते हैं । वस्तुतः हवन, व्रत, संयम, नियम आदि शान्ति कर्मों को भेषज कहा गया है । ओषधि और भेषज दोनों ही मनुष्य-जीवन के आयुष्यकर्म के मूल आधार हैं । पञ्चमहाभूतों से निर्मित विकारात्मक शरीर आत्मा का भोगायतन है । शरीरस्थ इन्द्रियाँ भोग का साधन हैं । मन अन्तःकरण है और आत्मा ज्ञान प्राप्त करने वाला है । शरीर, इन्द्रियाँ, मन और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मा—इन चारों का अदृष्ट कर्मवश जब एकत्र संयोग होता है, उस संयोग को 'आयु' कहा जाता है। जो क्षण भर रुके बिना गतिशील रहता है, वह 'आयु' है। इसकी गतिशीलता बनाए रखने के लिए जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक उपाय किए जाते हैं, वे दीर्घायुष्य प्रयोग या ओषधि-भेषज प्रयोग कहे जाते हैं। अथर्ववेद में दीर्घायु-जीवन के लिए अनेक विधि-विधान बताए गए हैं। वे सब विधान आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी और मानुषी—ये चार प्रकार की चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत समाहित हैं।

१. **आथर्वणी चिकित्सा**—जप, हवन, स्वस्तिवाचन, जलावसेचन, अवमार्जन, अपनोदन, हस्ताभिमर्ष, शान्ति-ओषधि, स्नान-कर्म से सम्बद्ध है।

२. **आङ्गिरसी चिकित्सा**—मानसिक शक्ति से सम्बद्ध है।

३. **दैवी चिकित्सा**—जल, मिट्टी, सूर्य-किरण, वायु, आसन, प्राणायम आदि प्राकृतिक पदार्थों, प्राकृतिक उपचारों से सम्बद्ध है।

४. **मानुषी चिकित्सा**—ओषधोपचार—ओषधियों द्वारा किए जाने वाले उपचारों से सम्बद्ध है।

फल वाली ओषधियाँ वनस्पति कहलाती हैं। जिनके फूल दिखाई नहीं पड़ते हैं वे ओषधियाँ वानस्पत्य कहलाती हैं, जैसे : गूलर (औदुम्बर), अमरवेल। और फूल के उपरान्त जिन ओषधियों में फल आते हैं, वे भी वानस्पत्य कही जाती हैं। फलने के बाद जो ओषधियाँ सूख जाती हैं, वे ओषधि कहलाती हैं। प्रतानवाली लताएँ वीरुध कहलाती हैं।

अथर्ववेद में विविध प्रकार के रोगों के लिए विविध प्रकार की ओषधियों का उल्लेख है। अधिकांश ओषधियों को दिव्य ओषधि कहा गया है। अथर्ववेद में ओषधियों की संख्या बहुत है, किन्तु कतिपय उपयोगी ओषधियों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

अथर्ववेदीय ओषधि नाम	आधुनिक प्रचलित नाम
१. असिक्नी, सोमराज्ञी	वाकुची
२. अपराजिता	विष्णुकान्ता, नीलपुष्पी
३. जया	विष्णुकान्ता, जुही
४. आसुरी	राई, काली सरसों
५. सिद्धार्थ, रक्षोघ्न, भूतनाशन	सफ़ेद सरसों
६. तिलपिञ्ज, तिलपिञ्जी	बिना फल वाला तिल या बाँझ तिल
७. सुपर्ण	अमलतास
८. श्यामा	पिप्पली, बड़ी पीपल
९. कृष्णा	पिपरामूल
१०. रजनि, रजनी, शिवा	हल्दी
११. पीतद्रु	सरल, सरई वृक्ष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेदीय ओषधि नाम	आधुनिक प्रचलित नाम
१२. गायत्री	खैर, कत्था, खदिर
१३. गन्धर्व	सफ़ेद रेंड (एरण्ड)
१४. मुञ्ज, वाण	मूंज, ब्रह्ममेखला वाण—सरपत का सरकंडा
१५. शोण	रक्तपुनर्नवा
१६. अग्नि	चित्रक, चीता
१७. भूतघ्न	विडङ्ग
१८. वचा	घोड़वच, निर्विषी, निर्मली
१९. रोहिणी	कुटकी, कटुकी, कटुरोहिणी, अरुन्धती
२०. मधुला, मधूलिका	मुलहठी का एक भेद
२१. ज्योतिष्मती	मालकांगनी
२२. रमा, रामा	भृङ्गर
२३. पूतद्रु	रुद्राक्ष (एकमुखी)
२४. स्राक्त्य	रुद्राक्ष का एक भेद
२५. चक्रमद्	चकौंड़ा, चकवड
२६. पुनर्नवा	गदापुन्ना
२७. दशवृक्ष	दशमूल (विल्व, गंभारी, पाटला, श्योनाक, दोनों कटेरी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखुरी)
२८. शतवीर्या	शतावर
२९. सहस्रवीर्या	सफ़ेद दूब
३०. अमौघा	सफेद फूल की कटेरी, लक्ष्मणा
३१. अरिष्टा	रीठा और नागबला
३२. महावला	सहदेई
३३. अतिवला	कंघी, ककई, ककहिया
३४. त्रायमाणा	ममीरा, आञ्जन
३५. शण	सन, सनई
३६. अव्यथा	हरड़, हर्रे
३७. विष्वक्सेन कान्ता	बाराही कन्द
३८. रञ्जन, रञ्जक, काम्पील	कबीला
३९. दर्भ (कुश)	मृदुदर्भ कुश, खरदर्भ-दर्भ
४०. इन्द्रावारुणी	इन्द्रायण, छोटी इन्दोरन
४१. वज्रवल्ली, वज्राङ्गी, काण्डवल्ली	हड़जोड़
४२. वैश्वानर	चीता, चित्रक
४३. भास्कर, विवस्वान्	मन्दार, अर्क, आक, आकड़ा
४४. अहर्मणि, विभाकर, दिवाकर	श्वेतार्क, सफ़ेद मन्दार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेदीय ओषधि नाम	आधुनिक प्रचलित नाम
४५. जङ्गिड, इन्द्रद्रु, वीरद्रु	अर्जुन, कौहा, कुह
४६. शुचिद्रुम, अश्वत्थ	पीपल
४७. नादेय	काँस, अश्ववार
४८. अञ्जन	सुरमा का वृक्ष
४९. औदुम्बर	गूलर
५०. भूतघ्न	पीली सरसों
५१. वरण, वारिद	वरण, विल्व विशेष
५२. सुवर्चला	हुलहुल, हुरहुर
५३. मुनिदेव	अगस्त
५४. कनन्कक	सोहागा
५५. वैकंकत	शमी के वृक्ष में उगा हुआ पीपल का वृक्ष
५६. आशापाल	अशोक
५७. जीवला	सिंहपिप्पली
५८. घृताची	बड़ी इलायची
५९. नलदी, भूतजटा	जटामांसी, भूतघ्नी
६०. गान्धारि	कपूर
६१. पैद्व	सफ़ेद मदार की जड़
६२. ब्रह्म	पलाश, ढाक
६३. मित्र	अतीस
६४. शूद्रा	प्रियङ्गु लता
६५. विक्षर	समुद्रफेन
६६. तस्तुव	कड़वी तुम्बी (लौकी)
६७. कल्याणी	माषपर्णी
६८. पृश्निपर्णी	पिठवन
६९. यातुधानी	पीली सरसों
७०. रण	रन
७१. लाक्षा	पीपल की लाख
७२. जीवन्ती	गिलोय, गुरिच, गुडूची
७३. अपामार्ग	सफ़ेद, लाल चिचिड़ा, लटजीरा
७४. त्रिककुद, त्रिवृत	निशोथ
७५. चीपद्रु	चीड़
७६. लाक्षा, स्परणी, सिलाची, कानीना	लाख, लाह (पीपल, धव, खदिर, ढाक, वट की गोंद)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७७. फाल बदरी फल (रुद्राक्ष की एक प्रजाति) जो तमिलनाडु में होती है, बेर के फल के समान बीज होते हैं। रामेश्वरम् में इसी रुद्राक्ष की माला मिलती है।

प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी पदार्थ

१. पृथिवी	मिट्टी
२. उपजीवकोद्धृत	दीमक की बाँबी की मिट्टी
३. पृथिवी-संवत्	ऊसर ज़मीन की मिट्टी
४. देवी	गोपी चन्दन, सौराष्ट्रमृत्तिका
५. आपः महत्	कुएँ का पानी
६. अमृत	जल (प्रवाह-जल)
७. रुद्ररेत	पारा
८. अषत्क	ऊँचाई से गिरता हुआ झरने का पानी
९. शतवृष्ण्य	मेघ-जल
१०. मरुत्	साधारण वायु
११. वेधा	मौसमी हवा
१२. वृहस्पति	बवंडर
१३. मित्र	विजन (पंखा) वायु
१४. रोपणाका	दूब, दूर्वा जो उखाड़कर रोपी गई हो
१५. दैवी आपः	दिव्य जल
१६. वार्षिकीः आपः	मघा नक्षत्र की वृष्टि का जल
१७. सिन्धुः	समुद्र या नदी का जल
१८. अनूप्याः आपः	झरनों का जल
१९. धन्वन्याः आपः	रेगिस्तान का जल
२०. खनित्रिमा आपः	कुआँ, बावड़ी का जल
२१. सूर्यरश्मयः	सूर्य की किरणें
२२. सूर्यतापी जल	पीले रंग की बोतल में जल भर कर सूर्य-ताप से तपाया गया जल
२३. स्वर्णतापी जल	जल में स्वर्ण डालकर आग में तपाया गया जल

अथर्ववेद में ओषधियों के जातिभेद : वर्गभेद

अथर्ववेद[1] में अनेकानेक ओषधियों के नाम, उनके जातिभेद, वर्णभेद, वर्गभेद, स्वरूप और गुण-धर्म बताए गए हैं।

---

१. अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त १

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्ण भेद से—भूरे रंग की, शुभ्रवर्णा, श्वेतवर्णा, रक्तवर्णा, नीलवर्णा, कृष्णवर्णा तथा चित्र-विचित्र रंगों की ओषधियाँ होती हैं।[1]

स्वरूप भेद से—जड़ से ही अलग-अलग शाखाओं से फैलने वाली जैसे मेंहदी, अनार आदि। एक मूल वाली ओषधियाँ जैसे मन्दार (आक, आकड़ा), फैले हुए मूल की ओषधियाँ जैसे ब्राह्मी, खस आदि। काँटों वाली ओषधियाँ जैसे कटेरी (भटकटैया), ऊँटकुटार, जवासा, नागफनी आदि। सूक्ष्म अवयवों वाली ओषधियाँ जैसे, थूहर, झाऊ आदि। काण्डों (पोरों) वाली ओषधियाँ जैसे, नरकट, सरपत, गन्ना, वेत आदि। शाखारहित ओषधियाँ जैसे, नारियल, सुपाड़ी, ताड़[2] आदि।

गुण भेद से—जीवनदायिनी ओषधि, जैसे संजीवनी, आँवला आदि। किसी भी हालत में हानि न पहुँचाने वाली ओषधि, जैसे जटामांसी। स्वयं जीवनी शक्ति रखने वाली ओषधि, जैसे तुलसी, विल्व पत्र, ब्राह्मी, शंखपुष्पी आदि। आन्तरिक मर्म स्थानों को शक्ति देने वाली ओषधि, जैसे द्राक्षा, अश्वगन्धा, अर्जुन, घृतकुमारी आदि। ऊपरी घावों को भरने वाली ओषधि, जैसे नीम, विश्लिष्टपर्णी आदि। हृदय, मस्तिष्क को उन्नत बनाने वाली ओषधि, जैसे आमलकी, अमृता, गोजिह्वा आदि। फूलों वाली ओषधि जैसे, शिवलिंगी, पाटल, सहाञ्जन, अगस्त्य आदि। मधुर रस वाली ओषधि, जैसे अनारदाना, बीही दाना, ईख, द्राक्षा, नारियल की गिरी।[3]

शोधन तथा स्नेह वर्ग की ओषधियाँ—प्रचेतसा (चेतना प्रदान करने वाली), मेदनी (दोषों को हटा कर शुद्ध स्निग्ध बनाने वाली) ओषधियाँ।[4]

उपयोग-भेद से—पुनर्नवा अर्थात् जो ओषधि बार-बार नवीन रूप में उगने वाली हो।

अग्नेर्वास—जो ओषधि अग्नि के भोजन-रूप हों। अपांगर्भ—जो ओषधि जलों के साररूप में हो। ध्रुवा—जो ओषधि स्थिर प्रभाव वाली हो। सहस्रनाम्नी—जिन ओषधियों के हज़ारों नाम हों—ऐसी ओषधियाँ रोग-भेद से उपयोग में लाई जानी चाहिए।[5]

जलीय ओषधियों की उत्पत्ति-भेद से जातियाँ : अवकोल्वा—जिन ओषधियों में काई जम जाती है। उदकात्मन—जलमय, जल से उत्पन्न ओषधियाँ। तीक्ष्ण शृंग्य—जिनकी पत्तियों के अग्रभाग सूक्ष्म नुकीले होते हैं।[6]

विषनाशक ओषधियों के वर्ग—विषरुणाः = ग्राह्य। उग्राः = तीव्र गन्ध-रस वाली।

---

१. अथर्ववेद ८।७।१
२. वही ८।७।४
३. वही ८।७।६
४. वही ८।७।७
५. वही ८।७।८
६. वही ८।७।९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विदूषणी = विषघ्नी । बलासनाशिनी = बलग़म को दूर करने वाली ।

कृत्यादूषणी ओषधि—अभिचार कर्म को कृत्या कहा जाता है । अभिचार कर्म को दूर करने वाली ओषधियाँ कृत्यादूषणी कहलाती हैं । इनमें अपामार्ग को अथर्ववेद में अधिक महत्त्व प्राप्त है । अपामार्ग को देशी बोली में कहीं लटजीरा, कहीं ओंगा, कहीं चिचिड़ा कहा जाता है । यह ओषधि श्वेत वर्ण, रक्त वर्ण और कृष्ण वर्ण तीन वर्णों की होती है । तीन वर्णों के अलग-अलग गुण-धर्म बताए गए हैं और यह सुझाव दिया गया है कि ऊसर, बंजर, रेतीली ज़मीन का अपामार्ग उपयोग में नहीं लाना चाहिए । जोती-बोई जाने वाली भूमि में उत्पन्न अपामार्ग परमोपयोगी होता है ।[1]

स्निग्ध ओषधियों के वर्ग —जो अन्न देती हैं, दूध देती हैं, जिनसे घी बनता है, उन्हें स्निग्ध ओषधि कहा जाता है । अथर्ववेद का मत है कि किसी स्निग्ध ओषधि की फुनगी (अग्रभाग) गुणकारी होती है, किसी का मध्य भाग गुणकारी होता है, किसी की पत्तियाँ गुणकारी होती हैं और किसी के फूल गुणकारी होते हैं । मधुर गुण युक्त जल से सींची गई ये ओषधियाँ अमृत के समान गुणकारी होती हैं । इनसे अन्न, दूध, घी का दोहन कर रोग-दोष में उपयोग करना चाहिए ।[2]

पत्तों वाली ओषधियाँ—अथर्ववेद का कथन है कि पृथ्वी में सहस्रों पर्णों वाली ओषधियाँ हैं, जो मृत्यु रूप रोग से मुक्त कराती हैं ।[3]

ओषधि-मणि—ओषधियों की मणि सेवन करने और गले में, कमर में, भुजा में बाँधने का समर्थन अथर्ववेद में है । मणि पारिभाषिक शब्द है । मणि का तात्पर्य ओषधियों की जड़, फूल, पत्तियाँ, वटी, गोली है । शंखमणि, हिरण्यमणि, ओषधि नहीं है । इसी तरह हरिण शृङ्ग भी ओषधि नहीं है । तात्पर्य यह कि अथर्ववेद में मणि शब्द से ओषधि-वटी भी गृहीत है और शंख से उत्पन्न मणि, शंखमणि तथा सोना, फाल (रुद्राक्ष), हरिण शृङ्ग भी गृहीत हैं । वस्तुतः जो भी तावीज के रूप में धारण की जाए वह 'मणि' है । अथर्ववेद के मत से मणि धारण करने से अर्थोत्थापन होता है । शत्रु भय नहीं रहता है । संग्राम में विजय मिलती है । भूत-प्रेत की बाधा, कृत्या-अभिचार के प्रयोगों से रक्षा होती है । मणिबन्धन से देह-क्षति से रक्षा होती है । हर प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार की मणियाँ धारण करने का विधान अथर्ववेद में है । मणियाँ समस्त विषकृमियों को दूर करती हैं । कौटलीय अर्थशास्त्र में भी बताया गया है कि मणि का तात्पर्य ओषधि भी है । जीवन्ती श्वेता, मुष्क-पुष्प और पीपल में उत्पन्न बन्दा की मणि धारण करने से विष दूर होता है ।[4] साँप का विष उतारने के लिए साँप द्वारा काटी हुई जगह में जहरमोहरा चिप-

---

१. अथर्ववेद ८।७।१८
२. वही ८।४।१२
३. वही ८।४।१३
४. कौ० अर्थ० अधिकरण १४, प्रकरण १७८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काया जाता है—यह भी मणि है।

महौषधि वर्ग की ओषधियाँ—वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल), तृणों में दर्भ (कुश), लताओं में सोमलता, प्राकृतिक द्रव-पदार्थों में अमृत (जल), संचरणशील पदार्थों में घी का सेवन, घी से हवन करना; अन्नों (भोज्य पदार्थों) में जौ और चावल और आकाशीय भेषज पदार्थों में सूर्य और चन्द्र महौषधि हैं।[1]

उपर्युक्त अथर्ववेदीय ओषधि-विज्ञान से यह विदित है कि चिकित्सा के दो अंग हैं : १. प्राकृतिक चिकित्सा और २. ओषधि-चिकित्सा।

६. जल चिकित्सा

ओषधि-प्रयोग के अन्तर्गत हम किसी प्रकार की ओषधि को अभिमंत्रित कर उसके सेवन का विधान इसलिए नहीं लिखना चाहते हैं कि कहीं उचित और सही ढंग की ओषधि न मिले अथवा सही ढंग से सेवन न किया जाए, तो विपरीत परिणाम हो सकते हैं। अतः यहाँ पर अथर्ववेदीय प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत केवल जल-चिकित्सा की विधि लिख रहे हैं। इससे किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं है। लाभ ही लाभ होता है।

१. प्रवहशील नदी का जल या कुएँ का जल १०० ग्राम लेकर आग में चढ़ा दें, उसमें शुद्ध सोने का ४-५ रत्ती का टुकड़ा छोड़ कर पकाएँ। जब जल २५ ग्राम रह जाए तब उतार लिया जाए। सोने का टुकड़ा बाहर निकाल कर रख दिया जाए। इसके बाद उस स्वर्णघटित जल को अथर्ववेद काण्ड ३, सूक्त १३ से अभिमंत्रित कर नित्य ४१ दिन तक पीने से असाध्य से असाध्य रोग शान्त हो जाता है। यदि रोज जल अभिमंत्रित कराने में असुविधा हो, तो अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, हृषीकेशाय नमः, गोविन्दाय नमः, माधवाय नमः इस पञ्चामृत मंत्र को २१ बार जप करके स्वर्ण-तापी जल को पी लेना चाहिए।

२. पीले रंग की काँच की बोतल में गंगा जल भरकर उसे ऊन के कपड़े से भली भाँति ढाँक कर बोतल का मुँह खोल कर प्रातःकाल सूर्योदय के समय खुली जगह में जहाँ सूर्य की किरणें बोतल पर पड़ती रहें रख दिया जाए। सूर्यास्त से पहले बोतल का मुँह कार्क से बन्द करके उठा कर अन्दर रख कर आगे लिखे हुए अथर्ववेदीय मंत्रों से अभिमंत्रित कर उस जल को पिया जाए। यदि अभिमंत्रित न हो सके, तो

---

१. अथर्व० ८।७।२०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपर्युक्त पञ्चामृत मंत्र का जप करके पिया जाए। नित्य इसी प्रकार एक महीना पीने से शरीर या मन के सभी रोग दूर हो जाते हैं।

जलाभिमन्त्रण मन्त्र

स्वर्ण घटित या सूर्यतापी जल की ओर देखते हुए निम्नांकित मंत्रों को पढ़ते हुए प्रत्येक मंत्र के अन्त में ॐ अमृत वर्चसे स्वाहा कहकर फूंक मारे अथवा जल की ओर देखते हुए मंत्रों का जप किया जाए। जप के बाद रोगी को जल पिला दिया जाए।

(१)

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य त्रयोदश सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। वरुणः, सिन्धुः, आपः, इन्द्रः देवाः। अनुष्टुप्, निचृत् विराड् जगती, निचृदनुष्टुप् छन्दांसि। (अमुकस्य) कर्मजव्याधि, भव-व्याधि, क्षेत्रिय रोग निवारणे, आरोग्यार्थे, दीर्घायुष्यार्थे जलाभिमन्त्रणे विनियोगः।

ॐ यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥
यत्प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥२॥
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम्।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वो हितम् ॥३॥
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥
आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥

(२)

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य अष्टादश सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप्, अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदाउष्णिक्, उष्णिग्गर्भापथ्या-पंक्तिश्छन्दांसि। (अमुकस्य) भवव्याधि, कर्मजव्याधि, क्षेत्रिय रोग, दुरित-दोष निवारणे जलाभिमन्त्रणे विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे पराणुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन्रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी वा ममाधरा साधराभ्यः ॥४॥
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥
अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

यदि उपर्युक्त स्वर्णतापी और सूर्यतापी जलों को अथर्ववेद के उपर्युक्त मंत्रों से अभिमंत्रित कर सेवन किया जाए, तो पाप-शाप जन्य रोग, कुष्ट, यक्ष्मा, नेत्र रोग, हृदय रोग, कर्ण रोग, मानसिक रोग, मस्तिष्क रोग, उदर रोग, यौन रोग, स्मृति भ्रंश रोग, कण्ठमाला, कैंसर, कारवंकल रोग; पिशाच, यक्ष, यातुधान, मारण आदि प्रयोग जन्य रोग; उन्माद, नपुंसकता, गर्भस्राव, रक्तस्राव, प्लीहा, सन्तत ज्वर, पाण्डु-रोग, कृमि रोग, खान्दानी रोग, अर्श, भगन्दर, श्लेष्मा, कास, श्वास, प्रसूति रोग निश्चय ही दूर होते हैं।

विशेष—अथर्ववेद में रहस्य ही रहस्य भरा हुआ है। सामान्य बुद्धि, तर्क बुद्धि से इसका रहस्य-ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। एक ही सूक्त या मंत्र भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। सूक्तों के मंत्रों के सामान्य अर्थ पर नहीं जाना चाहिए। इसी स्थल पर जलाभिमंत्रण का दूसरा सूक्त सपत्नी (सौत) को निरस्त कर पति को केवल अपना बनाने का भाव प्रकट करता है और सौतों से पति को अलग करने के लिए इसका प्रयोग भी किया जाता है। साथ ही यही सूक्त रोग दोष दूर करने में भी प्रयुक्त होता है।

७. आदित्यशान्ति कर्म-विधान

श्री, तेज, वर्चस्, धन और आयुष्य की वृद्धि के लिए आदित्य शान्ति की जाती है। यह शान्ति-कर्म सलिलगण के सूक्तों से की जाती है। सलिलगण को अम्बादि-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गण भी कहा जाता है। सलिलगण (अम्बादिगण) के सूक्त 'जलसूक्त' कहे जाते हैं। इन जल-सूक्तों के मन्त्रों से जलावसेचन किया जाता है तथा रक्षाकरण्ड, मणि और ओषधियों को अभिमंत्रित किया जाता है। यह बताया जा चुका है कि अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए अथवा पाप, शाप, रोग, दोष, प्रेत-बाधा आदि दोषों को दूर करने के लिए व्यक्ति के सिर पर मन्त्र पढ़ते हुए कुश अपामार्ग से जो नदी जल या कूप जल छिड़का जाता है, उस क्रिया को जलावसेचन अथवा जलाभिषेचन या मार्जन कहा जाता है। और रक्षाकरण्ड, मणि-ओषधि आदि पदार्थों को तन्मय होकर देखते हुए अभीष्ट मंत्र को हृदयंगम करते हुए मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन पदार्थों पर जलाभिषेचन करना अथवा विनियोग पूर्वक केवल मन्त्रोच्चारण करना अभिमन्त्रण है।

सलिलगण के सूक्तों के मन्त्र सभी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होते हैं और तत्काल फल देते हैं, किन्तु आदित्य नाम की शान्ति में सलिलगण के सूक्त विशेष ग्राह्य हैं। आदित्य शान्तिकर्म में सलिलगण के सूक्तों से पवित्र जल को पहले अभिमंत्रित किया जाता है, फिर जिसके निमित्त शान्तिकर्म किया जाए, उसके सिर पर जलावसेचन किया जाता है। तत्पश्चात् सलिलगण-सूक्तों से हवन किया जाता है। यज्ञ (हवन) कार्य में अभिमंत्रित जल ही प्रयुक्त किया जाता है।

और यदि किसी पर भूत-प्रेत-पिशाच आविष्ट हो, शत्रु-बाधा से कोई पीडित हो अथवा भूत-प्रेतों द्वारा उसके घर-परिवार को तरह-तरह से त्रस्त किया जाता हो, तो उसकी शान्ति के लिए, बाधा निवारण के लिए, हवन नहीं करना चाहिए, केवल अपनोदन (जल से झाड़ा देना) करना चाहिए।

सलिलगण के तीन सूक्त (१।४-५-६) अपां भेषजम् कहे गए हैं। इन मंत्रों से मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों सभी के रोग दूर होते हैं। ये मन्त्र बृहच्छान्तिगण के कर्मों में भी विहित हैं। पशुओं की रोग-शान्ति के लिए इन्हीं तीन सूक्तों से अभिमंत्रित जल उन्हें पिलाना चाहिए। यदि कोई पशु चारा-दाना कम खाता हो, निर्बल हो, तो उसे सेंधा नमक इन्हीं मंत्रों से अभिमंत्रित कर खिलाना चाहिए और यदि किसी मादा पशु को प्रजनन-कष्ट हो, बच्चा न निकल रहा हो या उलट गया हो, तो उसे इन्हीं तीन सूक्तों से अभिमंत्रित सेंधा नमक मिला हुआ जल पिला देना चाहिए; तुरन्त प्रसव हो जाता है। हर प्रकार के रोग की शान्ति के लिए इन्हीं तीन सूक्तों से पहले जलाभिषेचन करना चाहिए फिर पलाश (ढाक) या उदुम्बर (गूलर) या बट (बरगद) की समिधाओं से हवन करना चाहिए। जलाभिषेचन, अभिमंत्रण, हवन आदि प्रत्येक क्रिया में प्रयोजन का उल्लेख करते हुए विनियोग अवश्य करना चाहिए। हम यहाँ पर तीनों सूक्तों को लिख रहे हैं। विनियोग में किसी विशेष प्रयोजन को न रख कर (.....) स्थान रिक्त रख रहे हैं। जो व्यक्ति जिस प्रयोजन से निम्नांकित सूक्तों से क्रिया करे, वह विनियोग में अपना अभीष्ट प्रयोजन जोड़ दे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१. अपां भेषजम्

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य चतुर्थ सूक्तस्य सिन्धु द्वीपः ऋषिः। (अपांनपात्, सोमः), आपः देवताः। गायत्री, पुरस्ताद्बृहती छन्दसी।(.....) जलाभिमंत्रणे विनियोगः।

ॐ अम्वयो यन्त्यध्वभिर्जामयोअध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥
अपो देवीरुपह्वये यत्रगावः पिवन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥३॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुतप्रशस्तिरश्वाभवथ वाजिनो गावो भवथवाजिनीः ॥४॥

२. अपां भेषजम्

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य पञ्चम सूक्तस्य सिन्धु द्वीपः ऋषिः। (अपांनपात्, सोमः), आपः देवताः। गायत्री, वर्द्धमाना छन्दसी। (.....) जलाभिमंत्रणे विनियोगः।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥३॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम् ॥४॥

३. अपां भेषजम्

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य षष्ठ सूक्तस्य सिन्धु द्वीपः ऋषिः। (अथर्वा कृतिर्वा)। (अपांनपात्)। आपः, आपः सोमोग्निश्च देवताः। गायत्री, पथ्यापंक्तिश्छन्दसी। (.....) जलाभिमंत्रणे विनियोगः।

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥२॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥
शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद में छह प्रकार के जल बताए गए हैं।

दैवी आपः (दिव्य जल), वार्षिकीः आपः (वर्षा का जल), सिन्धुः (नदी या समुद्र का जल), अनूप्याः आपः (झरनों का जल), धन्वन्याः आपः (रेतीली भूमि का जल) और खनित्रिमाः आपः (कुआँ, बावली का जल)। जलाभिषेचन, अभिमंत्रण, स्नान आदि आथर्वण क्रियाओं में उक्त छह प्रकार के जलों में से किसी एक जल का प्रयोग किया जाना चाहिए।

'जल में ओषधि निहित रहती है'—ऐसा मान कर अथर्ववेद उसके गुण-धर्म इस प्रकार बतलाता है—

१. अप्सु अमृतम्, २. अप्सु भेषजम्, ३. शिवतमोरसः, ४. आपोमयोभुवः, ५. शं, ६. योः, ७. अप्सु विश्वानि भेषजानि, ८. आपः पृणीत भेषजम्, ९. आपोजन यथा च नः, १०. अपामुतप्रशस्तिभिरश्वाभवथ वाजिनो गावोभवथवाजिनीः, ११. अम्वयो यन्त्यध्वभिर्जामयोः।

तात्पर्य यह कि जल अमृत है। जल भेषज है, जल कल्याणकारी रस है। जल दीर्घायुष्य प्रदान करता है। जल रमणीयता, सुन्दरता, बल-वीर्य, पुष्टि, तुष्टि प्रदान करता है और स्वीकार करने योग्य समस्त गुणों से युक्त होता है। शं और योः इन दो शब्दों द्वारा बताया गया है कि जल में समता (शं) और विषमता (योः) रहती है। आपोजन यथा च नः, अपामुतप्रशस्तिभिरश्वाभवथ वाजिनो गावोभवथवाजिनीः और अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयोः शब्दों द्वारा बताया गया है कि जल में वीर्य है और प्रजनन शक्ति के तत्त्व निहित हैं।

१. अपनोदन भेषजम्

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त २२ में तीन ऋचाएँ ऐसी हैं, जो आदमी की बढ़ी हुई तोंद और घुटनों की बीमारी दूर करती हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

मिट्टी के नवीन घट में पवित्र जल भर कर उसमें अपामार्ग, शमी, सहदेवी, अडूसा, शिवलिंगी, जटामांसी, तुलसीदल, बिल्वपत्र, पलाशपत्र, बला, अतिबला—शान्ति ओषधियाँ डाल कर नीचे लिखी ऋचाओं से घट के जल को अभिमंत्रित कर इन्हीं ऋचाओं को पढ़ते हुए तुन्दिल की तोंद में सायंकाल छींटे दे। ११ दिन से लेकर अधिकतम ४१ दिन में तोंद पिचक जाया करती है। नित्य सायंकाल छींटे देने के बाद सूक्त २२, २३ की ऋचाओं से तुन्दिल रोगी से हवन कराया जाए। प्रत्येक आहुति छोड़ने के बाद रोगी उस हवन के धुएँ को लेकर पेट में चारों ओर घुमाए। इस प्रयोग का विनियोग यह है—

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य द्वाविंशत् सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः। आदित्यरश्मिः, मरुतः देवते। त्रिष्टुप्, चतुष्पदाभुरिक् जगती छन्दसी। (अमुकस्य) तुण्डादिवृद्धि शमनार्थे अपनोदने होमे च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ कृष्णं नियानं हरयः सुवर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्धतेन पृथिवीं व्यू दुः ॥१॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२॥
उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्ये व तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३॥

अपनोदन करने के बाद उपर्युक्त सूक्त से तथा निम्नांकित सूक्त से हवन कराना चाहिए ।

ॐ सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥२॥
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥३॥

२. अपनोदन भेषजम्

कामला रोग, जलोदर रोग तथा हृदय संबंधी रोगों का निवारण अथर्ववेद काण्ड ६ के सूक्त २४ से निश्चय पूर्वक होता है । कभी भी यह प्रयोग असफल नहीं हुआ है । इसकी विधि यह है कि एक बड़े नए मिट्टी के घड़े में पवित्र नदी के प्रवाह का जल भर कर उसमें अपामार्ग, बरियारी, अर्जुन वृक्ष की छाल, पृश्निपर्णी (पिठवन) काश, कुश, दूर्वा डालकर नीचे लिखे सूक्त से जल को अभिमंत्रित करे (मंत्रों को पढ़ते हुए घट-जल में कुश-अपामार्ग को फिराना) । अभिमंत्रित जल से इन्हीं तीन ऋचाओं को पढ़ते हुए रोगी को छींटे दे, फिर उसी जल से मंत्र पढ़ते हुए आचमन करा कर स्नान कराया जाए । इस क्रिया से नेत्रों की जलन, हृदय-दाह, हृदय-दौर्बल्य, हृदय की धड़कन, हृदय व्रण, हृदय छिद्र आदि रोग तथा कामला और जलोदर रोग शीघ्र अच्छे हो जाते हैं ।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य चतुर्विंशत् सूक्तस्य शान्तातिः ऋषिः । आपः देवता । अनुष्टुप् छन्दः । (अमुक) रोग निवारणे अपनोदने विनियोगः ।

ॐ हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददृह्द्योत भेषजम् ॥१॥
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्यो प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः । २॥
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

८. आथर्वणी-आङ्गिरसी भेषजविज्ञान

ग्लानि-क्लेश-दुःख निवारण : संकट मोचन, विजय प्राप्ति

अथर्ववेद के मत से ग्लानि, क्लेश, दुःख और संकट मनुष्य के सूक्ष्म प्राणों और वासना-देह से संबंधित होते हैं। इसलिए इनका निवारण किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा संभव नहीं है। ये रोग-दोष अथर्ववेदीय आथर्वणी और आङ्गिरसी भेषज द्वारा शमन किए जाते हैं।

आथर्वणी और आङ्गिरसी भेषज से अकाल मृत्यु, अपमृत्यु, आकस्मिक दुर्घटना; बाल्यावस्था में, जवानी में मृत्यु होना; अधःपतन, दिवालिया हो जाना, अनेक प्रकार के मस्तिष्क रोग, पागलपन, उन्माद; जो कभी सुनी न गई हों, सोची न गईं हों और देखी न गई हों, ऐसी भयङ्कर व्यथाएँ, वंश-नाश आदि आधि-व्याधियाँ कुल परंपरा के दोष से, या शाप से अथवा घातक-मारण आदि प्रयोग से प्रायः उत्पन्न होकर तहस-नहस कर डालती हैं। जब किसी आदमी का मानसिक, आत्मिक पतन हो जाता है, तब वह क्लेशों से ग्रस्त होता है।

अथर्ववेद में शम, शरीर-शुद्धि, मन की शुद्धि और आत्म-शुद्धि – ये चार साधन उपाय उपर्युक्त दोषों के निवारण के लिए बताए गए हैं। इन्हीं चार उपायों से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति हुआ करती है। रोगों, दोषों को दूर कर आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद में निम्नांकित प्रयोग-विधि नितान्त सरल, साध्य और अमोघ है।

अथर्ववेद के काण्ड सोलह के प्रथम सूक्त की तेरह ऋचाओं द्वारा कुश-अपामार्ग से कांस्य-पात्र या ताम्रपात्र में जल भर कर अभिमंत्रित किया जाए। फिर इन्हीं तेरह ऋचाओं से अभिचार कर्म, दोषग्रस्त व्यक्ति का कुश-अपामार्ग से अभिमंत्रित जल से अभिषेचन किया जाए।

विनियोग —ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडश काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। प्रजापतिः देवता। द्विपदा साम्नी बृहती। याजुषी त्रिष्टुप्, आसुरी गायत्री, साम्नी पंक्तिः (द्विपदा), साम्नी अनुष्टुप्, निचृद् विराट् गायत्री, आसुरी पंक्तिः, साम्नी उष्णिक्, आर्ची अनुष्टुप् छन्दांसि। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःख निवारणे, पाप-शाप, भय, बाधा, संकट निवारणे, वरुणपाश, निर्ऋति दोष, कृत्या दोष अपस्तरणे, बाह्याभ्यन्तर शत्रुदमने, शत्रुबलक्षये, दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे, सतत अभ्युदये, अभिवृद्धयर्थे च अभिचार कर्मणि जलानुमन्त्रणे, मार्जने, अवसेचने विनियोगः।

अभिमंत्रण-अवसेचन मंत्र

ॐअतिसृष्टो अपां वृषभोऽति सृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥
रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu. Trust. Funding by MoE-IKS

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥
योप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद्वो घोरं तदेतत् ॥८॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रस्मत् ॥१०॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३॥

इसके बाद इसी सोलहवें काण्ड के दूसरे सूक्त की छह ऋचाओं से रोगी-दोषी व्यक्ति की आत्मा का आवाहन भूमि पर कुश रख कर कुश-अपामार्ग से कुश पर जल छिड़कते हुए अनुमंत्रण कर दोषग्रस्त व्यक्ति की पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन, अन्तःकरण, चित्त, बुद्धि, मेधा, प्रतिभा, प्रज्ञा, वाणी आदि की विकलता, ग्लानि तथा कष्ट, क्लेश दूर करने के लिए इन्हीं छह ऋचाओं से जलाभिषेचन करे। तत्पश्चात् दीर्घायुष्य, आरोग्य, अभ्युदय, समृद्धि के लिए इसी सोलहवें काण्ड के सूक्त ३ और ४ तथा सूक्त ९ की ३ और ४ ऋचाओं से एवं सत्रहवें काण्ड के प्रथम सूक्त से सूर्योपस्थान कराए। यह क्रिया नित्य १२ दिन तक करने से समस्त दोषों का शमन होकर अभ्युदय, विजय, समृद्धि के द्वार खुल जाते हैं।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडश काण्डस्य द्वितीय सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। वाक् देवता। आसुरी अनुष्टुप्, आसुरी उष्णिक्, साम्नी उष्णिक्, त्रिपदा साम्नीबृहती, आर्ची अनुष्टुप्, निचृद्विराड् गायत्री छन्दांसि। (अमुकस्य) आत्मा आवाहने, अनुमंत्रणे मनः सहितेन इन्द्रियादीनां क्लेश निवारणे जलाभिषेचने विनियोगः।

आवाहन, अनुमन्त्रण, जलाभिषेचन ऋचाएँ

ॐ निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥१॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूर्योपस्थान—दोषग्रस्त व्यक्ति सूर्य की ओर मुंह करके दोनों भुजाएँ ऊपर की ओर उठाकर ॐ ह्रीं सूर्याय नमः का जप करता रहे और कर्त्ता विनियोग करके निम्नांकित मंत्रों से उसके सिर पर जलाभिषेचन करे।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडश काण्डस्य तृतीय सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यः देवता। आसुरी गायत्री, आर्ची अनुष्टुप्, प्राजापत्य त्रिष्टुप्, साम्नी उष्णिक्, द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् छन्दांसि। (अमुकस्य) ऋण, रोग, दुःख, दारिद्रय, दैन्य निवारणे, सुख-सौभाग्य, समृद्धि वृद्धयर्थे, अभ्युदयार्थे सूर्योपस्थाने जलाभिषेचने च विनियोगः।

(१) सूर्योपस्थान मंत्र

ॐ मूर्धाहं रयीणाम् समानानां भूयासम् ॥१॥
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धाच मा विधर्माच मा हासिष्टाम् ॥२॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३॥
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४॥
वृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥५॥
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रोऽस्मि विधर्मणा ॥६॥

(२) सूर्योपस्थान विनियोग मंत्र

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडश काण्डस्य चतुर्थ सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यः देवता। साम्नी अनुष्टुप्, साम्नी उष्णिक्, त्रिपदा अनुष्टुप्, आसुरी गायत्री, आर्ची उष्णिक्, त्रिपदा विराड्गर्भानुष्टुप् छन्दांसि। ऋण, रोग, दारिद्रय, दुःख निवारणे अभ्युदयार्थे जलाभिषेचने विनियोगः।

ॐ नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१॥
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥२॥
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥३॥
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४॥
प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥५॥
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥६॥
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(३) सूर्योपस्थान : विनियोग, जलाभिषेचन

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तदश काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यः देवता। जगती त्र्यवसाना, अतिजगति, अत्यष्टिः, अति धृतिः, कृतिः, प्रकृतिः, पञ्चपदाशक्वरी, पञ्चपदा विराडतिशक्वरी, भुरिगष्टिः, विराडत्यष्टिः, षट्पदा, सप्तपदा, ककुप्, चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती, अनुष्टुप्, निचृद्बृहती, अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप् छन्दांसि। ऋण, रोग, दुःख, दारिद्र्य निवारणे, अभ्युदयार्थे च सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं
स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान्भूयासम् ॥१॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः देवानां भूयासम् ॥२॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं
द्विषते रधं तवेद्विष्णो बहुधावीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु
मा सुमतिं कृधि तवेद्विष्णो बहुधावीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७॥
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद्विष्णो बहुधा
वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये
तवेद्विष्णो बहुधावीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१०॥
त्वमिन्द्रासि विश्वजित्सर्ववित्पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥
अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ
तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदम् तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी विभासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि
विद्वांस्तवे द्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥
पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयावाङ्शस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१७॥
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वितायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८॥
असति सत्प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितम् तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०॥
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं ।
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥२१॥
उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥
अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान्मह्यं रन्धयन्मा चाहं द्विषते रधं तवेद्विष्णो वहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥२४॥
आदित्यनावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रि सत्रातिपारय ॥२५॥
सूर्यनावमरुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रि मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६॥
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७॥
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत्पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्ती रुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०॥

९. दीर्घायुष्य : आरोग्य-विधान

मनुष्य के शरीर में भौतिक और अभौतिक अनेक प्रकार की शक्तियाँ हैं । उन सभी शक्तियों में प्राणशक्ति का सर्वोपरि महत्त्व है । मनुष्य-शरीर की सभी शक्तियों के प्रसुप्त हो जाने पर भी प्राणशक्ति क्रियाशील रहती है और जब प्राणशक्ति अस्त हो जाती है, तो अन्य शक्तियाँ निष्क्रिय निर्जीव हो जाती हैं ।

अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ४ के २६ मंत्रों द्वारा प्राण की महिमा बताई गई है । अतः यह सूक्त 'प्राणसूक्त' कहलाता है । मनुष्य-शरीर में श्वास और उच्छ्वास के रूप में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही प्राण संचालित रहता है और गर्भ से लेकर जन्म एवं मृत्यु पर्यन्त यह क्रियाशील रहता है। जब मनुष्य की मृत्यु होने वाली होती है, तो शरीर के सभी अवयव और सभी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं, किन्तु कुछ समय तक तब भी प्राण क्रियाशील रहता है। इसलिए प्राण सभी शक्तियों में प्रमुख माना गया है।

मन की इच्छा-शक्ति से प्रेरित प्राण ही शरीर को आरोग्य बनाए रखता है। श्वास के साथ प्राण अन्दर जाता है और उच्छ्वास के साथ वही बाहर निकलता है। अथर्ववेद प्राणायाम के 'पूरक' और 'रेचक' को 'आयत्' और 'परायत्' कहता है, स्थिर रहने वाले प्राण 'कुम्भक' को 'तिष्ठत्' और 'बाह्य कुम्भक' प्राण को 'आसीन' कहता है। योगसूत्र में पूरक, अन्तः कुम्भक, रेचक और बाह्य कुम्भक—ये चार प्रकार के प्राणायाम बताए गए हैं। इन चारों प्रकार के प्राणायामों से युक्त प्राणायाम ही परिपूर्ण प्राणायाम होता है। इन्हीं का वर्णन अथर्ववेद में आयत, तिष्ठत्, परायत्, आसीन नामों से हुआ है। इन चारों प्रकार के प्राणायाम के अभ्यास से प्राण वश में होते हैं।

जो नासिका छिद्रों द्वारा हृदय में पहुँचता है, उस वायु की संज्ञा 'प्राण' है। और जो नाभि के निचले भाग गुदा के द्वार तक कार्य करता है, वह 'अपान' है। इन्हीं को अथर्ववेद में क्रमशः 'प्राचीन' और 'प्रतीचीन' कहा गया है। प्राणविद्या सूक्त में प्राण को सब ओषधियों की ओषधि कहा गया है।

प्राण की उपासना

आत्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँच कोशों के अन्दर विद्यमान रहता है। पञ्चकोश ही पञ्च शरीर कहे जाते हैं। इन पञ्च शरीरों में प्राणमय शरीर का विशद वर्णन अथर्ववेद में है। प्राणविद्या सूक्त में प्राणमय शरीर को 'प्रिया तनू' कहा गया है। सभी प्राणी प्राणमय शरीर से प्रेम करते हैं, इसलिए यह 'प्रियातनू' कहलाता है। प्राण और अपान—ये दो शरीर के प्रेममय कार्य हैं। प्राण शक्ति का संवर्द्धन करता है और अपान से शरीरस्थ विष दूर होकर स्वास्थ्य का संरक्षण होता है। प्राण के अन्दर एक प्रकार का 'भेषज' रहता है जो दोषों को दूर करता है और शरीर के दोषों को दूर करने और शरीर को आरोग्य रखना प्राण का कार्य है। प्राण का दूसरा नाम 'रुद्र' है और रुद्र का एक अर्थ 'वैद्य' भी होता है।

अथर्ववेद के उक्त सूक्त में कहा गया है कि 'प्राण में औषधि' है। इस कथन के मूल में मानस-चिकित्सा का विधान निहित है। तात्पर्य यह कि अपनी प्राणशक्ति से अपनी ही चिकित्सा की जा सकती है। "मैं अपनी प्राणशक्ति से अपने रोगों को दूर कर नीरोग बनूँगा।" यह दृढ़ भावना मन में धारण करने से मनुष्य रोगों से मुक्त हो सकता है।

उपर्युक्त सूक्त के ग्यारहवें मंत्र में बताया गया है कि 'प्राण ही जीवन और मृत्यु का कर्त्ता है।' यहाँ पर इन्द्रियों को 'देव' कहा गया है। सभी देव (इन्द्रियाँ) प्राण की उपासना करती हैं। उपासना का तात्पर्य है इन्द्रियाँ प्राण के साथ रह कर अपने अन्दर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति प्राप्त करती हैं। जो इन्द्रिय प्राण के साथ रह कर बल प्राप्त करती है वही अपना कार्य करने में सक्षम रहती है और जो इन्द्रिय प्राण से वियुक्त हो जाती है, वह मर जाती है, निष्क्रिय बन जाती है। यही प्राण की उपासना है, इसे ही 'रुद्र-उपासना' कहा गया है।

दीर्घायु प्राप्ति के साधन

मनुष्य के लिए मानव-शरीर धर्म का साधन है। यह शरीर ही धर्मक्षेत्र, कर्म-क्षेत्र और कुरुक्षेत्र है। शरीर को आरोग्य, नीरोग रखता हुआ मनुष्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है। पुरुषार्थ रहित व्यक्ति ही अधोगति को प्राप्त होता है। अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त १ के २१ मंत्रों में दीर्घायु प्राप्त करने के उपाय बताए गए हैं। शरीर को 'सुखं रथं' कह कर यह बोध कराया गया है कि उत्तम इन्द्रियों वाला यह शरीररूपी रथ है, इसे प्राप्त कर मनुष्य इसे नीरोग, निरलस, सशक्त, तेजस्वी और ओजस्वी बनाए। यह मानव-शरीर अमृत और सुखकारक है। तात्पर्य यह कि मृत—मुर्दा—दुर्बल शरीर नहीं होना चाहिए। अथर्ववेद में शरीर को रथ इसलिए कहा गया है कि इसमें स्थित मनुष्य लोक के सभी कार्यों को सफलतापूर्वक करके ब्रह्मलोक तक जा सकता है। ब्रह्मलोक तक पहुँचने के लिए इस शरीररूपी रथ में बैठ कर अश्व-रूपी इन्द्रियों को सुशिक्षित, प्रशिक्षित कर धर्मपथ से जाना पड़ता है। इसी विषय का विस्तार कठोपनिषद् में किया गया है—

'आत्मा रथ का स्वामी है, शरीर उसका रथ है, बुद्धि रथ को चलाने वाला सारथि है और मन लगाम है। इन्द्रिय रूपी घोड़े इसमें जुते हुए विषयों के क्षेत्रों में संचरण कर रहे हैं। जब आत्मा मन और इन्द्रियों से जुड़ता है तो वह 'भोक्ता' कहलाता है। भोक्ता के आधीन इन्द्रियरूपी घोड़े नहीं रहते हैं, इसलिए वे रथ के स्वामी (आत्मा) को जिधर चाहें, उधर ढकेल देते हैं। किन्तु जो विज्ञानवान्, मेधावान्, प्रज्ञावान् हैं और मन को संयमित, नियंत्रित रखते हैं, उनके आधीन सम्पूर्ण इन्द्रियाँ रहती हैं। इसके विपरीत जो प्रज्ञारहित, विज्ञानरहित, असंयमी मन वाले और अपवित्र हृदय होते हैं, वह ब्रह्मपद न प्राप्त कर बार-बार संसार में पैदा होते हैं, मरते हैं।'

अतएव अथर्ववेद (८।१।४,६) का उपदेश है—

'हे मनुष्य ! तू इस संसार से ऊपर चढ़, नीचे न गिर। तेरी गति ऊर्ध्वमुखी ही रहे, अधोमुखी कभी न हो।'

वस्तुतः मनुष्य को यह देह इसलिए मिला है कि वह सदा उन्नति-पथ का पथिक बने, नीचे कभी न गिरे। उन्नति करना, अवनति करना मनुष्य के हाथ में है।

स्वार्थी, मौक़ातलब, चाटुकार मनुष्य हीन-भावना से ग्रस्त होकर पतन की ओर जाता है, वह उन्नति नहीं कर सकता है। शोकग्रस्त मनुष्य का आयुष्य क्षीण हो जाता है। किसी मरे हुए स्वजन, परिजन को दिन रात स्मरण करते रहने से. शोक करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से अवनति हुआ करती है और आयु भी क्षीण होती है। इसलिए अथर्ववेद (८।१।८) कहता है—

गतानां मा आदिधीथाः ये परावतं नयन्ति

—मरे हुए लोगों का स्मरण करके शोक मत करो, क्योंकि शोक तुम्हें दूर तक गहरी अवनति को पहुँचा देगा।

शोक करने से मानसिक ह्रास होता है और जिस मरे हुए के लिए शोक किया जाता है, उसे कोई लाभ भी प्राप्त नहीं होता है। शोकातुर व्यक्ति श्रेष्ठतम पुरुषार्थ करने में अक्षम हो जाता है। वह इहलोक और परलोक के लिए निकम्मा बन जाता है।

कदाचित् किसी के एक ही पुत्र है और वह भरी जवानी में मर जाता है, तो उसका मरण शोक करने योग्य है या नहीं ?

इस शंका पर अथर्ववेद (८।१।१०) का कथन है—

व्यस्तकेश्यः अघरुदः त्वा मा रुदन्

—बालों को बिखरा कर सिर, छाती को पीट-पीट कर बिलख-बिलख कर तू मत रो।

तात्पर्य यह कि इस प्रकार रोने से न तो रोने वाले को कोई लाभ होता है और न मरे हुए व्यक्ति को। बल्कि रोने से मानसिक शक्ति क्षीण होती है, और आयुष्य भी क्षीण होता है।

अथर्ववेद का कथन है कि किसी भी हालत में मन को शोकाकुल नहीं करना चाहिए। रोना, छाती, मूड़ पीटना अवनतिकारक है।

अवनति के बन्धन

मनुष्य को अपने ओजः, तेजः, वर्चः को बनाए रखने के लिए अवनति के पाशों से अपने को सुरक्षित रखना चाहिए। अथर्ववेद का कथन है कि दिव्यवाणी की सहायता से निर्ऋति (अधोगति, अवनति) के पाशों से तुम्हें हम ऊपर (उन्नति की ओर) उठाते हैं।

ऋति का उलटा निर्ऋति है। निर्ऋति और ऋति को अथर्ववेद में बहुत विस्तार से समझाया गया है और निर्ऋति-पाश से बँधे हुए व्यक्ति को छुटकारा के उपाय भी बताए गए हैं।

निर्ऋति	ऋति
१. एकाकी जीवन, दुर्गतिपूर्ण जीवन	संघ जीवन, सुखी जीवन
२. अगति, विरुद्धगति	गति, प्रगति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्ऋति	ऋति
३. युद्ध से पलायन, अधर्म युद्ध करना	वीरता, धर्मयुद्ध
४. कुमार्ग का अनुसरण करना	सन्मार्ग पर चलना
५. अवनति	उन्नति
६. असत्य आचरण, अयोग्य कार्य	सत्य, योग्य
७. नाश-विनाश, ह्रास	रक्षण, अमरत्व
८. अपवित्रता	पवित्रता
९. तम, अन्धकार	प्रकाश, स्वच्छता
१०. सड़ना, गलना, रोगग्रस्त होना	नीरोगता, तेजस्विता
११. आपत्ति, विपत्ति	सम्पत्ति, सुख
१२. संकट	अनुकूलता
१३. विरुद्ध परिस्थिति	अनुकूल परिस्थिति
१४. शाप	वर
१५. मृत्यु	अमृतत्व
१६. असत्य में लीन रहना	सत्य के प्रति आग्रह रखना

ऊपर निर्ऋति के पाश और उनसे छुटकारा दिलाने वाले उपाय 'ऋति' बताए गए हैं। मनुष्य को निर्ऋति के पाशों को काट कर ऋति के साथ अपना संबंध जोड़ना चाहिए। इससे वह सदा समुन्नत, सुखकारक, अभ्युदय प्रधान जीवन जिया करता है।

निर्ऋति का मार्ग तमोमय है, अन्धकारमय है। इस पर चलने वाला मनुष्य पग-पग पर ठोकर खाकर गिरता है। इसके विपरीत ऋति का मार्ग प्रकाशमय है, ज्योतिर्मय है। इस पर चलने वाला व्यक्ति सदा अभ्युदय प्राप्त करता है, उन्नति उसके जीवन में समा जाती है। सदैव सफल, श्रेयस्कर, आभ्युदयिक कर्म करता है। वह दीर्घायु और उन्नतिशील जीवन जीता है।

दीर्घजीवनीय विद्या

अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त २ के सातवें, आठवें, दसवें और पच्चीसवें मंत्र में दीर्घ-जीवनीय विद्या का उपदेश दिया गया है। इस दीर्घजीवनीय विद्या के उपदेश में दीर्घ-जीवन प्राप्त करने के कुछ नियम बताए गए हैं, उन नियमों का ज्ञान-उपदेश प्राप्त कराया जाता है। अथर्ववेद के ऋषि का दृढ़ मत है कि इस उपदेश को प्राप्त कर मनुष्य तो दीर्घजीवी होते ही हैं, पशुओं के सामने यह विद्योपदेश पढ़ा जाए और पशुओं के कानों में मंत्रों की ध्वनि प्रविष्ट हो जाए, तो वह भी दीर्घजीवी होते हैं।

अथर्ववेद के इस सूक्त के दसवें मंत्र में भी ब्रह्मवर्म[1] (ज्ञानकवच) बनाने का

---

१. ज्ञानकवच धारण करने की विधि अध्यात्म प्रकरण में लिखी जा चुकी है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय वर्णित है। वस्तुतः ज्ञान एक महान् कवच है। इस ज्ञानकवच को धारण कर लेने से मृत्यु का भय नहीं रहता है। ज्ञानकवच धारण करने से मृत्युपाश, निर्ऋति पाश छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मनुष्य द्वारा, देवों द्वारा, प्रेतदाहक अग्नि द्वारा ज्ञानकवच धारण करने वाले का वध या दाह कथमपि संभव नहीं होता है। यह यमदूतों को दूर हटाता है। ज्ञानकवच धारण करने वाला स्वेच्छामृत्यु वरण करता है, जब तक वह जीना चाहे, तब तक किसी प्रकार की मृत्यु उसका स्पर्श नहीं कर सकती है। तमोगुण बढ़ने से मृत्यु की संभावना बढ़ती है और ज्ञानकवच धारण करने से सतोगुण बढ़ता है, तमोगुण स्पर्श नहीं करता है।

अथर्ववेद इस सूक्त में १०१ प्रकार की मृत्युएँ बतलाता है। साथ ही मृत्यु के विविध कारणों का भी परिचय देता है।

मृत्यु के विविध कारण

१. अराति—जो व्यक्ति राति (परोपकार) नहीं करता है, केवल स्वार्थी जीवन व्यतीत करता है, उसे अथर्ववेद में 'अराति' कहा गया है। सामान्य भाषा में अराति को कंजूस, दरिद्री कहा जा सकता है। जो सब भोग अपने लिए भोगता है, वह अराति है, अरातिवृत्ति से आयु क्षीण होती है और ऐसा व्यक्ति अल्पायु होता है।

२. निर्ऋति—निर्ऋति का अर्थ है, अधःपतन, दुर्गति। इससे आयु क्षीण होती है। आदमी घुट-घुट कर, सड़-गल कर मरता है।

३. ग्राहि—जो रोग आदमी को दीर्घकाल तक पकड़े रहते हैं, उन्हें ग्राही कहते हैं, जैसे : लकवा, पोलियो, दमा, मधुमेह। ये रोग आदमी को घुलाते रहते हैं और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

४. क्रव्याद्—मनुष्य के शरीर का खून पीने वाले, मांस खाने वाले कृमियों को क्रव्याद् कहा गया है। सिंह, व्याघ्र, भेड़िया आदि हिंस्रक जीव भी क्रव्याद् कहे जाते हैं। नर-मांस खाने वाले आदमी को क्रव्याद् कहे जाते हैं। दीर्घजीवन के लिए इनसे हमेशा बचते रहना चाहिए।

५. पिशाच -शरीर के अन्दर कृमि, केचुआ, साँप, मेढक, कछुई आदि जो पेट में पैदा होकर आँतों और यकृत तथा गुर्दा का खून चूसा करते हैं, उन्हें पिशाच कहा गया है। रोग-कृमि, कीटाणु से सदैव रक्षा करते रहने से दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है।

६. रक्षः—जो रक्षा करने के बहाने निकट सम्पर्क में आते हैं और फिर छल, कपट से सर्वस्व हरण कर लेते हैं, उन्हें रक्षः या राक्षस कहा जाता है। राक्षस रोग-कृमि भी होते हैं और सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन में कपटी, छद्मवेशी शत्रु भी होते हैं। ये मृत्यु के कारण बनते हैं।

७. दुर्भूत—सभी प्रकार की बुराइयों को दुर्भूत कहा गया है। दीर्घ-जीवन के लिए सभी प्रकार की बुराइयों से बचते रहना चाहिए।

८. तमः—हीनभावना, अज्ञान को तम कहा गया है। तम से मनुष्य की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवनति हुआ करती है और अवनति शोक उत्पन्न करती है, शोक से मनुष्य की आयु क्षीण होती है।

९. अभिचार—अपनी समान स्थिति के लोग अथवा बन्धु-बान्धव विघातक हो जाते हैं। स्वार्थवश अभिचार (मारण आदि) कर्म द्वारा जीवन को नष्ट कर देते हैं।

१०. असवः मा हासिषुः, अमृतः, अमत्रिः, अतिजीवः—किसी अन्य प्रकार से अकाल मृत्यु न हो, अकाल में न मरे, मरियल न हो और अतिदीर्घकाल तक जीवित रहे। मनुष्य मरियल न रहे, अकाल में न मरे और दीर्घकाल तक जीवित रहे—ये तीन बातें ध्यान रखने योग्य हैं और मरियल होना, स्नायुदौर्बल्य, धातुक्षीणता आदि से क्षीण होना, अकाल तथा कैंसर, कारबंकल, कंठमाला आदि से पीड़ित होना ये दीर्घ-जीवन की बाधाएँ हैं। मनुष्य को इन बाधाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

११. एकशतंमृत्यवः—एक सौ एक मृत्युएँ हैं, फिर इनकी अनेक शाखाएँ हैं।

इन सब प्रकार की मृत्युओं से अपनी रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। जीवनविद्या के नियमों के विपरीत आचरण करने से ये अपमृत्युएँ हुआ करती हैं। जिन कारणों से मनुष्य की अपमृत्यु होती है; घात, अपघात, दुर्घटनाएँ होती हैं; शरीर और मन का बल क्षीण होता है, अवनति होती है, अभ्युदय रुक जाता है, उन सब कारणों को अथर्ववेद के मंत्रों द्वारा दूर करना चाहिए।

१२. नाष्ट्राः—जो भी विनष्ट करने वाले, हानि पहुँचाने वाले साधन हैं, उन्हें अथर्ववेदीय तंत्र से हटाना चाहिए। अवनति, अभ्युदय का अवरुद्ध होना, अर्थ का सो जाना आदि हानिकर साधन हैं, इन्हें अथर्ववेद के सूर्योपस्थान से तथा अर्थोत्थापन-गण से दूर करना चाहिए।

आयुर्दा अग्नि

अथर्ववेद (मंत्र १९।६४।४) में बताया गया है कि 'जातवेदस् अग्नि से दीर्घायुष्य प्राप्त होता है। यह अग्नि ज्ञान, आयु और धन देने वाली है। यही जीवन धारण करती है।' अग्नि के ये गुण मनुष्य कैसे प्राप्त करे, इसके लिए शौनकीय शाखा में बताया गया है कि दीर्घायु प्राप्त करने के लिए स्वर्णतापी जल, अग्नि द्वारा शुद्ध किया हुआ पारा, शुद्ध भिलामा, केशर, चित्रक आदि से मनुष्य आरोग्यता और दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। अग्नि का एक अर्थ जठराग्नि भी बताया गया है। जठर-अग्नि चार प्रकार की होती है—मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि और सम-अग्नि।

विषम जठराग्नि वातरोगों को पैदा करती है, तीक्ष्ण जठराग्नि पित्तरोग पैदा करती है, मन्दाग्नि कफरोग पैदा करती है और सम-जठराग्नि भोजन को पचाती है। दीर्घायु, आरोग्य चाहने वाले मनुष्यों को अपने में सम-जठराग्नि को स्थिर करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ओषधि प्रयोग

अथर्ववेद की चारायण शाखा में ओषधियों के द्रव्य गुण और प्रयोग बताए गए हैं। चरक (२।५।१) में कहा गया है—

इमां अमृतस्य श्नुष्टिं आरभस्व

'हे मनुष्य ! तू इस अमृतरस का पान कर।' तात्पर्य यह कि जीवनवर्द्धिनी ओषधियों का रस यथाविधि, योग्य रीति से सेवन करना चाहिए। मंत्र में 'अमृतस्य श्नुष्टि' का अर्थ अमरत्व देने वाला रसायन है। ऐसे रसायन का सेवन करना चाहिए जो अमरता को बढ़ाने वाला हो। अमरत्व का अर्थ आरोग्य, दीर्घजीवन समझना चाहिए न कि कभी न मरना।

मंत्र २।२९।६ में दीर्घजीवन देने वाली, कभी न हानि पहुँचाने वाली, सदा नीरोग रखने वाली 'जीवन्ती' ओषधि को बताया गया है। जीवन्ती नाम इसलिए रखा गया है कि यह ओषधि दीर्घजीवन प्रदान करती है। जीवन्ती के मधुर और अमधुर दो भेद हैं। मधुर जीवन्ती त्रिदोष को दूर करती है और अमधुर जीवन्ती से पित्त तथा पित्तजन्य विकार दूर होते हैं। यह ओषधि नेत्रविकार भी दूर करती है। वस्तुतः हर रोग में जीवन्ती का उपयोग लाभदायक होता है। जीवन्ती को आयुर्वेद में गुड़ूची, गिलोय, गुरिच बताया गया है। केयदेव निघण्टु में इसके नाम जीवनी, जीवनीया, जीवा, जीवना, मंगल्य-नामधेया, जीव्या, जीवदा, जीवदात्री, जीवभद्रा, भद्रा, मंगल्या, यशस्या, जीवदृष्टा, पुत्रभद्रा, जीववृषा, सुखंकरी, जीवपत्री, जीवपुष्पी बताए गए हैं। इन नामों से भी स्पष्ट ज्ञात है कि जीवन्ती ओषधि जीवनदायिनी है।

आठवें काण्ड के दूसरे सूक्त के अट्ठाईसवें मंत्र में आमाशय के रोगों को दूर करने में, मस्तिष्क तथा वायुरोग को दूर करने में, हृदय रोग और विविध प्रकार के उत्पन्न होने वाले, बढ़ने वाले रोगों और भूत, प्रेत, पिशाच, रक्तदोष, रक्तचाप को विनष्ट करने वाली ओषधि 'पूतद्रुः' बताई गई है।

पूतद्रुः—यह ओषधि रुद्राक्ष है। रुद्राक्ष धारण करने से शरीर, मन, हृदय, चित्त सब शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। यह शरीर के मल को नष्ट करता है। पवित्रता, वृद्धि और प्रगति प्रदान करने के कारण रुद्राक्ष को 'पूतद्रुः' कहा गया है।

रोग उत्पन्न करने वाले कृमियों को अथर्ववेद और यजुर्वेद (१६।६२) में 'रोग बीज', 'रुद्र' और 'राक्षस' कहा गया है। जो खाने, पीने के पदार्थों में प्रविष्ट होकर अथवा वायु में उड़ते हुए श्वास, प्रश्वास के साथ शरीर के अन्दर जाकर कृमि, कीट तरह-तरह के रोग पैदा करते हैं। पूतद्रु—रुद्राक्ष इस प्रकार के कीटाणु-जन्य रोगों को दूर करता है तथा आमाशय के विकारों को नष्ट करता है।

आत्मविश्वास : मनोबल

अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त ३० में बताया गया है कि दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास एवं मनोबल का विशेष महत्त्व है। प्रथम मंत्र में प्राणों को दृढ़ता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से बाँधने का निर्देश है। प्राणों को बाँध रखने से मनुष्य जब तक नहीं चाहता है, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती है। आत्मविश्वास से प्राण बँधते हैं। और 'मैं शीघ्र नहीं मरूँगा, मैं दीर्घायु होऊँगा, मैं अपनी आयु कर्त्तव्यों के पालन करने में, राष्ट्र और धर्म के कार्य में समर्पित करूँगा', इस प्रकार की मन की सुदृढ़ भावना जाग्रत रहने पर मनुष्य की सहसा और अल्पायु में मृत्यु नहीं होती।

दूसरे मंत्र में कहा गया है कि 'उन्मोचन' और 'प्रमोचन'—ये दो उपाय हैं, जिनसे नीरोगता और दीर्घजीवन की सिद्धि मिलती है। इनमें उन्मोचन विधि आरोग्यता बढ़ाती है और प्रमोचन विधि अकालमृत्यु का हरण करती है।

तीसरे मंत्र में किसी को सरापना, शाप देना, कोसना, दूषित विचार, हीन-भावना, परद्रोह की आग से सुलगते रहना, कुविचार रखना—ये अनारोग्य के कारण हैं। इस प्रकार की भावनाओं, कुविचारों से मन दूषित होता है। दूषित मन मानसिक रोग उत्पन्न करता है। मानसिक स्वास्थ्य विगड़ने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

माता-पिता के पापाचरण से भी उनकी सन्तानें रोगग्रस्त हुआ करती हैं। इस सूक्त के चौथे मंत्र में कहा गया है—

मातृकृतात् पितृकृतात् च एनसः शेषे

माता-पिता के दुराचरण से उनकी सन्तान जन्मतः रोगी होती है। ऐसे रोगियों के लिए अथर्ववेद का उपदेश है कि उपयुक्त ओषधि का सेवन और पथ्य करना चाहिए।

भेषजं सेवस्व। त्वा जरदष्टिं कृणोमि

उन्नति का मार्ग

अथर्ववेद आरोग्य-प्राप्ति के मार्ग को उदयनं पथः अर्थात् उच्चतर उन्नत अवस्था प्राप्त करने का राजपथ बतलाता है। इस संसार में सुखी, सन्तुष्ट, समुन्नत जीवन व्यतीत करने के लिए आरोग्यता बढ़ाने वाले उपायों को जानकर उन पर आचरण करके आरोग्यता की वृद्धि करनी चाहिए। यदि आदमी पूर्वोक्त अथर्ववेदीय उपदेशों पर आचरण करे, तो अथर्ववेद उसे पूर्ण आश्वासन देता है कि 'तू शीघ्र नहीं मरेगा, मैं तुझे दीर्घायुष्य प्रदान करता हूँ। तू डर मत।'

मा विभेः। न मरिष्यसि। त्वा जरदष्टिं कृणोमि।

दीर्घायुष्य और तेजस्विता

मनुष्य का अभीष्ट केवल दीर्घ-जीवन प्राप्त करना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि दीर्घ-जीवन के साथ तेजस्वी और वर्चस्वी होने का भी शिव-संकल्प होना चाहिए।

अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त २८ में तेजस्वी और वर्चस्वी बनने के लिए यज्ञोपवीत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की महिमा बताई गई है। यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं और प्रत्येक सूत्र में तीन-तीन धागे होते हैं। इस प्रकार सब मिला कर यज्ञोपवीत में नौ धागे होते हैं। यज्ञोपवीत के तीन धागे किस प्रकार बने हैं—इसका परिचय अथर्ववेद (मंत्र ५।२८।१) में इस प्रकार दिया गया है—

हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि।

अर्थात् सुवर्ण के तीन, चाँदी के तीन और लोहे के तीन। तात्पर्य यह कि यज्ञोपवीत के प्रत्येक सूत्र के साथ क्रमशः सोने, चाँदी और लोहे के सूत्र ग्रथित होने चाहिए। कोशकारों ने 'अयस्' शब्द का अर्थ 'लोहा' स्वीकार किया है, किन्तु अयस् का अर्थ धातु भी होता है। हमारी दृष्टि से यज्ञोपवीत में सोने, चाँदी के तारों के साथ लोहे का तार न पिरो कर शुद्ध ताँबे का तार पिरोना चाहिए। यज्ञोपवीत के सूत्रों के साथ सोने, चाँदी और ताँबे के तार संयुक्त करके शरीर में धारण करने से एक अमन्द-मन्द विद्युत्प्रवाह प्रवाहित हुआ करता है, जिससे तन, मन, मस्तिष्क और हृदय निर्मल, ऊर्जस्वल बनते हैं। दीर्घायुष्य और वर्चस् की प्राप्ति होती है।

इस सूक्त के तीसरे मंत्र में बताया गया है कि 'शतायु होने के लिए नौ प्राणों को नौ इन्द्रियों से मिलाना चाहिए।' इसका आशय यह है कि अपने प्राण को शरीर के सभी अवयवों में कार्य करने के योग्य बनाना चाहिए। प्राण की ऐसी कार्य-योग्यता प्राणायाम से बढ़ती हैं। प्राणायाम करते रहने से शरीर के सभी अवयव (इन्द्रियाँ) यविष्ठ और पुष्ट होते हैं और तीन धातुओं के तारों से सम्बद्ध यज्ञ सूत्र (जनेऊ), जो धातुओं की उष्णता से परस्पर बटे गये हैं, शरीर में ओज, बल, तेज, उत्साह और आरोग्य की वृद्धि करते हैं। यज्ञोपवीत के नौ तागों में भूमि, अग्नि. आप, अन्तरिक्ष, चन्द्रमा, दिशा, द्यौः, सूर्य और ऋतु—ये नौ देवता वास करते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने का तात्पर्य यह है कि उसमें आविष्ट नौ देवताओं का तेज और वीर्य अपने शरीर के अन्दर धारण करना और यज्ञोपवीत धारण करने के कर्त्तव्यों का पालन करना है। तीन लोकों और उनमें स्थित दैवी शक्तियों के साथ अपना संबंध व्यक्त करने के लिए त्रिवृत सूत्र (यज्ञोपवीत) धारण किया जाता है।

यज्ञोपवीत में तीन प्रकार की पोषण शक्तियाँ निहित रहती हैं—१. अन्न की विपुलता, २. अनुयायी मनुष्यों की विपुलता और ३. पशुओं की विपुलता। यज्ञोपवीत धारण करने वालों का कर्त्तव्य है कि वह ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य की रक्षा करें। शरीर पोषण के लिए ओषधियों का रस, कन्दमूल और फलों का सेवन करें। साथ ही दूध, घी आदि हविष्यान्नों का सेवन करें। पुरुषार्थ द्वारा नैतिकतापूर्वक अर्थोपार्जन करें।

यज्ञोपवीत के तीन तागों से बाल, तरुण और वृद्ध—इन तीन अवस्थाओं का बोध होता है। तीन अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक धर्मानुष्ठान करने से यज्ञोपवीत धारण करना सार्थक होता है। जिस प्रकार समग्र यज्ञोपवीत में एक ही सूत्र तीन सूत्रों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में परिणत होता है, उसी प्रकार मनुष्य के धर्माचरण का एक ही सूत्र वाल, तरुण, वृद्ध—इन तीनों अवस्थाओं में आयुरूप होकर परिणत होता है।

ओङ्कार नामक एक ही अक्षर में अ-उ-म् तीन अक्षरशक्तियाँ निहित हैं। ये ही तीन अक्षर यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं। जिस प्रकार अ-उ-म् इन तीन अक्षरों के एक रूप संयोग से ओङ्कार रूप महानाद उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तीनों सूत्रों से एक यज्ञोपवीत बनता है, इसलिए यह यज्ञोपवीत तीन महाशक्तियों का बोधक है।

महानाद ओङ्कार के अ-उ-म् – इन तीनों अक्षरों से क्रमशः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं का बोध होता है। मनुष्य का जीवन इन तीन अवस्थाओं में व्याप्त है। मनुष्य का जीवन एक महायज्ञोपवीत है, उसके तीन सूत्र (धागे) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति हैं, इनको यज्ञरूप बनाने का कार्य यज्ञोपवीत धारण करने वालों का अश्वमेध यज्ञ है।

अन्त में इस सूक्त में यज्ञोपवीत धारण करने से निम्नांकित लाभ बताए गए हैं—

१. यज्ञोपवीत दुःखों, संकटों से रक्षा करता है।
२. यज्ञोपवीत धारण करने से मनुष्य का पतन नहीं हुआ करता है।
३. यज्ञोपवीत मातृभूमि को शक्तिशालिनी बनाता है।
४. यह शत्रुओं का नाश करता है।
५. दुष्टों को हीन बल बनाता है।
६. सभी प्रकार की कोमलता, मधुरता प्रदान करता है।
७. शरीर, मन, मस्तिष्क का पोषण करता है।
८. उन्नति-पथ पर चलने की प्रेरणा देता है।
९. कर्त्तव्य पालन के लिए जाग्रत रखता है।

दाक्षायण हिरण्य

अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त ३५ में बताया गया है कि दाक्षायण हिरण्य को धारण करने से दीर्घायुष्य, ओजः, तेजः की वृद्धि होती है। इस सूक्त में दाक्षायण और दक्षमाण ये दो शब्द हिरण्य (सुवर्ण) के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। वेद में दक्ष शब्द शक्ति का वाचक है।

दाक्षायण, दक्षमाण का अर्थ शक्तिवर्द्धक है। हिरण्य शब्द का अर्थ करते हुए निरुक्तकार यास्क ने लिखा है कि 'हितरमणीयं हृदय रमणीयम्' अर्थात् हिरण्य (सुवर्ण) हितकारक, रमणीय होता है और हृदय की रमणीयता बढ़ाने वाला होता है। शक्ति बढ़ाने के लिए सुवर्ण का उपयोग स्वर्णभस्म आदि सेवन से किए जाते हैं, स्वर्णतापी जल पिया जाता है और आभूषण के रूप में धारण किया जाता है।

ओषधि के रूप में सुवर्ण की विशेषता है कि वह शरीर के अन्दर हड्डियों के जोड़ों में प्रविष्ट होकर स्थिर रूप से रह जाता है और मृत्यु-काल तक साथ देता है। सुवर्ण का ओषधि के रूप में उपयोग अनेक असाध्य रोगों को दूर करता है। और आभूषण के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप में, यज्ञोपवीत के रूप में, रक्षाकरण्ड के रूप में, वलय (कङ्कण) के रूप में शरीर में धारण करने से शरीर आरोग्य रहता है, तेज की वृद्धि होती है और यदि सोना पहने हुए कोई आदमी मर जाता है और उसी रूप में उसे जला दिया जाता है, तो चिता-भस्म में सब का सब सोना मिल जाता है, घटता नहीं है।

सोना चाहे आभूषण के रूप में शरीर में धारण किया जाए, चाहे ओषधि के रूप में सेवन किया जाए, उसे अभिमंत्रित अवश्य करा लिया जाए या वैद्यकीय रूप से सेवन किया जाए, तो अत्यधिक शक्तिवर्द्धक हो जाता है, बल और आरोग्य प्रदान करता है। जो आथर्वण वैद्य सुवर्ण-धारण की विधि बताते हैं, अथर्ववेद में उन्हें 'दाक्षायण' कहा गया है और परिशुद्ध सोने को भी 'दाक्षायण' कहा गया है। जो व्यक्ति सुवर्ण धारण कर अपना ओज, तेज, बल बढ़ाना चाहता है, उसे 'दक्षमाण' बताया गया है।

दाक्षायणी विद्या

शक्ति, ओज और तेज बढ़ाने वाली विद्या का नाम दाक्षायणी विद्या है। शक्ति प्राप्त करने की विधि का उपदेश इस विद्या में दिया गया है। दाक्षायणी विद्या का विशेष संबंध मन से रहता है। उत्तम मन की भावना से युक्त विशेष शक्ति-सम्पन्न यह विद्या मानसिक दुर्बलता, मानसिक हीन भाव, दुष्प्रवृत्तियों, दुराचरणों, दुर्भावनाओं, दुरित, दोषों को दूर कर मनुष्य को निर्मल मन, निर्मल हृदय, ओजस्वी, तेजस्वी और शक्ति-शाली बनाती है।

सुवर्ण के साथ रत्न धारण करना भी आरोग्यप्रद है। ओषधियों की जड़ों को अभिमंत्रित कर सोने के तावीज में धारण करना आरोग्यप्रद है। आयु, तेज, बल, वीर्य, दीर्घायु शब्द जीवनी शक्तियों के सूचक हैं। सुवर्ण धारण करने से ये जीवनी-शक्तियाँ बढ़ती हैं। सुवर्ण का प्रयोग करने से, धारण करने से, क्रूर से क्रूर राक्षस, पिशाच दूर भागते हैं, सुवर्ण में अमित शक्ति बतलाते हुए अथर्ववेद इसे 'देवों का प्रथम ओज' कहता है; क्योंकि सुवर्ण में देवों की अनेक शक्तियाँ निहित रहती हैं।

सुवर्ण के गुणों का वर्णन यजुर्वेद (३४।५०) में इस प्रकार है—

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम्॥

—दीर्घायु करने वाला, कान्ति बढ़ाने वाला, शोभा, लावण्य और पुष्टिवर्द्धक, खदान से प्राप्त होने वाला (उन्नति की ओर ले जाने वाला), तेज को बढ़ाने वाला, विजय, विभूति को प्राप्त कराने वाला हिरण्य (सुवर्ण) मेरे शरीर में प्रविष्ट हो।

सुखप्राप्ति

प्रायः लोग धन, संपत्ति, प्रभुता, सत्ताधिकार, सन्तान, वाहन आदि को सुख मानते हैं, किन्तु अथर्ववेद धन, सत्ता आदि को आनन्द का विघातक मानता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद (कां० १, सूक्त २६) का उपदेश है कि 'सूर्य, वायु, जल से मैत्री भाव, साम्य-भाव, आत्मभाव स्थापित करो। धन, सत्ता किसी को मिले या न मिले, परन्तु सूर्य का प्रकाश, वायु और जल सभी के लिए सुलभ है। इन्द्र, सविता, भग, मरुत् आदि देवों से सख्यभाव स्थापित करने से सुख मिलता है और इनके प्रतिकूल आचरण करने से दुःख प्राप्त होता है।'

जिस प्रकार इन्द्र, सविता आदि वाह्य देवताओं के हमारे मित्र बन कर रहने से हमारा तेज, बल, आरोग्य, दीर्घायु, सुख बढ़ता है; उसी प्रकार हमारे शरीर में अंग-अंग पर उन वाह्य देवताओं के प्रतिनिधि देवता निवास करते हैं, उनसे सहयोगी भाव रखने से हमें आरोग्य सुख, शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—

१. सविता (सूर्य) देवता आकाश में है, उसी का प्रतिनिधि अंश रूप देव हमारी आँखों में, नाभिस्थान के सूर्य चक्र में रह रहा है। आँखों में स्थित सौरशक्ति हमें दृष्टि देती है और नाभिचक्र में स्थित सौरशक्ति पाचनशक्ति प्रदान करती है। यदि सूर्य देव से हम मैत्री भाव रखें—सौरशक्ति का संयमन, नियमन करते रहें, तो हमारी दृष्टि कभी क्षीण नहीं हो सकती और पाचन शक्ति कभी दुर्बल नहीं बन सकती।

२. मरुत्—वायु देवता हमारे फेफड़ों में तथा शरीर के विभिन्न स्थानों में निवास करता है। यदि हम इस देवता के विरुद्ध आचरण करें, तो उसके प्रकोप से अनेक प्रकार के वायुरोग, वातरोग शरीर में उत्पन्न होंगे।

इसी तरह इन्द्रदेव हमारे अन्तःकरण में तथा अन्यान्य देव शरीर के विभिन्न स्थानों में निवास करते हैं। इन देवताओं से सहयोगी भाव, सख्य भाव स्थापित करने से सुस्वास्थ्य, आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है। यही सुख है, इनके विरुद्ध आचरण करने से दुःख का ओर-छोर नहीं मिल पाता है।

सुख-प्राप्ति के उपाय

आयु, तेज, ओज, बल वृद्धि और शान्ति ही सुख है। इस प्रकार का आयु आरोग्यवर्द्धक सुख सूर्य, वायु, जल आदि प्राकृतिक पदार्थों से उचित संयमन, नियमन करने से प्राप्त होता है; जैसे : सूर्यनमस्कार क्रिया, सूर्यार्घ्य, सूर्यताप का सेवन आदि, शुद्ध-स्वच्छ वायु का सेवन, शुद्ध जल का सेवन, जल में डूब कर अघमर्षण करना। और सुखदायक निम्नांकित सूक्त का नित्य जप करना चाहिए।

ॐ शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥

हस्ताभिमर्ष से रोग-निवारण

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त १३ में सात ऋचाएँ हैं। इन ऋचाओं को पढ़ते हुए रोगी के शिर से पैरों तक हस्तस्पर्श या हस्ताभिमर्श करने से असाध्य रोग भी दूर हो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाते हैं। उक्त सूक्त के पहले मंत्र में देवों की सहायता से पतित, रोगी, पापी मनुष्य का उद्धार कर उसे ऊँचे उठाने की प्रार्थना है। आदमी किसी प्रकार के लोभ के वशीभूत होकर पाप-कर्म करता है। पाप कर्म करने से वह आधि (मानसिक) या व्याधि (शारीरिक) रोगों से ग्रस्त हो जाता है और क्षीण होता हुआ मृत्यु को प्राप्त करता है। ऐसी अवस्था में पहुँचा हुआ आदमी उक्त सूक्त से हस्ताभिमर्ष कराने से नीरोग, दीर्घायु होता है।

हस्त-स्पर्श से आरोग्य प्रदान करनेवाली विद्या भारत में हज़ारों वर्ष पूर्व से प्रचलित है। यूरोप आदि पश्चिमी देशों में इसी से मिलती-जुलती विद्या 'मेस्मेरिज़्म' है, जिसमें संकल्प शक्ति प्रधान होती है। अथर्ववेद तथा योगशास्त्र में दृष्टिक्षेप से, शब्दोच्चारण से तथा इच्छा मात्र से आरोग्य प्रदान कराने वाले योग हैं। इसके अनुष्ठान, साधना और अभ्यास की क्रियाएँ वेदों और योगशास्त्र में सविधि बताई गई हैं। अथर्ववेद के उपर्युक्त सूक्त के मंत्र ५, ६, ७ में संकल्प शक्ति, मन की एकाग्रता का विधान है। रोगी पर हस्ताभिमर्ष करने वाला प्रयोगकर्त्ता कैसे बोले, यह इस सूक्त के पाँचवें, छठे और सातवें मंत्र में इस प्रकार बताया गया है—

'हे रोगी, मेरे अन्दर शान्ति और समता स्थापित करने की क्षमता है और विकारों तथा दोषों को दूर करने का गुण भी है। इन क्षमताओं के साथ मैं तेरे समीप आया हूँ, तू पूरी तरह विश्वास कर। मैं अपने पहले सामर्थ्य से तुझमें शक्ति निहित कर रहा हूँ और अपने दूसरे गुण से तेरे रोग को समूल नष्ट करता हूँ। तू निःसन्देह नीरोग, स्वस्थ होकर दीर्घजीवन प्राप्त करेगा' : मंत्र ५।

'हे रोगी, देख ? मेरा यह हाथ बहुत ही शक्तिशाली और प्रभावशाली है और दूसरा हाथ तो उससे भी अधिक बलवान् है। मेरा यह हाथ सम्पूर्ण ओषधियों की शक्तियों से भरपूर है और दूसरा हाथ निःसन्देह मङ्गलभवन अमंगलहारी है। दोनों हाथों के स्पर्श से तू निश्चय ही आरोग्य प्राप्त करेगा' : मंत्र ६।

'हे रोगी, मेरे दोनों हाथ अपनी दस अँगुलियों से तेरा रोग दूर कर रहे हैं। देख, मैं तेरे अंगों का स्पर्श कर रहा हूँ, तेरा रोग दूर कर रहा हूँ। तू स्वस्थ हो गया, आनन्द और आरोग्य से भरपूर हो गया है। अब तेरे रोग-दोष निरस्त हो गए हैं। यह मैं अपने सामर्थ्यवान् और प्रभावशाली शब्दों से तुझे बतला रहा हूँ' : मंत्र ७।

इस हस्ताभिमर्ष क्रिया पर विश्वास न करने वाले तार्किक, अनास्थावान् लोग भी असाध्य रोगों से तीन दिन में मुक्त होते देखे गए हैं।

दुर्गति-निवारण

अथर्ववेद के काण्ड २, सूक्त १० में दुर्गति-निवारण के उपाय बताए गए हैं। आठ मंत्रों के इस सूक्त में दुर्गति का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

१. क्षेत्रिय—माता, पिता या नाना, नानी से प्राप्त होने वाले वंश-परंपरागत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रोग या संकट अथवा विपत्तियाँ 'क्षेत्रिय' कहलाती हैं। ये जन्म से ही खून के साथ सन्तान में आ जाती हैं।

२. निर्ऋति—विनाश, अधोगति, आपस की फूट, दुष्प्रवृत्तियों की उत्पत्ति, बाधाएँ, असफलताएँ, दुरवस्था, विपरीत परिस्थितियाँ, शाप, दुर्भाग्यजन्य अरिष्ट, हीनावस्था, दरिद्रता और हीन-विचार 'निर्ऋति' कहलाते हैं। निर्ऋति ही दुर्गति कही जाती है।

३. जामिशंस—जामि+शंस। जामि के अर्थ हैं : वंश, वंशानुगत संबंध, जल, अंगुली, सम्मान्य स्त्री, पुत्री, वहिन, पुत्र वधू। और शंस के अर्थ : प्रशंसा, अनुशंसा, प्रार्थना, सदिच्छा, शाप, कष्ट, आपत्ति-विपत्ति, कलंक, लाञ्छन, अपयश, अपकीर्ति हैं। इस प्रकार 'जामिशंस' का तात्विकअर्थ संबंधों के कारण आनेवाली विपत्ति, अपकीर्ति, कलंक, स्त्री विषयक लाञ्छन होता है।

४. द्रुहः—द्रोह, अपघात, घात-प्रतिघात, विश्वासघात प्राप्त होना 'द्रुह' है।

५. वरुणपाश—जो सब से श्रेष्ठ शक्ति धारण करती है, उस देवता का नाम वरुण है। कुकर्मी, दुराचारी, कपटी, विश्वासघाती मनुष्य वरुणपाश से बाँधे जाते हैं। वरुणपाश से आवद्ध व्यक्ति स्वप्न में जल और सर्प देखता है। प्रत्यक्ष में भी जल और सर्प का भय वना रहता है। वरुणपाश से बँधा हुआ व्यक्ति संकटग्रस्त, रोगग्रस्त रहता है। सफलताएँ असफलता में बदल जाती है, नेकी बदी बन जाती है, वह हताश, निराश, आकुल-व्याकुल वना रहता है।

६. यक्ष्मः—शरीर और शरीर की सप्त धातुओं को क्षीण करने वाला रोग।

७. दुरितं—मनुष्य के हृदय में छिपी हुई दुष्टता दुरित (दुः+इत्) कहलाती है। मन, बुद्धि, इन्द्रियों और शरीर में जो विजातीय दुष्टभाव या पदार्थ प्रविष्ट रहते हैं, जिनसे उन स्थानों में विकार उत्पन्न होकर मनुष्य को कष्ट देते हैं, वे सब दुरित हैं।

८. अवद्यं—जिनसे अधःपतन होता है, आपत्तियाँ आती हैं, कष्ट मिलते हैं, उन्हें अवद्य कहते हैं। अवद्य का अर्थ है निन्दा करने योग्य।

९. ग्राही—जो जकड़ कर रखता है, वह ग्राही होता है। ग्राही से छुटकारा मिलना कठिन होता है। शरीर में गठिया, संधिवात रोग ग्राही होते हैं। आत्म-दौर्बल्य, विषय-वासना आदि भी ग्राही हैं।

१०. अराति—कृपणता, अनुदारता को अराति कहते हैं।

११. तमः—आलस्य, निष्क्रियता को तम कहते हैं।

ये ग्यारह मनुष्य की दुर्गति के लक्षण हैं। ये मनुष्य की शारीरिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, मानसिक अवनति के साथ संबंध रखते हैं। विपत्तियाँ तो सहस्रों प्रकार की होती हैं। किन्तु उक्त ११ विपत्तियाँ मुख्य हैं, शेष इन्हीं की शाखा-प्रशाखा हैं। इस प्रकार की दुर्गति से छुटकारा दिलाने वाला उक्त सूक्त है। इस सूक्त के मंत्रों से जलाव-सेचन तथा हवन करने से दुर्गति से मुक्ति मिलती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ५

अरिष्ट अनिष्टादि निवारण-विधान

१. कृत्या परिहरण

कृत्याएँ कई प्रकार की होती हैं—दैवी, आसुरी, मानुषी, राजसी, कापालिकी आदि। कृत्या एक प्रकार का अभिचार कर्म है। स्त्रियों, नीच पुरुषों, राजाओं, ब्राह्मणों, कापालिकों, शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किए जाने वाले घातक मारण प्रयोगों को कृत्या कहा जाता है। कृत्या नाम इसलिए पड़ा है कि जिस पर प्रयोग किया जाता है, उसकी मिट्टी की मूर्ति अथवा कागज, कपड़े पर आकृति बना कर घातक, मारण मंत्रों का प्रयोग किया जाता है अथवा खाने, पीने की चीजों में मंत्र से अभिमंत्रित कोई चीज मिलाकर खिला-पिला दी जाती है। कृत्या को देशी भाषा में 'मूठ' भी कहा जाता है। यह प्रयोग व्यक्ति विशेष पर किया जाता है अथवा पूरे परिवार पर या घर, खेत आदि पर; उद्योग, व्यवसाय, रोजी, रोजगार पर किया जाता है। कृत्या के प्रयोग की कई तरह की विधियाँ हैं और कई प्रकार से कृत्या-दोषों से लोग पीडित हुआ करते हैं। इस घातक प्रयोग से रक्षा करने के लिए, कृत्या दोष हटाने के लिए, अथर्ववेद में अत्यन्त सफल विधान बताए गए हैं।

जिसे पीडित करना हो, उसके वस्त्रों पर, उसके बालों पर, उसके खान-पान की चीजों पर यह विनाशकारी कृत्या प्रयोग किया जाता है। गाँव के बाहर, गाँव के चौहट्ट पर, चौराहे पर या घर के दरवाजे पर हड्डी, मांस गाड़ कर या सात प्रकार के अनाज रख कर अथवा सिन्दूर, काजल से सजाकर मनुष्य की प्रतिकृति को चौराहे पर या दरवाजे पर रख दिया जाता है। इस तरह विविध प्रकार के टोटका, टोना आदि सब कृत्या कहे जाते हैं।

कृत्या-दोष दूर करने का सरल उपाय जलावसेचन और हवन है। पहले तीन दिन तक निम्नांकित नौ सूक्तों के मंत्रों से पीडित के शिर के ऊपर विनियोग पूर्वक जलावसेचन करे, फिर इन्हीं सूक्तों से तीन दिन तक विनियोग सहित हवन करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से भयंकर से भयंकर कृत्या-दोष शान्त हो जाता है।

कृत्या-दोष प्रतिहरणार्थ विनियोग : हवन मंत्र

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य एकादश सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणम् देवता। चतुष्पदा विराट् गायत्री, त्रिपदा परोष्णिक्, पिपीलिकमध्या निचृत् छन्दांसि। कृत्यादोष निवारणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्यामेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥
स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥
प्रतितमभिचर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥
सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य सप्तदश सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। अपामार्गो वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। कृत्यादोष परिहरणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वास्मा ओषधेत्वा ॥१॥
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम्।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२॥
या शशाप शपनेन याघंमूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥
क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य अष्टादश सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः । अपामार्गो वनस्पतिः देवता । अनुष्टप्, बृहतीगर्भा छन्दसी । कृत्यादोष परिहरणे जलाभिषेचने, होमे च विनियोगः ।

ॐ समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्रीं समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥१॥
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुला फट् करिक्रति ॥३॥
सहस्रधामन्विशिखान्विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥५॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शक्ते पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६॥
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७॥
अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

४. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य ऊनविंशति सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः । अपामार्गो वनस्पतिः देवता । अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिश्छन्दसी । कृत्यादोष परिहरणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः ।

उतो अस्यवन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भवमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्यार्थो हन्तासि रक्षसः ॥३॥
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमद्यौषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन्नाम ते पिता ।
प्रत्यग्वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५॥
असद्भूम्याः समभवत्तद्यामेति महद्वचः ।
तद्वै ततो विधूपायत्प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ॥६॥
प्रत्यङ् हि संवभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

५. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चम काण्डस्य चतुर्दश सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् देवते । अनुष्टुप्, भुरिक्, त्रिपदा•विराट्, निचृद्-बृहती, त्रिपदासाम्नी त्रिष्टुप्, स्वराट् छन्दांसि । कृत्या परिहरणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः ।

ॐ सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वा खनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१॥
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान्दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२॥
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥४॥
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान्कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९॥
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०॥
उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव ।
कृत्या कर्त्तारमृच्छतु ॥११॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णतु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१२॥
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१३॥

६. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चम काण्डस्य एकत्रिंशत् सूक्तस्य शक्रः ऋषिः । कृत्यादूषणम् देवता । अनुष्टुप्, बृहतीगर्भा, पथ्यावृहती छन्दांसि । कृत्यादोष निवारणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः ।

ॐ यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१॥
यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२॥
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३॥
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४॥
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५॥
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६॥
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७॥
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८॥
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
स्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९॥
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्या ॥१०॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शक्ते पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेथ्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२॥

७. विनियोगः—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य पञ्चाधिकषष्ठि सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः । अपामार्गवीरुत् देवता । अनुष्टुप् छन्दः । कृत्यादोष परिहरणे जलावसेचने होमे च विनियोगः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ प्रतीचीन फलो हि त्वमपामार्गरुरोहिथ।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥
यद्दुष्कृतं यच्छमलं यद्वा चेरिम पापया।
त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२॥
श्यावदता कुनखिनां वण्डेन यत्सहासिम।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

८. विनियोगः—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य अष्टम काण्डस्य पञ्चमसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणं मन्त्रोक्त देवताः। अनुष्टुप्, उपरिष्टाद्बृहती, त्रिपदा विराट्, गायत्री चतुष्पदा भुरिज्जगती, भुरिक्संस्तारपंक्तिः, ककुम्मती, चतुष्पदापुरस्कृतिजगती, त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदा जगती, पुरस्ताद्बृहती, त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदाजगती, पुरस्ताद् बृहती, जगतीगर्भा त्रिष्टुप्, विराड्गर्भा प्रस्तारपंक्तिः। विराट् त्रिष्टुप्, त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी छन्दांसि। कृत्यादोष निवारणे जलावसेचने, होमे, स्राक्त्यमणि बन्धने च विनियोगः।

ॐ अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणं सुमंगलः ॥१॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्नेनासुराम्पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान्विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः ॥४॥
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम्।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते।
सूर्य इव दिवमारुह्य विकृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधोहन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता
या उ चान्येभिराभृताः।
उभयोस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥
स इद्व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो विभर्तीमं मणिम् ॥१२॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो विभर्तीमं मणिम् ॥१३॥
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत ।
अविभस्त्वेन्द्रो मानुषे विभ्रत्संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्मदेवा अकृण्वत ॥१४॥
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥
अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान्संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥
असपत्नं नो अथरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूरपुरस्कृधि ॥१७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतांसर्वतो बृहदायुष्मांजरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥
आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥
अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥
स्वस्तिदा विशां पतिर्बृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रोवध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

विशेष—उक्त आठवें काण्ड के पाँचवें सूक्त से जलावसेचन, हवन करने के बाद मणिबन्धन प्रकरण (पृष्ठ ५६) में बताई गई विधि से स्फटिकमणि (रुद्राक्ष) अवश्य धारण करना चाहिए ।[1]

---

१. इसी प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हमारी पुस्तक 'रुद्राक्ष अभिज्ञान' में रुद्राक्ष धारण करने के सशक्त तांत्रिक विधि-विधान हैं ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

९. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य दशम काण्डस्य प्रथमं सूक्तस्य प्रत्यङ्गिरसः ऋषयः। कृत्यादूषणम् मन्त्रोक्ताः देवताः। अनुष्टुप्, महावृहती, विराड्नाम गायत्री, पथ्यापंक्तिः, पंक्तिः उरोवृहती, चतुष्पदा विराड्जगती, प्रस्तारपंक्तिः (विराड्), त्रिष्टुप्, चतुष्पदा जगती, एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्, त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री, त्रिपदा गायत्री, मध्येज्योतिष्मती, जगती, द्वयनुष्टुप्गर्भा पञ्चपदा जगती छन्दांसि। कृत्यादूषण परिहरणे जलावसेचने, होमे, सर्षप अभिमंत्रणे च विनियोगः।

ॐ यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप् नुदाम एनाम् ॥१॥
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं वन्ध्वृच्छतु ॥३॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४॥
अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक्प्रति प्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून्कृत्याकृतो जहि ॥६॥
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥
यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः।
शंम्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनः सरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥
यद्दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम।
अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणम् मोप तिष्ठतु ॥१०॥
यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्यात्सर्वस्मात्पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥
देवैनसात्पित्र्यान्नामग्राहात्संदेश्यादभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२॥
यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।
कर्तृ नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५॥
पराक्ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६॥
वात इव वृक्षान्नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तृन्निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७॥
यां ते वर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यांवलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८॥
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९॥
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०॥
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान्रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥२१॥
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४॥
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्त्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९॥
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून्कृत्याकृतो जहि ॥३१॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहासि ॥३२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेष—कृत्या-दूषण परिहरण के उपर्युक्त नौ सूक्तों से यह ज्ञात है कि कृत्या एक प्रकार का यातुकर्म है। कृत्या का प्रयोग किसी को विक्षिप्त बनाने, दीन-हीन, बेरोजगार बनाने, रोगग्रस्त होकर घुट-घुट कर मरने, चटपट मरने, समूल नष्ट होने आदि विविध उद्देश्यों और विविध विधियों से किया जाता है। अथर्ववेद (१०।१।३) से यह स्पष्ट है कि कृत्या के प्रयोग स्त्री, पुरुष, राजा, ब्राह्मण और शूद्र जनों द्वारा किया जाता है। किसी के द्वारा किसी पर की गई कृत्या के निवारण के लिए जो उपाय किए जाते हैं, उन्हें अथर्ववेद प्रत्यभिचरण, प्रतिहरण, प्रतिसर, प्रत्यक् और प्रतीची कहता है। मनुस्मृति (९।२९०) में कृत्या के विरोध का उल्लेख मिलता है—

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो विशतोदमः।
मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासु च॥

मनु भी कृत्या को अभिचार कर्म स्वीकार करते हैं। अथर्ववेद में कृत्या शब्द के प्रयोग अनेकानेक स्थलों पर मिलते हैं। व्याकरण के अनुसार करणार्थक 'कृ' धातु से 'कृत्यः' शब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतया कृत्या शब्द किसी कृत्य—कार्यव्यापार से सम्बद्ध है और गौण रूप से कृत्या 'यातु' कर्म को कहा जाता है। सामान्य बोलचाल में 'यातु' को जादू, टोना या इन्द्रजाल कह सकते हैं।

अथर्ववेद (१०।१।१) में कृत्या के स्वरूप का जो वर्णन है, उसमें 'कृत्या' शब्द के अर्थ से हाथों द्वारा बनाई जाने वाली 'कृति' का बोध होता है। इसी सूक्त की दूसरी ऋचा से जाना जाता है कि कृत्या शिर, नाक और कान वाली एक आकृति, प्रतिकृति होती है, जिसे कुश (दर्भ) में, खेत में, श्मशान भूमि में और घर की आग में फेंका जाता है।

अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त ३१ से जान पड़ता है कि कृत्या का निक्षेप, उसकी स्थापना मिट्टी की कच्ची हाँड़ी में, सात प्रकार के अनाज में, कच्चे मांस में, आदमी की आकृति में (मिट्टी, कपड़ा, कागज की बनी हुई), चलने वाले पदार्थों, वाहनों में, सभा-मण्डप में, जुएँ के पाँसा, कौड़ी में, सेना में, बाण में, दुन्दुभि में, कुएँ में, मनुष्य की हड्डी में और चिता भस्म में किया जाता है। कृत्यादोष निवारण के लिए जलावसेचन, होम के अतिरिक्त उक्त दसवें काण्ड के प्रथम सूक्त के ३२ मंत्रों से पीली सरसों अभिमंत्रित कर व्यक्ति के ऊपर या घर में जहाँ भी कृत्यादोष हो, छिड़कने से कृत्या दोष दूर हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. रक्षोघ्न चातनगण-विधान

चातन नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने भूत, प्रेत, पिशाच, दैत्य, दानव, राक्षस और घोर शत्रुओं द्वारा दी जाने वाली पीडाओं को तथा क्रूरकर्मा शत्रुओं और राक्षसों के विनाश से लिए अथर्ववेद की जिन ऋचाओं से रक्षोघ्न प्रयोग किए थे, उन सभी सूक्तों, ऋचाओं और अनुवाकों को एक समूह में संगृहीत कर उस समूह का नाम 'चातनगण' रख दिया गया और चातन ऋषि के नाम का अर्थ 'चातनं शत्रुबाधनं' प्रचलित हो गया।

'चातनगण' के मंत्र रक्षाकर्म में अत्यधिक प्रभावी और सफल हैं।

चातनकर्म की सरल प्रयोग विधि यह है—

१. चातनगण के सूक्तों के मंत्रों को विनियोग पूर्वक पढ़ते हुए पीडित व्यक्ति को गरुण पंख अथवा मोर पंख से झाड़ा देते रहना चाहिए। अथवा

२. कुश-अपामार्ग से जलाभिषेचन किया जाए। तीन दिन तक उपर्युक्त क्रिया करने के बाद चातनगण के मंत्रों से विनियोग पूर्वक हवन किया जाए।

हवन-सामग्री—राल, गुग्गुल, लोहबान, अपामार्ग, पिप्पली, पृश्निपर्णी, सहदेवी, अजाशृङ्गी, मयूरपंखी, शिवलिंगी के बीज।

समिधा—गूलर, पीपल, वट में से किसी एक वृक्ष की लकड़ियों की समिधा से हवन करना चाहिए।

३. हवन के बाद सदम्पुष्पा (सदाफूली, सदाबहार) के फूलों को अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त ४ से अभिमंत्रित कर दाहिनी भुजा में ताबीज में भर कर पहना जाए।

रक्षोघ्न-चातनगण : विनियोग : मंत्र

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य, सप्तम सूक्तस्य, चातनः ऋषिः। अग्निः (जातवेदाः) अग्नीन्द्रौ देवताः। अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् छन्दसी। अभिचारकर्म निवारणे, शत्रुबाधा विनाशने, पाशादि मोचने, रक्षोघ्ने, आसुरी बाधा, विपत्ति विनाशने, अभिमर्षणे, अभिषेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ स्तुवानामग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन्।
अग्ने तौलस्य प्राशान् यातुधानान् वि लापय ॥२॥
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहियातुधानान्नृचक्षः ।।४।।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ।।५।।
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ।।६।।
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ।।७।।

विशेष—निम्नलिखित प्रत्येक सूक्त में उसके ऋषि, देवता, छन्दों का उल्लेख करते हुए पूर्वोक्त विनियोग करना चाहिए ।

अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त ८

२. चातनः । बृहस्पतिः । अग्निषोमौ च, अग्निः (जातवेदाः) । अनुष्टुप्, बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

ॐ इदं हविर्यातुधानान् नदीफेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ।।१।।
अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ।।२।।
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ।।३।।
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ।।४।।

अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त १६

३. चातनः । अग्निः, इन्द्रः, वरुणः (दधत्यं सीसम्) । अनुष्टुप्, ककुम्मती-अनुष्टुप् ।

ॐ येऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ।।१।।
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदङ्ग यातुचातनम् ।।२।।
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ।।३।।
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसौ अवीरहा ।।४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त २८

४. चातनः । अग्निः, यातुधानीः । अनुष्टुप्, विराट्पथ्याबृहती, पथ्यापंक्तिः ।

ॐ उपप्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः ॥१॥
प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधा मिथो विकेश्यो वि घ्नतां यातुधान्यो
वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥

अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त १८

५. चातनः । अग्निः । (द्वैपदम्), साम्नीबृहती ।

ॐ भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२॥
अरायक्षयणमसि अरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥४॥
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥५॥

अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त २५

६. चातनः । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, भुरिक् ।

ॐ शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाऽहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥
अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥
गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥
पराच एनान्प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २०

७. मातृनामा । मातृनामा । अनुष्टुप्, स्वराट्, भुरिक् ।

ॐ आपश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥१॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि दिव्योषधे ॥२॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥
दर्शय मा यातुधानान्दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान्दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥
उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३६

८. चातनः । सत्यौजा अग्निः । अनुष्टुप्, भुरिक् ।

ॐ तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१॥
यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान्दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३॥
सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान्दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६॥
न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥९॥
अभि तं निर्ऋतिर्धत्तमश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
भल्वो यो मह्यं क्रुद्धयति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३७

९. वादरायणिः । अजशृङ्गी, अप्सरसः, औषधी अजशृङ्गी, अप्सरसः गन्धर्वाप्सरसः, अनुष्टुप्, त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, प्रस्तारपंक्तिः, परोष्णिक्, षट्पदा जगती, निचृत् ।

ॐ त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय ॥२॥
नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥
यत्रः वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत
यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६॥
आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेषः ॥७॥
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्व्यृषतु ॥८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान्मन्धर्वानवकादान्व्यृषतु ॥९॥
अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते-
स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥११॥
जाया इद्वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान्मा सचध्वम् ॥१२॥

अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त २९

१०. चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्, त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, पुरोऽति जगती विराड्जगती, अनुष्टुप् (भुरिक्, चतुष्पदा परावृहती ककुम्मती) ।

ॐ पुरस्ताद्युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग्भेषजस्यासि कर्त्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१॥
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२॥
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३॥
अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४॥
यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान्पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५॥
आमे सुपक्वे शवले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ॥६॥
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥७॥
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शमने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ॥८॥
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽमस्तु ॥९॥
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१०॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११॥
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत्पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्द्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३॥
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥
ताष्टाधीरग्ने समिधः प्रति गृह्णह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥१५॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ३२

११. चातनः, अथर्वा । अग्निः, रुद्रः, मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, प्रस्तारपंक्तिः ।

ॐ अन्तर्दावे जुहुता स्वेतद्यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद्रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१॥
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत्पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद्वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२॥
अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥३॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ३४

१२. चातनः । अग्निः । गायत्री ।

ॐ प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना संच पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥

अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त ४

१३. चातनः । इन्द्रासोमौ । जगती, त्रिष्टुप्, भुरिक्, अनुष्टुप् ।

ॐ इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
पराशृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्यमन्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२॥
इन्द्रसोमा दुष्कृतो वज्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्निंतप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५॥
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीं इव जिन्वतम् ॥६॥
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥७॥
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद्भ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥१०॥
परः सोऽस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीशे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४॥
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महतावधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं गूहमाना ।
वज्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वीच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदुक्तोभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदर्शनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥
इन्द्रोयातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥
प्रतिचक्ष्व विचक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम्।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशर्नि यातुमद्भ्यः ॥२५॥

३. रक्षघ्नेष्टि

आग्नेयास्त्र

रक्षोहण अनुवाक के अन्तर्गत पठित सूक्त (कां० ३।१, ३।२ और ८।३) चातन-गण कर्म-विधि के अतिरिक्त आग्नेयास्त्र और सम्मोहनास्त्र सिद्ध कर शत्रुओं या शत्रु-समूहों को पराङ्मुख कर हथियार डाल देने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। इन्हीं से भयंकर पिशाचों को भी नष्ट किया जाता है। आग्नेयास्त्र सिद्ध करने की प्रक्रिया जटिल है, सर्वसाधारण के लिए उपयोगी भी नहीं है। अतः हम भयंकर, दुर्दम्य, दुर्मद पिशाचों से उत्पन्न संकटों, पागलपन, हिस्टीरिया, विष-दोषों के निवारण में अमोघ तथा उच्चाटन, वशीकरण और गर्भ-रक्षण में कभी न विफल होने वाले आग्नेयास्त्र, सम्मोहनास्त्र के सुगम साध्य प्रयोग दे रहे हैं।

यह ध्यान रखा जाए कि उपर्युक्त प्रयोजनों में से जो प्रयोजन अभीष्ट हो, उस विषय का विनियोग किया जाए और विनियोग के अनुसार क्रिया की जाए। जैसे : शत्रुओं के संहार के लिए अथवा पिशाचों के क्षयार्थ आग्नेयास्त्र चलाया जाए, तो प्रयोग के आरम्भ में किए जाने वाले विनियोग में 'रक्षोहणं वाजिनमा०' (८।३) इस अनुवाक का विषय भी जोड़ दिया जाए। तत्पश्चात् पिशाच ग्रहग्रस्त व्यक्ति से अथवा शत्रु या शत्रुओं का नामोच्चारण कर क्रोधपूर्ण मुद्रा तथा कुपित वाणी से यह कहना चाहिए—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रक्षोहणं वाजिन मा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुपयामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातुनक्तम् ।

एतद् अनुवाक विनियोजक सूत्रोक्त फल कामोऽहं रक्षसां द्विषतामपहन्तारं वलं तत्साधनम् अन्नं वा तद्वन्तम् अग्निं घृतं सर्वतः क्षारयामि जुहोमि ।

इसके बाद आक (आकडा, मदार), खैर (कत्था), सरसों, शमी, अपामार्ग (चिचिडा, लटजीरा), इन्द्रजौ (मदार के फल का गूदा पिशाच-क्षय के प्रयोजन में मिलाया जाए), गुग्गुल, लोहबान को बबूल की समिधा से हवन किया जाए ।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य अष्टम काण्डस्य तृतीय सूक्तस्य चातनः ऋषिः । अग्निः देवता । त्रिष्टुप्, भुरिक्, पञ्चपदा बृहती गर्भा जगती, अनुष्टुप्, गायत्री छन्दांसि । पिशाच-क्षयणे (यदि शत्रु संहार का प्रयोजन हो, तो शत्रुसंहारार्थे कहा जाए) वीरणतूल इङ्गिडाज्येन होमे विनियोगः ।

हवन-मंत्र (पिशाचक्षयार्थ)

ॐ रक्षोहणं वाजिन मा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातुनक्तम् ॥१॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्नभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥
उभोभयाविन्नुप धेहि द्रंष्टौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुवि चिनोत्वेनम् ॥४॥
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५॥
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६॥
उतारब्धान्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥९॥
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त ए त्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२॥
परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवान्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४॥
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५॥
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान्देवः सविता ददातु पराभागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७॥
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८॥
त्वं नो अग्ने अधरादुदुक्तस्त्वं पश्चादुत रक्ष पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१९॥
पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात्कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०॥
तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥२१॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दूरेवा शिशीते शृंगे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४॥
ये ते शृंगे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मशंसिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किसीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा-
जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५॥
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥२६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्मोहन अस्त्र

शत्रु-पक्ष में विद्वेषण उत्पन्न करने के लिए तथा शत्रु-बल को क्षीण, स्तम्भित करने के लिए और शत्रु के अस्त्र-शस्त्र को स्तम्भित कर शत्रुदल को सम्मोहित करने के लिए सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग किया जाता है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चम काण्डस्य विंशति सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। वनस्पतिः दुन्दुभिः देवता। त्रिष्टुप्, जगती छन्दसी। शत्रुपक्ष विद्वेषणे, अस्त्र-शस्त्र, दुन्दुभिरादि वस्तुजातमभिमंत्रणे, अरिदल त्रासार्थे, उच्च स्वरेण उपस्थाने, होमे च विनियोगः।

उपस्थान—विनियोग करने के बाद निम्नांकित काण्ड ५ के बीसवें सूक्त को उच्च स्वर से पढ़ते हुए दोनों हाथ ऊपर तान कर सूर्य की ओर देखते हुए उपस्थान करना चाहिए। इस प्रकार नित्य उपस्थान करने से शत्रुओं का दमन होता है।

आत्मरक्षार्थ—इसी सूक्त (५।२०) से पीली सरसों अभिमंत्रित कर पास में रखने से हर प्रकार के संकटों, दुर्घटनाओं, आपत्तियों, विपत्तियों से रक्षा होती है। शत्रुओं, डाकुओं, हिंस्रक जीवों से घिर जाने पर अभिमंत्रित सरसों उन पर फेंकने से आत्मरक्षा होती है। संग्राम में विजय होती है।

ॐ उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्वानस्पत्य संभृत उस्रियाभिः।
वाचं शृणुवानो दमयन्त्सपत्नानित्सह इव जेष्यन्नभि तैस्तनीहि ॥१॥
सिंह इवास्तनीद् द्रुवयो विवद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२॥
वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित्।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान्प्रच्युता यन्तुशत्रवः ॥३॥
संजयन्पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व।
दैवी वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४॥
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः।
अमित्रसेनामभिजञ्जमानो द्युमद्वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक्ते ध्वनयो यन्तु शीभम्।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७॥
धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥८॥
संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद्वहुधा ग्रामघोषी।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान्कीर्ति बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रेयः केतो वसुजित्सहीयान्त्संग्रामजित्संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन्दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१०॥
शत्रूषाण्नीषाडभिमातषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं संग्रामजित्यायेषमुद्वदेह ॥११॥
अच्युतच्युत्समदो गभिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२॥

सम्मोहन अस्त्र प्रयोग

प्रतिद्वन्द्वी, प्रतिपक्षी, प्रतिद्वेषी, शत्रु तथा न्यायालय में प्रतिवादी या वादी और उसके वकील तथा न्यायाधीश को सम्मोहित कर अपने अनुकूल बनाने के लिए पीली सरसों में देशी खाँड़ मिलाकर का० ३, सूक्त १ से अभिमंत्रित करे। अभिमंत्रित करने से पूर्व किए जाने वाले विनियोग में वही प्रयोजन व्यक्त किया जाए जो अभीष्ट हो। जैसे उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, सम्मोहन, वशीकरण, शत्रु-पराजय, शत्रु-बल क्षयार्थ आदि इनमें से जो प्रयोजन अभीष्ट हो, उसी प्रयोजन का विनियोग करके सरसों अभिमंत्रित किए जाएँ, और यदि न्यायालय में कोई वाद हो, तो मुक़द्दमा में अपनी विजय के लिए न्यायाधीश को सम्मोहित करने का विनियोग करके सरसों अभिमंत्रित करना चाहिए।

उपर्युक्त किसी भी प्रयोजन के लिए अभिमंत्रित किए गए सरसों अभीष्ट सिद्धि के लिए पहले रात में २१ बार चारों दिशाओं में छोड़े जाएँ फिर चौरास्ते में सरसों रख दिए जाएँ।

और यदि न्यायालय में मामला-मुक़द्दमा हो, तो सुनवाई की तारीख से एक दिन पहले रात में उपर्युक्त प्रयोग करके दूसरे दिन न्यायालय में जाकर सरसों न्यायालय में बिखेर कर दाहने पैर का अँगूठा ज़मीन पर गड़ा कर दृढ़तापूर्वक खड़ा रहे। निश्चित विजय होती है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। सेना सम्मोहनं, अग्निः, मरुतः, इन्द्रः देवताः। त्रिष्टुप्, विराट्गर्भाभुरिक्, अनुष्टुप्, विराट् पुरउष्णिक् छन्दांसि। शत्रुगण सम्मोहने, मनः, बुद्धिं उच्चाटने, कीलने, वशीकरणे, शत्रुबलक्षयार्थे, न्यायालये विजयार्थे सर्षप अभिमंत्रणे विनियोगः।

१. आग्नेयास्त्र

ॐ अग्निर्नः शत्रून्प्रत्येतु विद्वान्प्रति दहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन्वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥
अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय ॥५॥
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

संग्राम में, संकटकाल में जीवन की रक्षा के लिए तथा चोरों, डाकुओं को विवश, निरुपाय बनाने के लिए और ज्ञात, अज्ञात शत्रुओं को सम्मोहित करने, वशीभूत करने अथवा उच्चाटन करने के लिए निम्नांकित 'आग्नेयास्त्र' से मार्जन और हवन करना चाहिए। इसी आग्नेयास्त्र से अभिमंत्रित पीली सरसों पास में रखना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं, चोरों, डाकुओं पर सरसों फेंक देने से वह निरुपाय हो जाते हैं।

यह ध्यान रखा जाए कि मार्जन, होम अथवा सर्षप (सरसों) अभिमंत्रण कर्म में जो प्रयोजन अभीष्ट हो, उसी का विनियोग किया जाए। हम जो विनियोग लिख रहे हैं, उसमें सभी प्रयोजनों का उल्लेख किया गया है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य द्वितीय सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। सेना सम्मोहनं अग्निः, इन्द्रः, द्यौः, मरुतः देवताः। त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, छन्दसी। संग्रामे, संकटे जीवन रक्षणार्थे, चौराणां, दस्यूनां निरुपायार्थे, शत्रूणां सम्मोहने, वशीकरणे, उच्चाटने, संघर्षे, विवादे विजयार्थे, असाध्य रोग निवारणे मार्जने, होमे, सर्षप अभिमंत्रणे विनियोगः।

२. आग्नेयास्त्र

ॐ अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
अयमग्निरमूमुहद्यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥
इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङ्ङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय ॥३॥
व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्यशत्रून् ॥५॥
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाशुपतास्त्र

पाशुपतास्त्र सिद्ध करने की सरल विधि ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है, क्योंकि पाशुपतास्त्र की प्राण प्रतिष्ठा करने, उसे सिद्ध कर प्रक्षेपण करने की विधि बहुत जटिल है और पूरे तीन वर्ष लग जाते हैं। सरल विधि द्वारा अभिमंत्रित पाशुपतास्त्र शत्रुबाधा का निवारण करता है, भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस, पिशाच की बाधाओं को तुरन्त दूर करता है। न समझ में आने वाली दुःसाध्य बीमारी, मृगी, मूर्च्छा, पागलपन की बीमारी, दुर्भाग्य, शाप को दूर करने में पाशुपतास्त्र अमोघ सिद्ध है।

प्रयोजन के अनुसार पहले विनियोग किया जाए, इसके बाद कुश को कुश पर रख कर उस पर पाशुपतास्त्र का अनुमंत्रण, आवाहन कर उसकी पूर्व लिखित विधि से प्राण प्रतिष्ठा की जाए, तदनन्तर पाशुपतास्त्र को अभिमंत्रित किया जाए। यही अभिमंत्रित कुश पाशुपतास्त्र बन जाता है, फिर इसी से रोग, दोष, पाप, शाप, भय, बाधा निवारण के लिए गंगा जल से रोगी या दुःखी, पीडित व्यक्ति पर जलाभिसेचन किया जाए। एक ही बार की क्रिया से अभीष्ट सिद्ध होता है, फिर भी जलाभिसेचन के ही मंत्रों को पढ़ते हुए उपस्थान कराया जाए।

यदि रोगी या पीडित व्यक्ति दूर हो, या किसी कारणवश प्रयोगकर्त्ता के निकट पहुँचने में असमर्थ हो, तो पाशुपत अस्त्र को जिन मंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है, उन्हीं मंत्रों से पीली सरसों विनियोगपूर्वक अभिमंत्रित कर दे दी जाए और अभिमंत्रित सरसों रोगी या पीडित व्यक्ति पर प्रक्षिप्त किए जाएँ, तो सभी रोग-दोष दूर होते हैं। इसी प्रकार प्रबल शत्रु पर विनियोग सहित अभिमंत्रित सरसों छोड़ देने से शत्रु स्वयंमेव परास्त हो जाता है अथवा पीडित हो जाता है।

निम्नांकित सात सूक्तों से विनियोगपूर्वक पाशुपतास्त्र का अभिमंत्रण, अनुमंत्रण किया जाए।

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य द्विसप्तति सूक्तस्य परुच्छेपः ऋषिः। इन्द्रः देवता। अत्यष्टिः छन्दः। पाशुपतास्त्र प्राणप्रतिष्ठा, अनुमंत्रणे, स्तवने, उपस्थाने, सर्षप अभिमंत्रणे च विनियोगः।

ॐ विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं
वृषमण्यवः पृथक्स्वः सनिष्यवः पृथक्।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥१॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता-
गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधिहविषो-
हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रि चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३॥

२. **विनियोग**—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य त्रिसप्तति सूक्तस्य वसिष्ठः ऋषिः । वसुक्रः, इन्द्रः देवते । विराट्, जगती, अभिसारिणी छन्दांसि । पाशुपतास्त्र प्राणप्रतिष्ठा, अनुमंत्रणे, स्तवने, उपस्थाने, सर्षप अभिमंत्रणे च विनियोगः ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥२॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवस्पतिः ॥४॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिस्य पौस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६॥

३. **विनियोग**—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य अष्टादश सूक्तस्य द्वितीय मंत्रस्य मेधातिथिः प्रियमेधश्च ऋषी । वसिष्ठः, इन्द्रः देवते । गायत्री छन्दः । पाशुपतास्त्र अभिमंत्रणे, उपस्थाने च विनियोगः ।

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तावेदु स्तोमं चिकेत ॥२॥

४. **विनियोग**—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य त्रिंशति सूक्तस्य तृतीय, चतुर्थ मंत्रस्य वरुः सर्वहरिर्वा ऋषिः । हरिः (इन्द्रः) देवते । जगती छन्दः । पाशुपतास्त्र अभिमंत्रणे, उपस्थाने च विनियोगः ।

ॐ सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य एकत्रिंशति सूक्तस्य प्रथम मंत्रस्य वरुः सर्वहरिर्वा ऋषिः। हरिः (इन्द्रः) देवते। जगती छन्दः। पाशुपतास्त्र अभिमंत्रणे, उपस्थाने च विनियोगः।

ॐ ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरये दधन्विरे ॥१॥

६. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य विंशति काण्डस्य षड्त्रिंशति सूक्तस्य नवम् मंत्रस्य भरद्वाजः ऋषिः। इन्द्रः देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। पाशुपतास्त्र अभिमंत्रणे, उपस्थाने च विनियोगः।

ॐ भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

७. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य चतुस्त्रिंशदधिकं शतमेकं सूक्तस्य शुक्र ऋषिः। वज्रः देवता। परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् छन्दांसि। पाशुपतास्त्र अभिमंत्रणे, उपस्थाने च विनियोगः।

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम्।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥
अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत्।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥२॥
यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिञ्जहि।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥३॥

विशेष—पाशुपत अस्त्र को उपर्युक्त विधि से तीन महीने तक नित्य अभिमंत्रित करने के वाद इन्हीं मंत्रों से हवन करना चाहिए।

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ६

मणिधारण-विधान

अथर्ववेद में सभी प्रकार के रोग-दोष, भय, बाधा, आधि-व्याधि, संकट, संघर्ष, आपत्ति, विपत्ति, दुःख-दैन्य, अरिष्ट-अनिष्ट निवारण के लिए मणि-बन्धन के प्रयोग बताए गए हैं, जो नितान्त उपयोगी और अमोघ हैं, कभी विफल नहीं होते हैं।

अथर्ववेद के भिन्न-भिन्न काण्डों में विभिन्न मणियाँ ये हैं—

अस्तृतमणि, औदुम्बरमणि, जङ्गिडमणि, दर्भमणि, प्रतिसरमणि, तलाशमणि, फालमणि, शतवारमणि, सपत्नक्षयणवरणमणि, अञ्जनमणि, हरिणमणि, अस्तृतमणि, अभीवर्तमणि, यवमणि, त्रिसन्ध्यामणि, अर्कमणि, आयमगनपर्णमणि, शंखमणि, हिरण्य-मणि, गोदामणि, वरणमणि, प्रतिसर-स्नाक्त्यमणि।

इनमें से वरणमणि, प्रतिसर-स्नाक्त्यमणि, हरिणमणि, शतवारमणि, शंखमणि, औदुम्बरमणि, जङ्गिडमणि, दर्भमणि, आयगमनपर्णमणि और तलाशमणि की पहचान कर उन्हें उनके गुण-धर्म के अनुसार विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग करने पर पूर्णरूप से सफल सिद्ध हुए हैं। शेष मणियों की वास्तविक पहचान में भ्रम होने के कारण हमने उनका उपयोग नहीं किया है। इसलिए जो हमारे द्वारा अनुभूत हैं, उन्हीं के प्रयोग लिख रहे हैं।

वरणमणि

अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त ३ में वरणमणि का परिचय देते हुए इस मणि के धारण करने से होने वाले लाभ विस्तार से वर्णित हैं। कौशिकसूत्र में वरणमणि का निर्देश है। कौशिकसूत्र के वार्तिककार दारिल-केशव ने वरण की पहचान बतलाते हुए लिखा है कि वरण एक प्रकार का विल्व वृक्ष है। यह पहचान सामान्यजन के लिए पर्याप्त नहीं है। वैद्यक निघण्टु ग्रन्थों में वरुण की पहचान बताई गई है। अधिकांश लोग वरण को वरुण वृक्ष ही समझते हैं। किन्तु वरण वृक्ष की अपनी अलग पहचान है, इसका अपना अस्तित्व है। और इसी नाम से ही जाना जाता है। कश्मीर में टिक्कड़

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गाँव में पहाड़ पर रागना देवी का मन्दिर है। पहाड़ चढ़ते हुए दोनों ओर वरण वृक्ष खड़े मिलते हैं। पहाड़ के ऊपर मंदिर के आस-पास भी वरण वृक्ष हैं। वहाँ के निवासी वरण नाम से ही इन वृक्षों को पहचानते हैं। साथ ही यह भी जानते हैं कि यह वृक्ष गलित कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, रक्त विकार को दूर करने में अद्वितीय है। वरण वृक्ष के फल, फूल, मूल, त्वचा, पत्ते सभी उपयोगी हैं। भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए इनका उपयोग मणि के रूप में किया जाता है।

वरणमणि धारण करने की सामान्य विधि यह है कि किसी महीने की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि से लेकर पूर्णमासी तक जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए मणि धारण करना हो, विनियोग में उसी प्रयोजन का उल्लेख किया जाए। विनियोग करते समय प्रयोजन के साथ मणि अभिमंत्रणे, होमे विनियोगः कहा जाए। त्रयोदशी से लेकर पूर्णमासी तक तीन दिन विनियोगपूर्वक मणि का अभिमंत्रण और होम करने के बाद मणि को गले में या दाहिनी भुजा में धारण किया जाए।

कोई भी मणि हो, उसके सूक्त-मंत्रों से विनियोग, अभिमंत्रण और हवन तीन दिन तक करने के बाद मणि-धारण करनी चाहिए। यही प्रत्येक मणि के धारण करने की सामान्य विधि है। हम यहाँ पर वरणमणि धारण करने का प्रयोजन शत्रु बाधा-निवारण रखकर प्रयोजन के अनुसार विनियोग में मणि का अभिमंत्रण और होम का उल्लेख कर रहे हैं। इससे भिन्न किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए मणिधारण में उक्त विधि के अनुसार विनियोग में प्रयोजन के अनुसार अभिमंत्रण, हवन आदि का उल्लेख करना चाहिए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य दशम काण्डस्य, तृतीय सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः देवताः। अनुष्टुप्, भुरिक् त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, भुरिक्, षट्पदा जगती छन्दांसि। (अमुकस्य) शत्रु बाधा नाशने, वरणमणि अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

विनियोग करके वरणमणि को ताम्रपात्र पर रखकर कुश-अपामार्ग से उस पर गंगा जल छिड़कते हुए 'सपत्नो क्षयणो मणिः' सूक्त के अयं मे वरणो मणिः इस प्रथम मंत्र से लेकर एवा मे वरणो मणिः पच्चीसवें मंत्र तक के मंत्रों को पढ़ना चाहिए। इस तरह मणि का अभिमंत्रण कर इसी सूक्त के इन्ही पच्चीस मंत्रों से हवन किया जाए।

अभिमंत्रण : हवन मंत्र

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून्प्र मृणीहि दुरष्यतः ॥१॥
प्रैणान्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वः श्वः ॥२॥
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान्पादयाति पूर्वस्तान्दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्वरणो वारयिष्यते ॥४॥
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥
आरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणो वारयिष्यते ॥७॥
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८॥
वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधर्मं तमः ॥९॥
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणोमणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥
अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून्वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११॥
इमं विभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥
यथा वातो वनस्पतीन्वृक्षान्भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान्मे भङ्धि पूर्वाञ्जातां उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१३॥
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षानप्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान्मे प्साहि पूर्वाञ्जातां उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४॥
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान्जातां उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात्पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन्तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१॥
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२॥
यथा यशो यजमाने यथास्मिन्यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन्परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४॥
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

निम्नांकित प्रयोजनों की सिद्धि के लिए वरणमणि धारण की जाती है।

शत्रुबाधा (भूत-प्रेत, पिशाच आदि की भी बाधा), अभिचार प्रयोग नाश के लिए। दुःख, दारिद्रय, दैन्य, संकट, संघर्ष दूर करने के लिए। दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारण के लिए, निर्ऋति (दुर्गति) नाश के लिए, वरुणपाश से मुक्ति के लिए, क्षेत्रिय-रोग, चर्म रोग, रक्त विकार और असाध्य रोगों को दूर करने के लिए। इनके अतिरिक्त पाप-शाप की निवृत्ति के लिए, श्री-कीर्ति-विजय विभूति प्राप्त करने के लिए वरणमणि धारण की जाती है। हर प्रकार के रोग दूर करने के लिए वरण वृक्ष की जड़ की मणि गले में धारण की जाती है। निर्ऋति, दुर्भाग्यजन्य संकटों को दूर करने के लिए वरण वृक्ष के पुष्पों की मणि धारण की जाती है। अभीष्ट सिद्धि, अभ्युदयार्थ वरण वृक्ष के शाखा-खंड धारण किए जाते हैं। इन्हें सोने, चाँदी या ताँबे की ताबीज में भर कर धारण करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आञ्जनमणि

आञ्जन एक ओषधि है। हिमालय तथा तराई क्षेत्र में उत्पन्न होती है और जन साधारण में इसी नाम से पहचानी जाती है। अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ८, काण्ड ७ सूक्त ३१, काण्ड १२ सूक्त १ मंत्र ३०, काण्ड १९ सूक्त ४४ तथा ४५, काण्ड १९ सूक्त ६९ तथा ७० में आञ्जन ओषधि को दिव्य ओषधि, देववन्दित ओषधि कह कर इसकी महिमा का विशद गुण-गान किया गया है।

आञ्जन ओषधि की मणि दुर्भाग्य, दुर्गति, संकट, संघर्ष को दूर करती है। शत्रुओं को पराजय देती है। कारवंकल, कैंसर जैसे फोड़ों को जड़ मूल से नष्ट करती है। नेत्र रोग, चर्म रोग दूर करती है। पाप, शाप, अरिष्ट, अनिष्ट का निवारण करती है। देवापराध, प्रज्ञापराध, दुःस्वप्न, इति-भीति, भय से रक्षा करती है। इस मणि की सब से बड़ी विशेषता यह है कि मनुष्यों और पशुओं की रक्षा, अभिवृद्धि समान रूप से करती है। उत्तर-प्रदेश (गंगा-यमुना के मध्य भाग) के लोग आञ्जनमणि रोगग्रस्त पशुओं के गले में बाँधा करते हैं। यह जड़ी यमुना नदी के किनारों में भी पैदा होती है। इस मणि को भी त्रयोदशी से पूर्णमासी तक तीन दिन तक विनियोग पूर्वक अभिमंत्रित कर, होम करके धारण करना चाहिए।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य नवम सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। त्रैककुदाञ्जनम् देवता। अनुष्टुप्, ककुम्मती, पथ्यापंक्तिः छन्दांसि। पाप-शाप, ताप, रोग-दोष निवारणे, वरुणपाशादि मोचने, क्षेत्रिय रोग निवारणे, निर्ऋत दोष विनाशने, भूत-प्रेत-पिशाच, यक्ष बाधा, शत्रु बाधा विनाशने, दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे, अभ्युदयार्थे, अभिवृद्धयर्थे, आरोग्यार्थे आञ्जनमणि वन्धने अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥
असन्मन्त्राद्दुष्वप्न्याद्दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा वलास आदहिः ।
वार्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

हरिणमणि

हरिण कई जाति के होते हैं। वारासिंगा भी हरिण जाति का होता है। वारासिंगा की सींग से ही हरिणशृङ्गमणि की पहचान करके इससे जो प्रयोग किए गए हैं वे अव्यर्थ सिद्ध हुए हैं। हरिणशृङ्ग सन्निपात ज्वर में घिसकर छाती में लेप किया जाता है। गलसूये, (मम्स) गण्डमाला में अभिमंत्रित हरिणशृङ्ग अद्भुत लाभ पहुँचाती है। क्षेत्रिय रोग, राजयक्ष्मा, कुष्ठ रोग, मृगी, मूर्च्छा, अपस्मार, कास-श्वास रोगों में हरिणशृङ्ग रामबाण है। यह मणि मृतवत्सा रोग, दोष, वन्ध्यात्व का निवारण करती है। गर्भस्राव को तुरन्त रोक देती है। हरिणशृङ्ग की उपयोगिता ऋग्वेद (१।२३।२०) में भी बताई गई है। हरिणशृङ्गमणि के उपयोग दो प्रकार से किए जाते हैं—एक तो हरिणशृङ्ग को विनियोगपूर्वक अभिमंत्रित कर हवन करके रख दिया जाता है और गलसूये, मम्स, गण्डमाला, सन्निपात, जोड़ों के दर्द, कुष्ठ रोग में शृङ्ग को पानी में घिस कर पीड़ित स्थान पर लेप किया जाता है। दूसरा यह कि हरिणशृङ्ग का छोटा-सा टुकड़ा अभिमंत्रित करके ताँबे की ताबीज में बंद करके बाँधने से मृगी, मूर्च्छा, अपस्मार, कासश्वास रोग दूर होते हैं। मृतवत्सा दोष, वन्ध्यात्व दोष, गर्भस्राव आदि दूर होते हैं। अभुक्त मूल नक्षत्र में उत्पन्न सन्तान को यह मणि पहना देने से मूल नक्षत्रजन्य अरिष्टों का निवारण होता है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य सप्तम सूक्तस्य, भृग्वङ्गिराः ऋषयः। हरिणः, तारके, आपः, यक्ष्मनाशनम् देवताः। अनुष्टुप्, भुरिक् छन्दसी। नक्षत्र-दोष, गृह दोष, स्वप्न दोष, कर्मज व्याधि, क्षेत्रिय रोग, वात-पित-कफ जन्य रोग, स्नायु रोग, मस्तिष्क रोग, हृदय रोग, वृक्क रोग, उदर रोग, कुष्ठ रोग, वन्ध्यात्व दोष, मृतवत्सा दोष, गर्भस्राव आदि पाप-शाप जन्य विविध रोग-दोष निवारणे हरिण-शृङ्गमणि धारणे अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

अभिमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

जङ्गिडमणि

अथर्ववेद के काण्ड २ सूक्त ४ में तथा काण्ड १९ सूक्त ३४ और ३५ में जङ्गिड-मणि का परिचय, पहचान, गुण-धर्म और महत्त्व बताया गया है। 'जङ्गिण' नाम 'अर्जुन' वृक्ष का है। आयुर्वेद में अर्जुन वृक्ष का उपयोग अनेक रोगों में किया जाता है। इसी से 'अर्जुनारिष्ट' बनता है, अर्जुन वटी बनती है, अर्जुन की छाल का काढ़ा बनता है, जो हृदय रोग के लिए अद्वितीय औषधि है। किन्तु यहाँ पर मणि का प्रसंग है। जङ्गिडमणि के त्वक् (छाल), पुष्प का उपयोग मणिबन्धन में किया जाता है। जड़ भी मणि के रूप में धारण की जाती है और जड़, त्वक्, पुष्प को जङ्गिड के स्वरस में एक सहस्र पुटी वटी बनाई जाती है जो मणि के रूप में धारण की जाती है।

जङ्गिडमणि को सिद्ध करने, अभिमंत्रित करने की वही विधि है जो गत पृष्ठों में मणियों के प्रसंग में लिखी गई है। यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि जङ्गिड-मणि धारण करने से क्या लाभ होता है।

जङ्गिडमणि बाँधने से हर प्रकार के कृत्या दोष, हर प्रकार के अभिचार कर्म-जन्य रोग, दोष, भय, बाधाएँ दूर होती हैं। दैवी, आसुरी, मानवीय कोप, शाप-कुदृष्टि, क्रूर दृष्टि, सन्ताप, संत्रास, नैर्ऋति (दुर्गति) दोष, क्षेत्रिय रोग-दोष, कीटाणु जन्य रोग-दोष, राजयक्ष्मा, कैंसर, भगन्दर, नासूर आदि महाव्याधियाँ, स्नायुदौर्बल्य, नाड़ी दोष, मस्तिष्क विकार, रक्त विकार, हृदय रोग, वृक्क रोग, मूत्राशय रोग, पक्वाशय रोग, यकृत रोग, विष, कीटाणुजन्य व्रण, असाध्य स्थिर रोग, स्पर्शजन्य रोग दूर होते हैं। इस मणि के बाँधने से शत्रु पर विजय प्राप्त होती है। अर्थोत्थापन होता है। मनोबल बढ़ता है, इन्द्रिय बल, स्नायु बल की वृद्धि होती है।

जङ्गिडमणि को सन-सनई-पटसन-जूट के धागे में पिरोकर रोग-दोष निवारण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के लिए गले में पहनना चाहिए। संग्राम, संघर्ष, मामला-मुकद्दमा में शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए दाहिनी भुजा में बाँधना चाहिए।

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशत् काण्डस्य, चतुस्त्रिंशत् सूक्तस्य अंगिराः ऋषयः। वनस्पतिः, लिङ्गोक्ताः देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। दुरित-दुर्भाग्य-जनितारिष्ट निवारणे, पाशादि मोचने, नैर्ऋति दोष नाशने समस्त अरिष्टानिष्ट निवारणे, रोग-दोष, पाप-शाप, भय-बाधा निवारणे सतत अभ्युदयार्थे, अभिवृद्धयर्थे जङ्गिडमणि बन्धने अभिमन्त्रणे, होमे च विनियोगः।

अभिमन्त्रण : हवन मंत्र

ॐ जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥१॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये।
सर्वान्विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥२॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्त्रेव शातय ॥३॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वां जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन्निष्ठितं भूम्यामधि।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥६॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्यं।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८॥
उग्र इत्ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ।
अभीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥९॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥१०॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशत् काण्डस्य पञ्चत्रिंशत् सूक्तस्य अङ्गिराः ऋषयः। वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, निचृत्, त्रिष्टुप् छन्दांसि। धन-धान्य, श्री-समृद्धि प्राप्त्यर्थे, दुर्हृदानां बाधा निवारणे, घोरचक्षुषां पापानां नाशने, आयुष्यार्थे, आरोग्यार्थे, परितः रक्षणार्थे जङ्गिडमणि अभिमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥२॥
दुर्हार्दः सघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात्परि मोत भव्याद्दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वांस्तान्विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य चतुर्थ सूक्तस्य अथर्वा ऋषि. । (चन्द्रमाः) जङ्गिडः देवते । अनुष्टुप्, विराट् प्रस्तारपंक्तिः छन्दांसी । शारीरिक, मानसिक रोग-दोष, ईर्ष्या, घृणा, ग्लानि निवारणे, लूता, विस्फोटक-विद्रधिः, अपस्मार, विष, व्रण, गलितकुष्ठ निवारणे दीर्घायुष्णार्थे जङ्गिडमणि अभिमंत्रणे, होमे च विनियोगः ।

ॐ दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो
दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं विभृमो वयम् ॥१॥
जङ्गिडो जम्भाद्विशराद्विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥२॥
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥३॥
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥
शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५॥
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

जङ्गिडमणि का अभिमंत्रण और फिर होम शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी से पूर्णमासी तक प्रत्येक दिन तीनों प्रकार के मंत्रों से विनियोग और हवन द्वारा करना चाहिए। जङ्गिड (अर्जुन) वृक्ष के मूल, त्वक्, पुष्प आदि की मणि से अधिक सशक्त, तत्काल प्रभावकारी और कभी भी व्यर्थ न होने वाली मणि अर्जुन वृक्ष के बन्दा की होती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्जुन वृक्ष का बन्दा यदि मिल जाएं, तो उसके शाखामूल को मणि के रूप में अभिमंत्रित कर सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा और जस्ता पंच धातुओं की तावीज में भर कर धारण करने से अपूर्व लाभ होता है। यह हमारा अनुभव है। अर्जुनवृक्ष का बाँदा चित्रकूट, बुन्देलखण्ड के जंगलों में अधिक है। वहाँ इसे 'कौहा' कहा जाता है।

औदुम्बरमणि

अथर्ववेद (काण्ड १९ सूक्त ३१) में वर्णित औदुम्बरमणि का विशद महत्त्व है। औदुम्बर नाम गूलर का है। महाराष्ट्र में इस वृक्ष को दत्तात्रेय कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे 'ऊमर' कहा जाता है। गूलर एक ऐसी महौषधि है कि इसकी जड़, त्वक् (छाल), शाखा, पर्ण (पत्तियाँ), फल और गूलर के वृक्ष का दूध रोग, दोष दूर करने में अमोघ सिद्ध हैं। यहाँ पर मणिबन्धन के प्रसंग में धनक्षय हो जाने पर औदुम्बरमणि धारण करने से धन-धान्य, सम्पत्ति, समृद्धि की वृद्धि होती है। शरीरगत, मनोगत सभी रोग-दोषों का शमन होता है। सन्तानहीनता दोष निवृत्त होता है। औदुम्बरमणि संघर्षों, संकटों से रक्षित रखती है, शत्रु बल क्षयकारक है। इसके बाँधने से ओज, तेज, वर्चस्व, मेधा की वृद्धि होती है। बन्ध्यात्व दोष, मृतापत्य दोषों का निवारण होता है। इस मणि के धारण करने से आँत संबंधी रोग नहीं होते हैं। यह मणि तुष्टि, पुष्टि प्रदान करती है। पूर्ववत् विधि से मणि को अभिमंत्रित कर हवन करके धारण करना चाहिए। मणि के रूप में गूलर की जड़ ही ग्राह्य है।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशत् काण्डस्य एकत्रिंशत् सूक्तस्य सविता (पुष्टिकामः) ऋषिः। औदुम्बरमणिः देवता। अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, विराट् प्रस्तार पंक्तिः, पञ्चपदाशक्वरी, विराडास्तार पंक्तिः छन्दांसि। औदुम्बरमणि धारणे अभिमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

अभिमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१॥
यो नो अग्निर्ग्रहपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः।
गृह्णे ३हं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥७॥
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥८॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्टया सह जिज्ञसे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥९॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सहस्वारा-
दरातिमगर्तिं क्षुधं च ॥११॥
ग्रामणीरषि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सर्नि मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

गूलर के वृक्ष के ऊपर शाखाओं पर उगे हुए बन्दा को यदि उपर्युक्त विधि से सिद्ध कर धारण किया जाए, तो यह गूलर की जड़ से बनाई गई मणि से लाखों गुना अधिक फल देने वाली मणि होती है ।

शतवारमणि

अथर्ववेद (काण्ड १९ सूक्त ३६) में शतवारमणि बन्धन का परिचय दिया गया है। आयुर्वेदिक ओषधि शतावर को अथर्ववेद में शतवारः कहा गया है। आयुर्वेद में शतावर के सैकड़ों गुण बताए गए हैं। यह सन्ततिप्रद, शक्तिप्रद, वीर्यस्तम्भनकारी, गर्भपुष्टिकर होता है। जिन स्त्रियों या पशुओं का दूध सूख गया हो, या कम निकलता हो अथवा विकार ग्रस्त हो गया हो, तो शतावर पिलाने से दुग्ध विशुद्ध होकर पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाता है। इसलिए इसे 'बहुदुग्धप्रद' कहा गया है। ओजवर्द्धक, वर्चसूवर्द्धक यह महोषधि कुलक्षय दोष निवारक है। अथर्ववेद में बताया गया है कि शतावर के अग्रभाग से भूत-प्रेत-राक्षस आदि की बाधाएँ दूर होती हैं। शतावर की जड़ से जादू, टोना, टोटका और अभिचार कर्मजन्य बाधाएँ दूर होती हैं तथा जड़

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के मध्य भाग से पूर्वजन्मकृत पापों और राजयक्ष्मा जैसी कर्मज व्याधियों का शमन होता है।

शतवारमणि के संबंध में हमने अनुसन्धान से जो अनुभव प्राप्त किया है, वह यह कि जिस गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र हो, उस दिन गंगा जल और कुश से शतावर का अभिषेचन शन्नो देवीरभिष्टय० (अथर्ववेद १।६।१-४) मंत्र से करके निम्नांकित विनियोग करे—

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊविंशति काण्डस्य सप्तत्रिंशत् सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् आस्तारपंक्तिः, त्रिपदा महावृहती, पुरोष्णिक् छन्दांसि। आयुरारोग्यवर्चस् वृद्ध्यर्थे दैन्य-दुरित-दुर्भाग्य, नैर्ऋत पाशादि निवृत्त्यर्थे, अभ्युदयार्थे अभिवृद्धयर्थे, अभीष्ट सिद्ध्यर्थे शतवारो दिव्योषधीः गृह्णार्थे विनियोगः।

इसके बाद नीचे लिखे मंत्रों से हवन करे।

ॐ इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्भर्गो यशः सह ओजो वयो वलम्।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो वलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

इसके बाद उसी दिन (गुरु-पुष्य योग) से नित्य तीन दिन तक अभिमंत्रण, हवन करके धारण करे।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य षट्त्रिंशत सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। शतवारः देवः। अनुष्टुप् छन्दः। शतवारोमणिरनुमंत्रणे, होमे विनियोगः।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ शतवारो अनीनशद्यक्ष्माञ्रक्षांसि तेजसा।
आरोहन्वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्मति तत्रति ॥२॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वां दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्।
दुर्णाम्नः सर्वान्हित्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४॥
हिरण्यशृङ्गः ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वतीनां शतवारेण वारये ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस प्रकार शतावर (एक या अनेक) को सिद्ध कर चाहे ताबीज में भरकर पहने या ऊन के धागा में पिरोकर माला की भाँति गले में पहन लेना चाहिए।

शतावर के इस तरह के प्रयोग के संबंध में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह हर प्रकार के दुःख-दैन्य, अभाव, संकट, संघर्ष, बाधा दूर कर अभ्युदय प्रदान कराने में अद्वितीय है।

दर्भमणि

अथर्ववेद (काण्ड १९ सूक्त २८, २९, ३०, ३२, ३३) में दर्भमणि का विशद वर्णन है। दर्भ नाम कुश का है। हमने इस संबंध में जो अनुभव किया है, उसके अनुसार सामान्य कुश की अपेक्षा कुश का बन्दा तथा हरिद्वारी कुश अत्यन्त फलदायक सिद्ध हुए हैं। हमारे विश्वास और प्रयोग द्वारा प्राप्त अनुभव के अनुसार यदि कुश के बन्दा की मणि धारण की जाए, तो सर्वोत्तम है अन्यथा हरिद्वारी कुश की मणि धारण करनी चाहिए।

दर्भमणि धारण करने से नैर्ऋति दोष, यमदोष, कृत्या दोष, अभिचार-कर्म-जन्य दोष तिरोहित होते हैं। मृत्यु का भय, विपक्षियों द्वारा किए जाने वाले षडयन्त्रों को यह मणि निरस्त करती है। सुरक्षा के अतिरिक्त यह आयु, बल, यश, श्री, ऐश्वर्य की वृद्धि करती है। पाप-शाप का प्रतारण करती है। शत्रु को निष्क्रिय, निरीह बना देती है। सारांश यह कि दर्भमणि बाह्य, आभ्यंतर की सभी बाधाओं को दूर करती है और आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक सभी प्रकार के दोषों का निवारण करती है।

कुश का बन्दा या हरिद्वारी कुश स्वयं ग्रहण करे या बाजार से प्राप्त कर गंगा-जल से उसे पवित्र कर पूर्वोक्त विधान के अनुसार तीन दिन तक निम्नांकित पाँच सूक्तों से अभिमंत्रित तथा हवन कर गले में या भुजा में धारण करनी चाहिए।

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य अष्टाविंशति सूक्तस्य ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) ऋषिः। दर्भमणिः मन्त्रोक्ताश्च देवताः। अनुष्टप् छन्दः। दर्भमणि अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

अभिमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥
द्विषस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः।
दुर्हृदः सर्वांस्त्वं दर्भ धर्म इवाभिन्त्संतापयन् ॥२॥
धर्म इवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥
वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥
कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥
पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥
विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य ऊनत्रिंशत् सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः । दर्भमणिः देवता । अनुष्टुप् छन्दः । दर्भमणि अनुमन्त्रणे, होमे च विनियोगः ।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥
मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥
मन्थ दर्भ सपत्नान्मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान्दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥
ओष दर्भ सपत्नान्मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान्दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥
दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वांदुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य त्रिंशत् सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः । दर्भमणिः देवता । अनुष्टुप् छन्दः । दर्भमणि अनुमन्त्रणे, होमे च विनियोगः ।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः ॥१॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भं ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥३॥
सपत्नक्षयणं दर्भं द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥
यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो विन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

४. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य द्वात्रिंशत सूक्तस्य, भृगुः ऋषिः (आयुष्कामः) । दर्भ देवता । अनुष्टुप्, पुरस्ताद्बृहती, त्रिष्टुप्, जगती छन्दांसि । दर्भ अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः ।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं बध्न्याम्यायुषे ॥१॥
नास्य केशान्प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ॥५॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान्दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून्कृधि ॥६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥७॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद्यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं विभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परिपातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०॥

५. विनियोग —ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशति काण्डस्य त्रयस्त्रिंशत् सूक्तस्य भृगुः ऋषिः । दर्भः देवता । जगती, त्रिष्टुप् आर्षी पंक्तिः, आस्तारपंक्तिश्छन्दांसि । दर्भ-मणि अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः ।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३॥
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥
दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५॥

प्रतिसरमणि

अथर्ववेद (काण्ड ८ सूक्त ५) में प्रतिसरमणि के गुण-धर्म का वर्णन है। इसे स्नाक्त्यमणि के नाम से भी उक्त सूक्त में सम्बोधित किया गया है। कौशिक सूत्र (८।१९) में भाष्यकार दारिल-केशव ने प्रतिसरमणि की पहचान सिलुत्ककः (अयं प्रतिसरः इति सिलुत्ककः) से की है। अन्यत्र 'राजनिघण्टु' में इसे पीतमणि-पुष्पराग :— तिलकवृक्षनिर्मितोमणिः पुखराज रत्न अथवा तिलक वृक्ष से पहचाना गया है। 'सिलुत्ककः' की पहचान हमें कहीं भी नहीं मिली है। पीतमणि और तिलक वृक्ष की मणियों में वह गुण नहीं हैं, जो अथर्ववेद में प्रतिसर—स्नाक्त्यमणि के बताए गए हैं। हमने इसकी पहचान एकमुखी रुद्राक्ष से की है। हमने एकमुखी रुद्राक्ष में उन सभी गुणों का समावेश पाया है, जो प्रतिसर—स्नाक्त्यमणि के हैं। नेपाल नरेश के राजगुरु स्व०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हेमराज शर्मा ने नेपाल राजकीय ग्रन्थागार से ताड़पत्र पर लिखित हमें दो प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथ दिखाए थे—अंशुदीपिका तथा रत्नदीपिका। रत्नदीपिका में एकमुखी रुद्राक्ष (रुद्राक्ष) को स्राक्त्यमणि से अभिहित किया गया है। इसी आधार पर हमने एकमुखी रुद्राक्ष और स्राक्त्यमणि, प्रतिसरमणि के गुण-धर्मों का अध्ययन कर दोनों में समानता पाई है। नाम, रूप, गुण और धर्म में स्राक्त्यमणि और रुद्राक्ष में पूर्ण समानता और अभिन्नता है। प्रतिसर मणिसूक्त से अभिमंत्रित रुद्राक्ष वही लाभ देता है, जो अथर्ववेद में प्रतिसरमणि के बताए गए हैं।

विनियोग—ॐ अस्य अथर्थवेदस्य अष्टम काण्डस्य, पञ्चम सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणं, मन्त्रोक्त देवताः। अनुष्टुप्, उपरिष्टाद्वृहती, त्रिपदाविराड् गायत्री, चतुष्पदा भुरिग्जगती, भुरिक् संस्तारपंक्तिः, ककुम्मती, चतुष्पदा पुरस्कृतिर्जगती, त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदा जगती, पुरस्ताद्वृहती, जगतीगर्भा त्रिष्टुप्, विराड्गर्भा प्रस्तारपंक्ति, विराट् त्रिष्टुप्, त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी छन्दांसि। प्रतिसर (स्राक्त्य) मणि अनुमंत्रणे, होमे च विनियोगः।

अनुमंत्रण : हवन मंत्र

ॐ अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्नेनासुरान्पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान्विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः ॥४॥
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम्।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्या
स्वयंकृता य उ चान्येभिराभृताः।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्मै मणिं वर्म वध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥
स इद्व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो विभर्तीमं मणिम् ॥१२॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो विभर्तीमं मणिम् ॥१३॥
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत ।
अविभस्त्वेन्द्रो मानुषे विभ्रत्संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥
अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान्संजयो मणिः ।
प्रजा धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विद्धयन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥
आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥
अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो वध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा
अभयंकरो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

स्राक्त्यमणि (रुद्राक्ष) को किसी महीने की शुक्लपक्ष त्रयोदशी से लेकर पूर्णमासी तक तीन दिन उक्त सूक्त के मंत्रों से गंगाजल और कुश से अभिमंत्रित कर इन्हीं मंत्रों से हवन करके हवनाग्नि में मणि को धूपित किया जाए। तीन दिन यह क्रिया समाप्त होने के बाद उसी समय निम्नलिखित अघोर मंत्र और महासंजीवन मंत्रों से १०८ बार हवन कर सोने के तार या लाल रेशमी डोरा में पिरो कर मणि को गले या दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अघोर मंत्र

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः शर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररुपेभ्यः ।।

महासंजीवनी मंत्र

ॐ हौं जूं सः त्र्यम्वकं यजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ।।

इस मणि को धारण करने से शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार के रोगों का शमन होता है। भव रोग, कर्मजव्याधियों से मुक्ति मिलती है। अभिचार कर्म, कृत्या प्रयोग का कोई प्रभाव नहीं होता है। शत्रुबाधा नहीं रहती है। शत्रु पर विजय प्राप्त होती है। धन-धान्य-सन्तान-सुख की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। ओज, तेज, वर्चस्व की वृद्धि होती है। श्री-कीर्ति-विजय विभूति मिलती है। आकाशीय वज्रपात से सर्वत्र रक्षा होती है। हर प्रकार की दुर्घटनाओं से रक्षा होती है। सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं; सर्प, व्याल आदि विषधर जन्तुओं से पूर्ण रक्षा होती है। यह मणि वज्रकवच बन कर धारण करने वाले की रक्षा करती है। मेधा, बुद्धि, प्रतिभा और धी को निर्मल बनाती है। हृदय-दौर्वल्य, कायरता, असमंजस को दूर कर संकल्प बल, निश्चय बल और दृढ़ भावना उत्पन्न करती है। विवेक जाग्रत कर हर काम में सफलता प्रदान करती है।

दो वर्ष तीन मास तक धारण करने के बाद पुनः उक्त मंत्रों से अभिमंत्रित कर हवन कर मणि की प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जिस दिन मणि को धारण करे उसी दिन से महासंजीवनी मंत्र का जप १०८ बार मणि को ताम्रपात्र पर रख कर मणि को देखते हुए करना चाहिए। नित्य प्रातःकाल संजीवन महामंत्र पढ़ते हुए मणि को गंगा जल में डुबाकर उस जल का पान करना चाहिए। यह मणि शिव-स्वरूप होती है। इस की पवित्रता का ध्यान बराबर रखना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ७

अर्थोत्थापन कर्म-विधान

जब कोई मनुष्य निरन्तर उद्योगरत, कार्यरत, श्रमरत रहने पर भी अपने कार्य-व्यापार में विफल रहता है, लाभ की अपेक्षा हानि उठाया करता है; उसके अर्थोपार्जन में अनेक प्रकार की वाधाएँ, रुकावटें उपस्थित हुआ करती हैं, तो इस प्रकार के सोए हुए भाग्य को जगाने के लिए, अथर्ववेद में अर्थोत्थापन (धन को उठाना) प्रयोग बताए गए हैं।

'कौशिक सूत्र' के भाष्यकार दारिल-केशव ने अर्थोत्थापन के जो कर्म बताए हैं; उनके विधान में जटिल कर्मकाण्ड है, अनेक प्रकार की कर्मकाण्डीय सामग्री जुटानी पड़ती है और यह कर्मकाण्ड किसी आथर्वण विद्वान् द्वारा ही कराए जाने योग्य होता है। जो व्यक्ति लगातार हानि उठा रहा हो, घाटा और असफलता की मार से त्रस्त हो, उसके लिए अर्थोत्थापन का कर्मकाण्डप्रधान विधान संभव नहीं है। हम अर्थोत्थापन का सरल, सहज विधान यहाँ दे रहे हैं। इस विधान में विनियोग करके जप या जलाव-सेचन अथवा हवन से प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। यहाँ लिखे जाने वाले विधान पूर्ण रूप से सफल और अनुभूत हैं।

सामान्य विधि

अर्थोत्थापन कर्म प्रथम तीन दिनों तक किया जाता है। इस प्रथम कर्म में अर्थोत्थापनगण के सूक्तों से अर्थोत्थापन में आने वाले, होने वाले विघ्नों के शमन के लिए विनियोगपूर्वक जलावसेचन करके अर्थोत्थापनी ऋचाओं से उपस्थान किया जाता है।

तदनन्तर तीन दिनों तक हवनीय ऋचाओं से होम किया जाता है। इस तरह छह दिनों में अर्थोत्थापन कर्म समाप्त होता है। मात्र इतनी ही क्रिया से सोया हुआ भाग्य जाग उठता है। सौभाग्य का उदय होता है। अर्थोपार्जन में सफलता मिलती है। वाणिज्य, व्यापार, उद्योग, नौकरी जो भी कार्य किया जाए, उसमें पूरी सफलता मिलती है।

 CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जलावसेचन

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य चतुर्थ सूक्तस्य, सिन्धुद्वीपः ऋषिः। (अपांनपात् सोमः,) आपः देवताः। गायत्री, पुरस्ताद्बृहती छन्दसी। अर्थोत्थापने, विघ्ननिवारणे जलावसेचने च विनियोगः।

ॐ अम्वयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिवन्ति नः। सिन्धुभ्यःकर्त्वं हविः ॥३॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशस्तिभिररश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥४॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य पञ्चम सूक्तस्य, सिन्धुद्वीपः ऋषिः। (अपांनपात् सोमः,) आपः देवताः। गायत्री, वर्द्धमाना छन्दसी। अर्थोत्थापने विघ्ननिवारणे, जलावसेचने च विनियोगः।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥३॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीचर्षणीनाम्। अपो या चामि भेषजम् ॥४॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य षष्ठ सूक्तस्य, सिन्धुद्वीपः (अथर्वाकृतिर्वा,) ऋषिः। अपांनपात् आपः, आपः सोमोऽग्निश्च देवताः। गायत्री, पथ्यापंक्तिः छन्दसी। अर्थोत्थापने विघ्ननिवारणे, जलावसेचने च विनियोगः।

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥२॥
आपः प्रणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक च सूर्यं दृशे ॥३॥
शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवानः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥

४. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य त्रयस्त्रिंशत् सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः। (चन्द्रमाः,) आपः देवते। त्रिष्टुप् छन्दः। अर्थोत्थापने विघ्ननिवारणे, जलावसेचने च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे वहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

५. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य चतुर्विंशत सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः । आपः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । अर्थोत्थापने जलावसेचने च विनियोगः ।

ॐ हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन्हृद्द्योत भेषजम् ॥१॥
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्यो प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

६. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य सप्तपञ्चाशत सूक्तस्य तृतीय मंत्रस्य शन्तातिः ऋषिः । अग्निः, इन्द्रः । पथ्यावृहती छन्दः । अर्थोत्थापने विघ्न-शमनार्थे, जलावसेचने च विनियोगः ।

ॐ शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥

७. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य ऊनषष्ठि सूक्तस्य, अथर्वा ऋषिः । रुद्रः, अरुन्धती, ओषधिः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । अर्थोत्थापने विघ्नशमनार्थे, जलावसेचने च विनियोगः ।

ॐ अनुडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥२॥
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके बाद निम्नांकित मंत्रों से विनियोगपूर्वक घी की आहुति देनी चाहिए।

विनियोग : आहुति मंत्र

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य त्रयोदश सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। वरुणः, सिन्धुः, आपः, इन्द्रः देवताः। अनुष्टुप्, निचृत्, विराड्जगती, निचृदनुष्टुप् छन्दांसि। अर्थोत्थापने आज्याहुतौ विनियोगः।

ॐ यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥
यत्प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥२॥
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम्।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वो हितम् ॥३॥
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥
आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥

वाणिज्य, व्यवसाय की उन्नति-समृद्धि संवर्धनार्थ

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य पञ्चदश सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः (पण्यकामः)। विश्वेदेवाः इन्द्राग्नी देवते। त्रिष्टुप्, भुरिक् त्र्यवसाना षट्पदा, बृहतीगर्भा, विराडत्यष्टिः विराड्जगती, अनुष्टुप्, निचृत् छन्दांसि। वाणिज्यार्थे, व्यवसायार्थे, पण्यकामार्थे जपे, होमे च विनियोगः।

ॐ इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा नि षेध ॥५॥
येम धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥६॥
उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥
विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य, एकपञ्चाशत सूक्तस्य, शन्तातिः ऋषिः । आपः, वरुणः देवते । त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती छन्दांसि । अर्थोत्थापने विघ्नशमनार्थे होमे च विनियोगः ।

ॐ वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥
आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत्तव धर्मा सुयोषिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३॥

अर्थोत्थापन

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीय काण्डस्य विंशति सूक्तस्य वसिष्ठः ऋषिः । अग्निः, अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः, सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, अग्निः, इन्द्रवायू, अर्यमा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजी, विश्वाभुवनानि, पञ्चप्रदिशः, वायुस्त्वष्टा देवताः । अनुष्टुप्, पथ्या-पंक्तिः, विराड्जगती छन्दांसि । अर्थोत्थापने होमे च विनियोगः ।

ॐ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१॥
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्द्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥
इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्दानकामश्च नो भुवत् ॥६॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥
दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चम काण्डस्य सप्तम सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः । बहुदैवत्यम्, अरातयः, सरस्वती देवताः । अनुष्टुप्, विराड्गर्भा प्रस्तारपंक्तिः, पथ्यावृहती, प्रस्तारपंक्तिः छन्दांसि । अर्थोत्थापने होमे च विनियोगः ।

ॐ आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो-
रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१॥
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वर्नि व्यथयीर्मम ॥२॥
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥३॥
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतितिषु ॥४॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन वभ्रुणा ॥५॥
मा वर्नि मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी
आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥६॥
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्महो ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

३. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तम काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य अथर्वा (ब्रह्मवर्चस् कामः) ऋषिः । आत्मा देवता । त्रिष्टुप्, विराट् जगती छन्दसी । अर्थोत्थापने होमे विनियोगः ।

ॐ धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥१॥
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत्स भुवत्पुनर्मघः
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत्स आभवत् ॥२॥

४. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य द्विषष्ठिः सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः । रुद्रः, वैश्वानरः, वातः, द्यावापृथिवी देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । अर्थोत्थापने विघ्नविनाशने होमे च विनियोगः ।

ॐ वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१॥
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३॥

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ८

संकटमोचन-विधान

१. वृहच्छान्तिकर्म-विधान

पूर्वजन्म तथा इस जन्म के समस्त पाप, शाप, ताप, रोग, दोष तथा दुरित, दैन्य, दुःख, दारिद्रय, ऋण, अल्पायु और नक्षत्र-दोष, ग्रह-दोष; भूत, प्रेत पिशाच, ब्रह्मराक्षसजन्य आदि समस्त प्रकार की बाधाएँ। मस्तिष्क रोग, हृदय रोग, यौन रोग, यकृत रोग, वृक्क रोग, राजयक्ष्मा आदि सभी प्रकार के असाध्य रोग और लगातार श्रम करने पर भी सफलता न मिले; संकट, संघर्ष, विपत्ति, बाधाएँ घेरे रहें। पितृदोष, कुलदोष, देवापराध, अभिचार-कर्मजन्य विपत्तियाँ, सन्तान का न होना, सन्तान का जीवित न रहना, वैधव्य दोष, वन्ध्या दोष, गर्भपात आदि जो भी दुःख, संकट, रोग, आधि-व्याधि, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक कष्ट, त्रिविधताप का निवारण केवल वृहच्छान्तिगण के सूक्तों और मन्त्रों से जलाभिषेचन तथा हवन करने मात्र से सद्यः विनष्ट होते हैं। जब कोई उपाय सफल न होता हो, तो वृहच्छान्ति के प्रयोग करने से कभी भी असफलता नहीं होती। यह अत्यन्त सफल और अमोघ प्रयोग है।

वृहच्छान्तिगण के अन्तर्गत निम्नांकित सूक्त हैं—

अथर्ववेद—काण्ड ४, सूक्त २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३३।

अथर्ववेद—काण्ड ५, सूक्त ६।

अथर्ववेद—काण्ड ६, सूक्त १८, २३, २४, ५१, ५३, ५७, ५८, ६१, ६२, ८३, १०७।

अथर्ववेद—काण्ड ७, सूक्त ५२, ५८, ६६, ६७, ६८, ६९।

अथर्ववेद—काण्ड ११, सूक्त ६।

इन सूक्तों के मन्त्रों से पहले तीन दिन तक गंगाजल और कुश अपामार्ग से विनियोगपूर्वक जलाभिषेचन करना चाहिए। तदनन्तर तीन दिन तक इन्हीं मन्त्रों से चन्दन या आम अथवा बरगद की समिधाओं से अग्नि प्रज्ज्वलित कर अष्टांग हवन-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सामग्री से हवन किया जाए। जो भी प्रयोजन होगा, बृहच्छान्तिगण से सिद्ध होगा। अष्टांग हवन सामग्री पिछले पृष्ठों में लिखी जा चुकी हैं।

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २३

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थ काण्डस्य त्रयोविंशत् सूक्तस्य मृगारः ऋषिः। प्रचेता अग्निः देवता। त्रिष्टुप् पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, अनुष्टुप्, प्रस्तारपंक्तिः छन्दांसि। (प्रयोजने) जलाभिषेचने (होमे) विनियोगः।

ॐ अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम्।
अग्निमीडे रक्षोहणे यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥
येन ऋषयो वलमद्योतयन्युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥
येन देवा अमृतमन्वविन्दन्येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवाः स्वराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम्।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

विशेष—उपर्युक्त काण्ड ४, सूक्त २३ की तरह आगे के सभी सूक्तों के लिए प्रयोजन के अनुसार प्रत्येक सूक्त के ऋषि, देवता, छन्द से विनियोग किया जाए।

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २४

२. मृगारः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्, शाक्वरीगर्भा पुरःशक्वरी।

ॐ इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्नस्तोमा उप मेम आगुः।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानावानां बलमारुरोज।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
यस्य वशास ऋषभाष उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥
यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २५

३. मृगारः । सविता । वायुः । त्रिष्टुप्, अतिशक्वरी, पथ्यावृहती ।

ॐ वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग्वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २६

४. मृगारः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, अष्टिः, जगती, शाक्वरगर्भातिमध्येज्योतिः ।

ॐ मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये
अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये अमृतं विभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या विभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
ये उस्रिया विभृथो वनस्पतीन्ययोर्वा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २७

५. मृगारः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

ॐ मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३॥
अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥
यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥
तिग्मनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २८

६. मृगारः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, शक्वरी गर्भातिजगती ।

ॐ मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यौश्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३३

७. ब्रह्मा । पाप्मनाशनो अग्निः । गायत्री ।

ॐ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥१॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥२॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥३॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥५॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥६॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥७॥
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त ६

८. अथर्वा । सोमारुद्रौ । ब्रह्म, कर्माणि, रुद्रगणाः, सोमारुद्रौ, हेतिः, सर्वात्मारुद्रः । त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती, त्रिपदाविराण्नाम गायत्री, एकावसाना, द्विपदार्च्यनुष्टुप्, प्रस्तारपंक्तिः, पंक्तिः स्वराट्पंक्तिः ।

ॐ ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान्नो अत्र मा दभन्तद्व एतत्पुरो दधे ॥२॥
सहस्रधार एव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्तु सेतवे ॥३॥
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास
इन्द्रस्य गृहः ॥४॥
न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५॥
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७॥
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याञ्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥
योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रस्य गृहोऽसि।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११॥
इन्द्रस्य शर्मासि।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२॥
इन्द्रस्य वर्मासि।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३॥
इन्द्रस्य वरूथमसि।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त १९

९. शन्तातिः। चन्द्रमाः, देवजनाः, मनवः, विश्वाभूतानि, पवमानः, पवमानः, सविता, गायत्री, अनुष्टुप्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ।।१।
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ।।२।।
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान्पुनीहि चक्षसे ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त २३

१०. शन्तातिः । आपः । अनुष्टुप्, त्रिपदा गायत्री, परोष्णिक् ।

ॐ सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ।।१।।
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ।।२।।
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त २४

११. शन्तातिः । आपः । अनुष्टुप् ।

ॐ हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन्हृद्द्योत भेषजम् ।।१।।
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्यो प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः ।।२।।
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन् ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ५१

१२. शन्तातिः । आपः, वरुणः । त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती ।

ॐ वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।१।।
आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वे हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एभि ।।२।।
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्या चेत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ५३

१३. बृहच्छुक्रः । द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः, सविता, वैश्वानरः त्वष्टा । त्रिष्टुप्, जगती ।

ॐ द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन्दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१॥
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥३॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ५७

१४. शन्तातिः । रुद्रः । अनुष्टुप्, पथ्याबृहती ।

इदमिद्वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥१॥
जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२॥
शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ५९

१५. अथर्वा । रुद्रः, अरुन्धती, ओषधिः । अनुष्टुप् ।

ॐ अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥२॥
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ६१

१६. अथर्वा । रुद्रः । त्रिष्टुप्, भुरिक् ।

ॐ मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ।।२।।
अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड०६, सूक्त ६२

१७. अथर्वा । रुद्रः, वैश्वानरः, वातः, द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

ॐ वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ।।१।।
वैश्वानरीं सूनृतात्मा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।२।।
वैश्यानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ९३

१८. शन्तातिः । रुद्रः, यमोमृत्युः शर्वः, भवः शर्वः, विश्वेदेवाः मरुतः, अग्नीषोमो वरुणः वातपर्जन्यो । त्रिष्टुप् ।

ॐ यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो वभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ।।१।।
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ।।२।।
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद्विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त १०७

१९. शन्तातिः । विश्वजित् । अनुष्टुप् ।

ॐ विश्वजित्त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।।१।।
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।।२।।
विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥४॥

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ५२

२०. अथर्वा। सांमनस्यं, अश्विनौ। ककुम्मत्यनुष्टुप्, जगती।

ॐ संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ५९

२१. बादरायणिः। अरिनाशनम्। अनुष्टुप्।

ॐ यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१॥

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ६६

२२. ब्रह्मा। ब्रह्म। त्रिष्टुप्।

ॐ यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलषेषु।
यदश्रवन्पशव उद्यमानं तद्ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१॥

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ६७

२३. ब्रह्मा। आत्मा। पुरः परोष्णिग्बृहती।

ॐ पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१॥

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ६८

२४. शन्तातिः। सरस्वती। अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री।

ॐ सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥१॥
इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत्।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ।।३।।

अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ६८

२५. शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापंक्तिः ।

ॐ शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ।।१।

अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ६

२६. शन्तातिः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः देवताः । अनुष्टुप्, बृहतीगर्भा ।

ॐ अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१।।
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।२।।
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।३।।
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।४।।
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान्ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।५।।
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।६।।
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ।।७।।
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान्पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।८।।
भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ।।९।।
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशान्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१०।।
सप्तर्षीन्वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन्यमश्रेष्ठान्ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१२॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१४॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥
अरायान्ब्रूमो रक्षांसि सर्पान्पुण्यजनान्पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६॥
ऋतून्ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान्मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७॥
एत देवा दक्षिणतः पश्चात्प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८॥
विश्वान्देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९॥
सर्वान्देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२० ।
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतनामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१॥
या देवीः पञ्चप्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२॥
यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत्तदापो दत्त भेषजम् ॥२३॥

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्याय ९

वेदाङ्ग ज्योतिष

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में ज्योतिष विद्या के मूल तत्त्व विद्यमान हैं। आजकल ज्योतिष का प्राचीनतम ग्रन्थ 'लगध' प्राप्य है। लगध नाम के ऋषि ऋग्वेद ज्योतिप और यजुर्वेद ज्योतिष के संग्रहकर्त्ता हैं। उनके ग्रन्थ 'लगध ज्योतिष' में ऋग्वेद पर आधारित ३६ कारिकाएँ और यजुर्वेवेद ज्योतिष पर आधारित ४९ कारिकाएँ हैं।

पूना से प्रकाशित ऋग्वेद (सायण भाष्य), ऋग्वैदिकइंडिया और ज्योतिष सोमसुधाकर भाष्य के अनुसार 'युगारम्भ' माघशुक्ल प्रतिपदा तिथि को और 'युग-समाप्ति' पौषकृष्ण अमावस्या को बताई गई है। वेदाङ्ग ज्योतिष के अनुसार जब धनिष्ठा नक्षत्र के साथ सूर्य और चन्द्रमा का योग होता है, तभी 'युगारम्भ' होता है। धनिष्ठा नक्षत्र में 'उत्तरायण' और 'अश्लेषा' नक्षत्र में 'दक्षिणायन' माना गया है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का परिगणन और नामकरण इस प्रकार किया गया है—

१. जो (अश्विनी), २. द्रा (आर्द्रा), ३. गः (पूर्वाफाल्गुनी), ४. खे (विशाखा), ५. श्वे (उत्तराषाढ़ा), ६. हिः (पूर्वाभाद्रपदा), ७. रो (रोहिणी), ८. षा (अश्लेषा), ९. चित् (चित्रा), १०. मू (मूल), ११. शक् (शतभिषा), १२. ण्ये (भरणी), १३. सू (पुनर्वसु), १४. मा (उत्तराफाल्गुनी), १५. धा (अनुराधा), १६. न (श्रवण), १७. रे (रेवती), १८. मृ (मृगशिरा), १९. घा (मघा), २०. स्व (स्वाति), २१. पा (पूर्वाषाढ़ा), २२. अज (उत्तराभाद्रपदा), २३. कृ (कृत्तिका), २४. ष्य (पुष्य), २५. हा (हस्त), २६. जे (ज्येष्ठा), २७. ष्ठा (धनिष्ठा)। इन २७ नक्षत्रों में ही इनके देवता भी कह दिए गए हैं।

अथर्ववेदीय ज्योतिष-विज्ञान

अथर्ववेद संहिता भाष्य, अथर्ववेद ज्योतिष (सोमसुधाकर भाष्य) और अथर्ववेद (सायण भाष्य) के अनुसार सोमसुधाकर भाष्य में ज्योतिष संबंधी १६२ मंत्रों का विवरण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देते हुए अथर्ववेदीय फलित ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का उल्लेख किया गया है। फलित ज्योतिष संबंधी अथर्ववेद (शौनकीयशाखा) के ८०, ८१, ८३, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८ सूक्तों में तिथि, नक्षत्र, वार, करण, योग, तारा और चन्द्रमा के क्रम से १, ४, ८, १६, ३२, ६०, और १०० उत्तरोत्तर गुण बताए गए हैं। साथ ही 'वार' के स्वामी भी बताए गए हैं। जातक (उत्पन्न हुए व्यक्ति) के जन्म-नक्षत्र को लेकर बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से फल बताया गया है। जातक के जन्म-नक्षत्र के माध्यम से फल बताने की विधि नक्षत्रों में ३।३ का वर्ग इस प्रकार स्थापित किया गया है—

जन्म नक्षत्र	कर्म नक्षत्र	आधान नक्षत्र
१. सम्पत्कर	१. सम्पत्कर	१. सम्पत्कर
२. विपत्कर	२. विपत्कर	२. विपत्कर
३. क्षेमकर	३. क्षेमकर	३. क्षेमकर
४. प्रत्वर	४. प्रत्वर	४. प्रत्वर
५. साधक	५. साधक	५. साधक
६. निधन	६. निधन	६. निधन
७. मित्र	७. मित्र	७. मित्र
८. परममित्र	८. परममित्र	८. परममित्र

नक्षत्रों के अतिरिक्त राशियों का भी खगोलीय वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त है।

'मीनमेषयोर्मेष वृषभयोर्वसन्तः' के आधार पर उत्तर वैदिक काल के ज्योतिष ग्रन्थ 'वृहत्पाराशरहोराशास्त्र' के उपसंहार क्रम की सूची में ग्रह, गुण, स्वरूप, राशि-स्वरूप, विशेष लग्न, षोडश वर्ग, राशि दृष्टि कथन, अरिष्टाध्याय, अरिष्ट भङ्गादि में तथा आकाश में स्थित 'भचक्र' के ३६०° अर्थात् १०८ भाग तथा समस्त 'भचक्र' १२ राशियों में विभक्त होने का विवरण दिया गया है। इस अथर्ववेदीय खगोलीय अध्ययन से निष्कर्ष यह निकाला गया है कि ३०° अथवा ९ भाग की एक राशि होती है। यह ९ भाग अश्विनी आदि नक्षत्रों के ९ चरण होते हैं। इन्हीं की जाति, गुण और रूप आदि का निरूपण किया गया है।

अथर्ववेद में ग्रह, उल्का विद्युत, भूकम्प, दिग्दाह का उल्लेख है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा को बलहीन मानकर अन्य ग्रहों के बलाबल से कार्यों का निर्देश भी है। इसी अथर्ववेदीय सिद्धान्त के आधार पर आचार्य 'वराहमिहिर' ने अपने 'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में पाँच सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया है। अथर्ववेद में जिन कर्मज व्याधियों, क्षेत्रिय रोगों का उल्लेख है और अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में उन विभिन्न प्रकार की व्याधियों के शमन के लिए जो शान्ति-विधान हैं, उन व्याधियों का निदान वराह-मिहिर आचार्य के 'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ के 'पितामहसिद्धान्त' से भली भाँति प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया जा सकता है। उसमें बताया गया है कि पाप, शाप, कृत्यां, अभिचार, क्षैत्रिय व्याधि, वरुणपाश, नैर्ऋति दोष, उन्माद, मृगी, मूर्च्छा, यक्ष्मरोग, गण्डमाला, कैंसर, वास्तुदोष, अद्भुत दर्शन, देवयजन दोष, देव हेडन (देवताओं का तिरस्कार करने से उत्पन्न दोष), अनज्ञात, अज्ञात अपराधजन्य दोष, ग्रह-दोष, नक्षत्र दोषजन्य व्याधियों को कैसे पहचाना जा सकता है।

अथर्ववेदीय प्रश्न ज्योतिष

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में विशेष प्रश्न विज्ञानद्वारा निम्नांकित विषयों की जानकारी प्राप्त करने की विधियों का उल्लेख है—

१. अभीष्ट कार्य करने से लाभ होगा या नहीं ?
२. युद्ध में, शास्त्रार्थ या विवाद में, द्यूतक्रीडा में विजय होगी या नहीं ?
३. रोगी रोग-मुक्त होगा या नहीं ?
४. नौकरी अथवा जीविका का व्यवसाय मिलेगा या नहीं ?
५. अनुष्ठित साधना या मंत्र-यंत्र-तंत्र की साधना सिद्ध होगी या नहीं ?
६. नष्ट धन, अपहृत सम्पत्ति, चोरी गया धन, अपहृत या भागा हुआ प्राणी प्राप्त होगा या नहीं ?
७. किसी भी प्रकार की परीक्षा में सफलता मिलेगी या नहीं ?
८. वर को वधू या कन्या को योग्य वर कब मिलेगा ?
९. पुत्र की प्राप्ति होगी या नहीं ?
१०. उत्तम वर्षा, अच्छी फसल होगी या नहीं ?

इत्यादि अनेक प्रकार के भौतिक, आध्यात्मिक प्रश्नों के फल अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त ४ (अम्बयो यन्ति०), सूक्त ५ (आपोहिष्ठा०), सूक्त ६ (शन्नो देवी०) से प्राप्त किए जाने का विधान है, जो शतप्रतिशत सही होता है। इस ग्रन्थ में ऐसे कुछ विधान हम दे चुके हैं।

ग्रह-दोष, शाप-दोषविज्ञान

अथर्ववेदीय ज्योतिष में जो व्यक्ति दुष्ट ग्रहों से ग्रस्त होकर अथवा किसी के द्वारा दिए गए शाप से त्रस्त होकर दुर्गति भोगता है, उसका परिज्ञान और दोष-निवारण ज्योतिष के आधार पर इस प्रकार है—

जिसके जन्म-लग्न या प्रश्न-लग्न से आठवें या बारहवें भाव में मंगल बैठा हो, तो वह व्यक्ति 'कृत्या दोष' के कारण पीडित रहता है। कृत्यादोष का परिज्ञान अंग के लक्षणों से भी किया जाता है। जैसे जिस व्यक्ति के नाक, आँख, कान तथा गुह्य-प्रदेश में तिल या मस्सा हो, तो वह व्यक्ति जीवन में कृत्या दोष से पीडित रहता है।

यदि किसी के जन्म-लग्न या प्रश्न-लग्न से नवें भाव में राहु या केतु में से कोई

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक छाया ग्रह बैठा हो और मंगल आठवें भाव में हो, तो वह व्यक्ति ब्रह्मराक्षस की बाधा से गृहीत होगा।

जिस कुंडली में आठवें भाव में शनि या मंगल हों और वह व्यक्ति संकटग्रस्त, अभावग्रस्त रहता हो, तो उसका कारण यह है कि उसने या तो पीपल का वृक्ष काटा हो या किसी समाधि या देव-स्थान को भ्रष्ट किया होगा अथवा उसने तीर्थजल को अपवित्र कर दिया हो, जिससे उसे वरुणशाप लग गया। वरुण शाप की पहचान यह है कि स्वप्न में साँप या पानी दिखाई पड़ता है।

यदि किसी व्यक्ति की जन्म-राशि आठवें या नवें भाव के पाप ग्रहों के साथ हो, तो वह वरुणपाश से आवद्ध होकर दुर्गति भोगता है और जन्म-राशि शनि के साथ हो, तो वह व्यक्ति स्वप्न में बड़े-बड़े दाँतों वाली, चिपके गालों वाली, रक्तहीन शरीर वाली, लाल-लाल आँखों वाली भयंकर सूरतें तथा सुअर और बाल बिखराए हुए काले-भयंकर भूत-प्रेत, पिशाचों के समान आकृति देखता है।

जन्म-लग्न से या चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में जैसी राशि और ग्रह स्थित हों, वैसा ही ग्रह का स्वरूप समझना चाहिए और उसके तृतीय, पंचम, षष्ठ या दसवें स्थान से फल देखना चाहिए। इन भावों और ग्रहों से कृत्या के विविध प्रकार समझकर फल बताने और निवारण के उपाय बताने के निर्देश दिए गए हैं।

गर्भ-दोष, सन्तति-विज्ञान

यदि जन्म-लग्न या प्रश्न-लग्न से द्वादशभाव के अंगों में जैसी राशि या ग्रह बैठे हों, तो वैसे ही उन-उन स्थानों के चिह्न होते हैं। राशि से दिशा का ज्ञान और ग्रहों से वर्ण, अवस्था, वेषभूषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

जन्म-लग्न या प्रश्न-लग्न से चन्द्रमा पाँचवें या आठवें भाव में स्थित हों अथवा आठवें भाव में शत्रु ग्रह या निर्बल ग्रह अथवा क्रूर ग्रह बैठा हो, तो वह व्यक्ति पुत्र-सुख से रहित होता है। उसके पुत्र उत्पन्न न होने का कारण किसी मृतवत्सा स्त्री द्वारा उस स्त्री के शिर के बाल काट कर उसे पुत्रहीन बनाने और स्वयं पुत्रवती होने का तंत्र प्रयोग होता है। अथवा ऐसी मृतवत्सा स्त्री ने उस स्त्री के रजोधर्म काल में पहने हुए वस्त्र चुरा कर तंत्र प्रयोग किया है, तो वह स्त्री कमर पीडा, पेड़ू की पीड़ा तथा गर्भाशय के रोग से ग्रस्त होकर सन्तान-जनन क्षमता खो बैठती है।

इस प्रकार के दोषों से ग्रस्त सन्तान या पुत्रहीन नारी के दोषों को दूर करने, स्वस्थ और पुत्रवती बनने के विधान अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में दिए गए हैं।

अथर्ववेद ज्योतिष के मत से गुरु सन्तान कारक ग्रह है। इसलिए जब किसी को सन्तान पर विचार करना हो, तो उसके जन्म-लग्न या प्रश्न-लग्न से पंचम भाव और चन्द्रमा उन लग्नों में जहाँ भी हो, उससे पंचम भाव से किया जाए। जैसे—

१. यदि गुरु पञ्चम भाव में हो और पञ्चमेश शुभ ग्रह युक्त या दृष्ट हो, तो वह व्यक्ति निश्चित सन्तान-सुख प्राप्त करेगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. लग्नेश पंचम भाव में हो और गुरु बलवान् हो, तो सन्तति प्राप्त होती है।

३. गुरु बली हो, लग्नेश से दृष्ट हो, तो प्रबल सन्तति योग होता है।

४. जन्म-लग्न के पाँचवें भाव में मंगल और शुक्र की एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि हो, तो सन्तानयोग होता है।

५. एक, चार, पाँच, सात, नवें और दसवें भाव के स्वामी शुभ ग्रह हों और उनमें से कोई एक पंचम भाव में बैठा हो तथा पंचमेश छठे, आठवें, बारहवें भाव में न हो, पापयुक्त, अस्त या शत्रु-राशिगत न हो, तो सन्तान-सुख प्राप्त होता है।

६. यदि पंचम भाव में २, ४, ७ वृष, तुला, कर्क में से कोई एक राशि हों तथा पाँचवें शुक्र या चन्द्र हो अथवा इनकी दृष्टि हो, तो बहुपुत्रयोग होता है।

७. लग्न या चन्द्रमा से पाँचवें भाव में शुभ ग्रह हों अथवा पाँचवाँ भाव शुभ-ग्रहों से दृष्ट हो, तो सन्तति योग होता है।

८. यदि लग्नेश और पंचमेश एक साथ हों या परस्पर दृष्ट हों अथवा दोनों स्वगृही, मित्रगृही या उच्च के हों, तो प्रबल सन्तान योग होता है।

९. लग्नेश, पञ्चमेश शुभ ग्रह के साथ होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थान में हों और द्वितीयेश बली हो, तो सन्तान योग होता है।

१०. लग्नेश और पञ्चमेश दोनों सप्तम भाव में हों अथवा द्वितीयेश लग्न में हो, तो सन्तान योग होता है।

११. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी शुभ ग्रह से युक्त और दृष्ट हो, तो सन्तान-योग होता है। यदि लग्नेश और पञ्चमेश केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थान में हों, शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है।

१२. पञ्चमेश और गुरु बलवान् हो तथा लग्नेश पञ्चम भाव में हो, सप्तमेश के नवांश का स्वामी, लग्नेश तथा धनेश और नवमेश इन तीनों से दृष्ट हो, तो सन्तति-योग होता है।

१३. पञ्चम भाव में २, ४, ८, १०, १२ राशियाँ और इन्हीं राशियों के नवांश शनि, बुध या चन्द्रमा से युक्त हों, तो कन्याएँ अधिक तथा पंचम भाव में १, ३, ५, ७, ९, ११ राशियाँ और इन राशियों के नवांशाधिपति मंगल, शनि और शुक्र से दृष्ट हों, तो पुत्र सन्तति अधिक होती है।

१४. पञ्चमेश २।८ भाव में हो, तो कन्याएँ अधिक होती हैं।

१५. बारहवें बुध, शुक्र या चन्द्रमा में से कोई एक ग्रह हो, तो कन्याएँ अधिक उत्पन्न होती हैं।

१६. बुध, चन्द्र और शुक्र में से एक भी पाँचवें भाव में स्थित हो, तो कन्याएँ अधिक होंगी।

१७. पञ्चम भाव में मेष, वृष और कर्क राशि में से किसी एक राशि पर केतु हो, तो सन्तान-लाभ प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त गर्भस्थ सन्तान लड़का है या लड़की है का ज्ञान, अनपत्य योग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(निःसन्तान) होने का ज्ञान, गर्भानुत्पाद योग, गर्भच्युति योग, नाग-शाप के कारण विपुत्र योग, पितृ-शाप के कारण विपुत्र योग, मातृ-शाप के कारण विपुत्र योग, कुल देवता के प्रकोप से विपुत्र योग, सुतहीन योग, पुत्रनाशन योग, पुत्र-सुख योग, वंश-विच्छेद योग, विलंब से पुत्रोत्पत्ति योग, शान्ति कर्म विधान से पुत्र-प्राप्ति योग, शीघ्र सन्तानोदय योग, पुत्र-प्राप्ति योग, कन्या-प्राप्ति योग, अल्प पुत्र, अनपत्य और मृतापत्य-योग आदि सन्तान संबंधी विचार अथर्ववेदीय ज्योतिष में हैं।

वैधव्य योग : वन्ध्या योग

१. यदि कन्या की जन्म कुण्डली में सप्तम भाव में स्थित मंगल क्रूर ग्रहों से युत और दृष्ट हो, तो बाल-विधवा योग होता है।

२. यदि मंगल की राशि (१, ८) में राहु पाप ग्रह से युत होकर आठवें अथवा बारहवें भाव में स्थित हो, तो वैधव्य योग होता है।

३. यदि सप्तम भाव और लग्न में पाप ग्रह स्थित हों, तो विवाह होने के सात वर्ष बाद कन्या विधवा हो जाए।

४. यदि लग्न या चन्द्रमा से आठवें भाव में तीन या चार पाप ग्रह स्थित हों, तो विधवा योग होता है।

५. यदि छठे या आठवें भाव में चन्द्रमा गया हो, तो कन्या विवाह के आठ वर्ष बाद विधवा हो जाती है।

६. अष्टमेश सातवें भाव में हो और सप्तमेश आठवें भाव में स्थित हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो, तो भरी जवानी में कन्या विधवा हो जाती है।

७. यदि छठे, आठवें भाव के स्वामी छठे या बारहवें भाव में गए हों और पाप-ग्रह से युत हों, तो कन्या युवावस्था में विधवा होती है।

८. यदि अष्टम भाव में पाप ग्रह स्थित हो और अष्टमेश के नवांश का स्वामी जो ग्रह हो, तो उसकी दशा या अन्तर्दशा में कन्या विधवा होती है।

९. यदि बुध आठवें भाव में स्थित हो, तो स्त्री काकवन्ध्या होती है अर्थात् एक बार सन्तान होने के बाद फिर सन्तान नहीं होती है।

१०. यदि शनि और रवि आठवें भाव में स्थित हों, तो स्त्री बाँझ होती है। उसके कोई सन्तान नहीं होती है।

११. यदि सातवें, आठवें भाव के स्वामी छठे और बारहवें भाव में स्थित पाप ग्रहों से पीडित हों, तो निश्चय ही स्त्री विधवा होती है।

कार्य की सफलता, असफलता का ज्ञान

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त १ के मंत्रों के आधार पर किसी भी कार्य की सफलता, असफलता के प्रश्न का उत्तर गणितीय सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार दिया जाता है—

१. प्रश्नकर्त्ता जिस दिशा की ओर मुँह कर के प्रश्न करे, उस दिशा की अंक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संख्या (१ पूर्व, २ पश्चिम, ३ उत्तर, ४ दक्षिण) तथा प्रहर संख्या (सूर्योदय से ३ घण्टे का एक प्रहर होता है), वार (दिन) संख्या (रविवार से दिन की गणना प्रारंभ होती है) और नक्षत्र संख्या (अश्विनी से नक्षत्र-संख्या प्रारंभ होती है), सबको जोड़ने से जो योग आए, उसमें ८ का भाग दे। भाग देने पर यदि शेष १ या ५ आए, तो शीघ्र कार्य-सिद्धि। ६ और ४ शेष होने पर ३ दिन में कार्य सिद्धि, ३ और ७ शेष होने पर विलंब से कार्य सिद्धि और २ तथा शून्य ० शेष होने से कार्य-हानि या असफलता होती है।

२. प्रश्नकर्त्ता १ से १०८ पर्यन्त संख्या के अन्तर्गत अपनी इच्छा से कोई संख्या लिखाए या बतला दे, तब उसकी बताई हुई संख्या में १२ का भाग दिया जाए। भाग देने पर यदि शेष १, ७, ९ होता है, तो कार्य-सिद्धि में विलंब। यदि शेष ४, ५, ८, १० होता है, तो कार्य-नाश और यदि ०, २, ३, ६, ११ शेष बचता है, तो निश्चय ही कार्य सिद्ध होता है।

३. जिस तिथि को प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे उस तिथि की संख्या, प्रश्न-काल के वार (दिन) की संख्या और उस समय की नक्षत्र-संख्या सब को जोड़ ले। और जो जोड़ आए, उसको ३ से गुणा करे। गुणनफल में ६ जोड़ दे और उस योग में ९ का भाग दे। १ शेष रहने पर पक्ष में (१५ दिन में), २ शेष रहने पर महीने भर में, ३ शेष रहने पर ऋतु समाप्त होने पर (६ ऋतुएँ साल भर में होती हैं—प्रश्न-काल में जो ऋतु हो उसकी समाप्ति पर), ४ शेष रहने पर अयन में (उत्तरायण, दक्षिणायन ६-६ मास), ५ शेष रहने पर दिन में, ६ शेष रहने पर रात में, ७ शेष रहने पर प्रहर में, ८ शेष रहने पर घड़ी में, ९ शेष रहने पर एक मिनट की अवधि में कार्य सिद्ध होना समझना चाहिए। और शून्य शेष रहने पर कार्य विफल होता है।

इसी प्रकार लाभालाभ संबंधी अनेक अंक ज्योतिष की विधियाँ हैं।

प्रवासी-प्रश्नज्ञान

यदि कोई व्यक्ति कहीं चला गया हो, उसका पता-ठिकाना न मालूम हो और न कोई समाचार मिलता हो अथवा प्रवास में अधिक दिन लग जाएँ, तो अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ९ (प्रपथे पथां) से फल इस प्रकार बताया जाता है—

१. प्रश्नकर्त्ता जिस समय प्रवासी के संबंध में प्रश्न करे, उस समय जो लग्न हो, उस प्रश्न-कुंडली के लग्न में गुरु और शुक्र दूसरे, तीसरे भाव में स्थित हों, तो प्रवासी की वापसी विलंब से होती है। यदि गुरु, शुक्र १।४ में हों, तो शीघ्र वापस आए। यदि छठे, सातवें भाव में कोई अन्य ग्रह स्थित हो और पाँचवें, नवें भाव में बुध या शुक्र हो, तो शीघ्र वापस आए।

२. प्रश्न लग्न में चर राशि हो या चन्द्र चर राशि पर हो या द्वित्व भाव में और चर राशि का नवांश हो, तो प्रवासी वापस आ जाए, यदि स्थिर हो तो नहीं आ सकता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. यदि प्रश्न कुण्डली में लग्नेश दूसरे, तीसरे, आठवें, नवें किसी भाव में स्थिति हो, तो प्रवासी वापस आते हुए मार्ग में ठहरा हुआ होता है। यदि दूसरे, तीसरे, पाँचवें, छठे और सातवें भाव में कोई वक्री ग्रह स्थित हो और पहले, चौथे, सातवें, दसवें भाव में गुरु या बुध हो तथा शुक्र पाँचवें या नवें भाव में स्थित हो, तो प्रवासी शीघ्र वापस आता है।

विवाह-संबंधी प्रश्न ज्ञान

१. प्रश्न लग्न से पहले या सातवें भाव के स्वामी अथवा चन्द्र से इत्थशाल योग हो, तो शीघ्र विवाह होता है।

२. लग्नेश या चन्द्रमा सातवें भाव में हो, तो विवाह शीघ्र होता है।

३. सप्तमेश का जिस ग्रह से इत्थशाल योग हो और वह ग्रह निर्बल हो, पाप-युक्त या क्रूर हो, तो विवाह विपत्तिकारक हो जाए अथवा न हो।

४. सातवें भाव में पाप ग्रह स्थित हो या अष्टमेश बैठा हो, तो विवाह के बाद पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु हो जाए और विवाह-काल में अशुभ घटनाएँ घटित हों।

५. सातवें भाव में या सातवें भाव के स्वामी पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो, तो तीन मास के अन्दर विवाह होता है।

शुभाशुभ ज्ञान

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त १ के द्वारा शुभाशुभ फल का ज्ञान प्राप्त करने की विधि इस प्रकार है—

प्रश्नकर्त्ता जब प्रश्न करे तब प्रश्न-काल का इष्ट काल निकाल कर प्रश्न-कुंडली, ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट, नवमांश तथा चलित चक्र बना कर शुभाशुभ विचार किया जाए।

१. प्रश्नकाल में चर राशि बलवान् हो और लग्नेश तथा कार्येश शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हों तथा पहले, चौथे, पाँचवें, सातवें, नवें और दसवें भाव में से किसी भी एक भाव में हों, तो कार्य शुभ फल देता है।

२. यदि प्रश्न-लग्न में द्विस्वभाव राशि हो तथा पहले, चौथे, सातवें, नवें और दसवें भाव में पाप ग्रह हों तथा लग्नेश और कार्येश हीनबल हों अथवा नीच, अस्तंगत या शत्रु के घर में बैठे हों, तो अशुभ फल होता है।

३. प्रश्न कुंडली में स्थिर लग्न हो, लग्नेश और कार्येश बलवान हों, तो विलंब से शुभ कार्य होता है।

मूल नक्षत्रजन्य दोष और उनकी शान्ति

अथर्ववेद (काण्ड ६, सूक्त ११०) में तीन ऋचाओं द्वारा ज्येष्ठा, मूल, रेवती,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अश्विनी, अश्लेषा और मघा—इन छह नक्षत्रों को पाप-नक्षत्र बताया गया है। इन छहों नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न बालक अनिष्टकारक होता है। अथर्ववेद (काण्ड २, सूक्त ८) विचृतौ नामतारके मूल नक्षत्र है और द्विवचन है। विचृत शब्द तैत्तरीय आरण्यक (२।८।१) के मत से मूल नक्षत्र की पर्यायवाची संज्ञा है। तैत्तरीय संहिता (४।४।१०।२) में मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक के अरिष्ट-शमन का निर्देश दिया गया है। इसी को धर्मशास्त्रों में 'मूलशान्ति विधान' कहा गया है।

उपर्युक्त (अथर्ववेद ६।११०) की दूसरी ऋचा में 'ज्येष्ठघ्न्यां जातो' का तात्पर्य यह है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न बालक पिता, भ्राता, नाना आदि का विनाशक होता है। इसी तरह 'विचृतौ'—मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक भी सम्पूर्ण कुल का नाशक होता है।

अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र और वैतान सूत्र में मूलजनितारिष्ट निवारण के लिए जो विधान बताए गए हैं, वे कर्मकाण्ड प्रधान हैं। हम यहाँ पर सरल, साध्य विधि लिख रहे हैं; जो एक ही दिन में और अल्प समय में की जा सके और पाप नक्षत्रजन्य दोष भी दूर होकर बालक दीर्घायु, मेधावी और वंश-विस्तारक बने।

विधि—अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ११० की एक से तीन ऋचाओं से विनियोग-पूर्वक बालक का कुश-अपामार्ग से जलावसेचन करे। तदनन्तर अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त ८ की एक से पाँच ऋचाओं द्वारा विनियोगपूर्वक कुश-अपामार्ग से जलावसेचन कर इन्हीं ऋचाओं से सूर्योपस्थान करा कर हवन करा दिया जाए (जलावसेचन के अतिरिक्त अन्य क्रियाएँ शिशु के माता-पिता करें)।

१. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठ काण्डस्य दशाधिकशतं सूक्तस्य अथर्वा ऋषि। अग्निः देवता। त्रिष्टुप्, पंक्तिश्छन्दसी। मूलजात मूलादिजनित दोषोपशमनार्थे जलावसेचने, रक्षोहणे च विनियोगः।

मंत्र

ॐ प्रत्नो हि कमीडयो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१॥
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलवर्हणात्परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीञ्जनित्रीम् ॥३॥

२. विनियोग—ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीय काण्डस्य अष्टम सूक्तस्य भृग्वङ्गिराः ऋषयः। वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनं देवते। अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, विराट्, निचृत्पथ्या पंक्तिश्छन्दांसि। मूलजात, मूलादिजनित दोषोपशमनार्थे जलावसेचने, सूर्योपस्थाने, रक्षोहणार्थे, होमे च विनियोगः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंत्र

ॐ उद्गातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
विक्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१॥
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२॥
वभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्यातिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥
नमस्ते लाङ्गलेभ्यः नमः ईषायुगेभ्यः।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४॥
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येभ्यः।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥

शुभाशुभ नक्षत्रज्ञान

अथर्ववेद में मूल नक्षत्र, अश्लेषा नक्षत्र, ज्येष्ठा आदि कतिपय नक्षत्रों को अपशकुन-सूचक माना गया है। कुछ नक्षत्रों को कार्यारम्भ, यात्रारम्भ के लिए शुभ माना गया है। अथर्ववेद में नक्षत्रों से भविष्य संबंधी सूचना के प्रचुर उदाहरण प्राप्त हैं। जैसे—

१. आर्द्रा नक्षत्र—आर्द्रा से लेकर बारह नक्षत्र उत्तम वृष्टि से धरती को शस्यश्यामला बनाते हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र यात्रा के लिए शुभ होते हैं। पूर्वाफाल्गुनी धनकारक नक्षत्र है। मघा और फाल्गुनी नक्षत्रों में वृषभ से जो कार्य किए जाते हैं, वे निश्चित सफल होते हैं।

२. ज्येष्ठा नक्षत्र—अथर्ववेद (१४।१-१३) में ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न बालक को अपने पिता या बड़े भाई का घाती बताया गया है और मूल नक्षत्र में उत्पन्न शिशु को कुलघाती माना गया है। यम देवता से संबंधित इस नक्षत्र में उत्पन्न शिशु के दोषों के निराकरण के लिए, बालक के दीर्घायुष्य के लिए और पापों के क्षय के लिए अथर्ववेद में शान्ति विधान बताए गए हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र को अथर्ववेद में पाप नक्षत्र और व्याघ्र के समान क्रूर बताया गया है। अतः इस नक्षत्र में उत्पन्न बालक को अशुभ शकुन के रूप में ग्रहण किया गया है। बालक के अनिष्टकर नक्षत्रों के प्रभाव को अथर्ववेद में दुर्लक्षण के रूप में ग्राह्य माना गया है।

३. रोहिणी—अथर्ववेद में रोहिणी (रक्त वर्ण) का नाम ज्येष्ठघ्नी (ज्येष्ठ की वधिक) अथवा ज्येष्ठा का (ज्येष्ठतम) वृश्चिक के तारकपुंज के साथ बताया गया है। वृश्चिक का केन्द्रीय तारा ज्येष्ठा प्रकाशमान् और रक्तवर्ण है।

४. मूलबर्हणी—अथर्ववेद (२।८) में तेजस्वी 'विचृति' उपनाम वाले मूलनक्षत्र को अपशकुन, अशुभ के रूप में माना गया है। खासकर शिशु के जन्मकाल में इसकी उपस्थिति को अत्यन्त अशुभ स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद (६।११।११०।२ तथा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६।११।११०।३) में विचृति से माता-पिता के अंगों से सन्तान के शरीर में आए क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि क्षेत्रिय रोग-बीजों से मुक्ति के लिए प्रार्थना की गई है। अश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा; मूल आदि मूल संज्ञक नक्षत्रों को अथर्ववेद में क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगों से संबंधित माना गया है। विचृति (मूल) नक्षत्र को यक्ष्मारोग से संबंधित माना गया है।

अथर्ववेद में 'विचृती' द्विवचन रूप में तीन स्थलों पर मिलता है। इसका तात्पर्य दो संयुक्त, १. मूल (जड़), २. मूल वर्हणी (उन्मूलन) नक्षत्रों से है। तैत्तरीय संहिता में 'विचृती' का अर्थ मूलनक्षत्र माना गया है। मूलनक्षत्र को 'विचृती' नाम से इसलिए पुकारा जाता है कि इस नक्षत्र का सूर्य से विपरीत उदय और अस्त होना उस समय वर्ष के आरम्भ का सूचक है, जबकि वसंत सम्पात मृगशिराओं के निकट था।

५. कृत्तिका—यजुर्वेद और अथर्ववेद में कृत्तिका नक्षत्र के लिए 'आभ्रयन्ती', 'मेघयन्ती' और 'वर्षयन्ती' संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। इससे प्रकट है कि कृत्तिका वृष्टिकारक नक्षत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से कृत्तिका—कृत् (कातना) धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ 'जाल' है। कृत्तिका एक नक्षत्र-पुञ्ज है, इसलिए इसका प्रयोग कृतिकाएँ बहुवचन में भी किया जाता है। कृत्तिका नक्षत्रपुञ्ज को निर्मित करने वाले सात तारागण हैं। अथर्ववेद में अग्नि से कृत्तिका के माङ्गलिक होने की प्रार्थना की गई है। तैत्तरीय ब्राह्मण में कृतिका के सातों तारागणों के अलग-अलग नाम १. अम्बा, २. दुला, ३. नितत्नी, ४. आभ्रयन्ती, ५. वर्षयन्ती, ६. मैघयन्ती और ७. चुपुणीका दिए गए हैं। शतपथ ब्राह्मण और अथर्ववेद (८।१।७।२) यही व्यक्त करते हैं कि कृत्तिकाएँ पूर्व दिशा से नहीं चलती हैं, जबकि अन्य नक्षत्र इसी दिशा से चलते हैं।

६. बुध—अथर्ववेद (७।७।८६।३) के 'सोमस्यांशो' पद का भाष्य करते हुए सायण आचार्य 'सोम पुत्र' बुध कहते हैं। अथर्ववेद में बुध को दर्शनीय तथा 'अनून' (सम्पूर्ण नाम) कहा गया है और बुध ग्रह को भावी युद्ध में विजय का शुभ प्रतीक माना गया है। बुध ग्रह से धन, समृद्धि और सन्तान-वृद्धि मानी गई है।

७. रोहिणी—अथर्ववेद ने रोहिणी नक्षत्र में प्रजापति तथा देवों द्वारा अग्नि के आधान किए जाने का निर्देश दिया है और इसे शुभ नक्षत्र माना है।

८. पुनर्वसु—पुनर्वसु का अर्थ है—'वह दो जिन्होंने पुनः सम्पत्ति प्रदान की।' मिथुन राशि के दो तारागणों का द्योतक पुनर्वसु है—कृष्णयजुर्वेद तैत्तरीय (२।४) और अथर्ववेद इस मत के प्रतिपादक हैं।

९. रेवती—अथर्ववेद का उपदेश है कि स्वामित्व स्पष्ट करने के लिए पशुओं पर चिह्न लगाना रेवती नक्षत्र में शुभ होता है। यह नक्षत्र सम्पत्ति का द्योतक है।

१०. ध्रुव—अथर्ववेद का चौदहवाँ काण्ड विवाह प्रकरण है। इस चौदहवें काण्ड (१४।४७) में सुमङ्गली वधू के दाम्पत्य-जीवन को सुमंगल, सुखी बनाने के लिए प्रार्थना की गई है और उसे ध्रुव नक्षत्र के समान स्थिर रहने की शुभकामना की गई है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्रुव नक्षत्र को अथर्ववेद शुभकारक मानता है। अथर्ववेद के ही आधार पर पारस्कर गृह्य सूत्र में ध्रुव तारे का समादर किया गया है। रात्रिकालीन विवाह-संस्कार में वधू को बताए जाने वाले तारे का नाम ध्रुव पर आधारित है। ध्रुव का अर्थ स्थिर, निश्चल है। यह नक्षत्र चन्द्र का उपग्रह है। ऋग्वेद में ध्रुव नक्षत्र 'अधून्य' के रूप में आया है।

११. सप्तर्षि मण्डल तथा अरुन्धती—अथर्ववेद (काण्ड १९, सूक्त ९, मंत्र १२, १३) में सप्तर्षि नक्षत्रों से शान्ति और शर्म प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद (१।२४।१०), शतपथ ब्राह्मण (२।१।२।४), जैमिनीय ब्राह्मण (४।२६।१२), तैत्तरीय आरण्यक (१।११।२) में सप्तर्षि मण्डल और अरुन्धती का रूपक-कथाओं द्वारा खगोलीय परिचय दिया गया है। अथर्ववेद सप्तर्षि मण्डल और अरुन्धती को सन्तान और समृद्धि के लिए शुभ मानता है। सप्त होताओं की संख्या इन्हीं सप्तर्षि-नक्षत्रों की शुभ संख्या पर आधारित है।

१२. अभिजित्—कृष्णयजुर्वेद के अनुसार 'वैश्व प्रान्त्याङ्घ्रि श्रुति-तिथि भागतोऽभिजित्स्यात्'—अर्थात् उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का चतुर्थ पाद तथा श्रवण का प्रथम पाद दोनों के सम्मिश्रण से अभिजित् नक्षत्र उत्पन्न हुआ है। यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता के अनुसार इस नक्षत्र में देव युद्ध करके विजयी होते हैं, इसलिए इस नक्षत्र का नाम 'अभिजित्' रखा गया है। अभिजित् नक्षत्र चान्द्र नक्षत्रों के अन्तर्गत है। अथर्ववेद (काण्ड १९, सूक्त ७) ने 'अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव' कह कर इस नक्षत्र को शुभकारक, पुण्य-कारक माना है।

१३. अश्विद्वय नक्षत्र—ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अश्विद्वय नक्षत्र को शुभ-शकुन के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद (८।२६।१३) उदाहरण देकर कहता है कि जिस प्रकार वधू वस्त्र से ढकी रहती है, वैसे ही जो मनुष्य यज्ञ से आवृत रहता है, उसकी परिचर्या करते हुए अश्विद्वय उसका मंगल करते हैं। यह प्रतीकात्मक कथन है। अथर्ववेद में अनेक प्रतीक कथनों द्वारा अश्विद्वय से प्रार्थना की गई है। एक स्थान पर इन्हें प्राण और अपान देवता मानकर जरा (वृद्धावस्था) को दूर कर दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। (इसी ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्राणविद्या के प्रसंग में अश्विद्वय का विस्तृत विवेचन है)।

अथर्ववेद में ज्येष्ठघ्नी (ज्येष्ठा) तथा विचृती को घनिष्ठ रूप से संबंधित बताया गया है। इसके अतिरिक्त रेवती और कृत्तिकाओं को भी शुभ-नक्षत्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अथर्ववेद (काण्ड १९) के उत्तरार्द्ध में नक्षत्रों की एक पूरी तालिका दी गई है, जिसमें अभिजित् नक्षत्र भी सम्मिलित है। इसके साथ ही अथर्ववेद (१९।७) में अर्यमा देवता का पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र से, भगदेव को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से, सविता का हस्त नक्षत्र से, इन्द्र का चित्रा नक्षत्र से, वायु का स्वाती नक्षत्र से सम्बन्धित होने का उल्लेख है। इन देवताओं की स्तुति से ये नक्षत्र मंगलप्रद सिद्ध होते हैं।

इसी सूक्त में आगे इन्द्र देवता वाले अनुराधा और विशाखा नक्षत्र, ज्येष्ठा नक्षत्र

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का आवाहन किया गया गया है। इसी प्रकार मित्रदेवताक अनुराधा नक्षत्र का सुख-पूर्वक आवाहन तथा सब अरिष्टों के कारण, पितृदेवता वाले मूलनक्षत्र से भी कल्याण की प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद (१४।७।४) में जलदेवता वाले पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से खाद्यान्न प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। विश्वेदेवा देवता के उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से बलप्रद अन्न की प्रार्थना की गई है। ब्रह्मदेवता के अभिजित् नक्षत्र से पुण्य की कामना की गई है। विष्णुदेवता के श्रवण नक्षत्र और वसु देवता के धनिष्ठा नक्षत्र से तुष्टि-पुष्टि प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

इसके बाद इसी सूक्त के पाँचवें मन्त्र से इन्द्र देवता के शतभिषा नक्षत्र से महान् फल, अजैकपाद देवता के प्रोष्ठपद—पूर्वभाद्रपद, अहिर्बुध्न्य देवता के उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों से शोभनगृह की प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। पूषा देवता के रेवती नक्षत्र से सौभाग्य प्रदान करने की तथा यम देवता के भरणी नक्षत्र से धन प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद (१९।८।२) में सविता देवता से प्रार्थना की गई है कि 'हे सविता देवता, आप समस्त नक्षत्रों को साथ लेकर 'अनुहव' (पीछे से बुलाना), 'परिहव' (पार्श्वों से बुलाना) आदि अपशकुनों अथवा दुर्निमित्तों से बचाएँ।' इसी प्रकार (काण्ड १९, सूक्त ९) में द्युलोक में आचरण करने वाले मंगल आदि ग्रह से भी दोष-शान्ति की प्रार्थना की गई है तथा चन्द्रमण्डल के संघर्षक मंगल आदि ग्रह हमें शान्ति देने वाले हों —ऐसी कामना की गई है। यहाँ परस्पर ग्रहों-उपग्रहों से उत्पन्न अपशकुन के निवारण की भी प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद (९।१।२४) में भास्वर तथा प्रदीप्त नक्षत्रों से युक्त आकाश में गर्जन होने को प्रजापति का प्रजाओं के लिए प्रादुर्भाव माना गया है और (७।१।१) में पर्जन्य के व्यापक गर्जन को सायण अशनिग्रह द्वारा किया गया माना गया है, जिसे समस्त विश्व के लिए बाधा का कारण माना जाता है।

इस तरह अथर्ववेद में आर्द्रा नक्षत्र, अर्जुनी, पुनर्वसु, बुध, रोहिणी, सप्तर्षि, ध्रुव, अभिजित् आदि नक्षत्रों के शुभ और मूल, ज्येष्ठघ्नी नक्षत्रों को अशुभ माना गया है।

अथर्ववेद में शकुन-अपशकुन, अद्भुत घटनाओं का विज्ञान

अथर्ववेद तथा ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णित शकुन-अपशकुन तथा अद्भुत घटनाओं का वर्गीकरण किया जाए, तो १. यज्ञीय घटनाओं से संबंधित शकुन, २. पक्षियों, पशुओं, ३. दुःस्वप्नों, ४. दुर्लक्षणों और ५. अद्भुत घटनाओं से संबंधित अपशकुन, तथा ६. भूमिगत अद्भुत घटनाएँ और ७. आकाशगत अद्भुत घटनाएँ और उनके स्वरूप, भेद, फलाफल एवं प्रायश्चित्त-विधान मिलते हैं।

१. यज्ञीय घटनाओं से संबंधित शकुनों में अग्नि से प्राप्त शकुन, यज्ञाग्नि के धूम्र से प्राप्त शकुन, अग्निहोत्री से संबंधित शकुन, अग्निहोत्र की आहुतियों एवं हवियों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के बिगड़ जाने से प्राप्त अपशकुन, सोम-संबंधित शकुन और यज्ञीय पशुओं से प्राप्त शकुन प्रमुख हैं।

२. अपशकुनों और उनके प्रायश्चित्त-विधान के सन्दर्भ में अपशकुन-सूचक पक्षियों के लिए प्रायश्चित्त-विधान, अपशकुन-सूचक पशुओं के लिए प्रायश्चित्त-विधान, दुःस्वप्नों से संबंधित अपशकुनों के निमित्त प्रायश्चित्त-विधान, शारीरिक-दुर्लक्षणों के लिए प्रायश्चित्त-विधान, अद्भुत घटनाओं से संबंधित प्रायश्चित्त-विधान और यज्ञीय अद्भुत घटनाओं से संबंधित प्रायश्चित्त-विधान मुख्य हैं।

३. भूमिगत अद्भुत घटनाओं के अन्तर्गत १. भूकम्प, २. ज्वालामुखी विस्फोट, ३. अग्नि, ४. जल, ५. विभिन्न प्राणियों से संबंधित अद्भुत घटनाएँ, ६. अकाल संबंधी घटनाएँ, ७. देव प्रतिमाओं से संबंधित अद्भुत घटनाएँ, और ८. विविध वस्तुओं से संबंधित अद्भुत घटनाएँ हैं।

४. आकाशगत अद्भुत घटनाओं के अन्तर्गत १. सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण, २. सूर्य-चन्द्र संबंधी अन्यान्य शकुन-अपशकुन, ३. उषा के अनुदित शकुन-अपशकुन, ४. मेघ-गर्जन संबंधी शकुन-अपशकुन, ५. विद्युत् के चमकने से संबंधित शकुन-अपशकुन, ६. जलवृष्टि, ७. इन्द्रधनुष, ८. वायु संबंधी, ९. उल्कापात, १०. धूमकेतुओं (पुच्छल-ताराओं) का उदय, ११. ताराओं का टूटना और नक्षत्रों से प्राप्त शकुन-अपशकुन मुख्य हैं।

इन सभी विषयों के विवेचन के लिए एक अलग ग्रंथ की आवश्यकता है। यहाँ पर हम कुछ प्रमुख विषयों का दिग्दर्शन मात्र करा रहे हैं।

१. ऋग्वेद (१-२८, ५-६) में सोमलता पीसने वाले 'ग्रावा' की ध्वनि को दानवों को भगाने वाला और धन तथा सन्तति प्रदान करने वाला माना गया है। इसी सन्दर्भ में उलूखल (ओखली) और मूसल का भी दैवीकरण हुआ, जो आज तक विवाह, व्रतवन्ध संस्कारों में मातृका-पूजन के दिन सिल, लोढ़ा, ओखली और मूसल की पूजा हिन्दू-परिवारों में परम्परागत होती आ रही है।

२. वेदों में क्षेत्रपति तथा गृहदेवता पशु, धन देने वाले तथा रोगनाशक माने गए हैं और नदी, पर्वत, वृक्ष एवं पृथ्वी में देवों का अधिष्ठान स्वीकार कर उनकी पूजा वैदिककाल से अब तक हिन्दू संस्कृति में प्रचलित है।

इससे यह स्पष्ट है कि वैदिककाल में विभिन्न वस्तुओं से शकुन-ग्रहण करने की परम्परा प्रचलित रही है। यज्ञ की प्रत्येक वस्तु देवाविष्ट होने से यज्ञीय वस्तुएँ शकुनों से संबंधित रही हैं। अथर्ववेद में यज्ञ शेष (यज्ञ से बचा हुआ हविष्यान्न) तथा प्रणीता, प्रोक्षिणी, स्रुव आदि यज्ञीय उपकरणों में देव-सम्पर्क माना गया है। अतः यज्ञीय उपकरणों का टूटना या क्षतिग्रस्त हो जाना अपशकुन माना गया है।

३. ऋग्वेद और अथर्ववेद में इन्द्रध्वज और वज्र को कल्याणप्रद माना गया है। इससे यह जाना जाता है कि युद्ध से पूर्व पताका फहराना और अस्त्र-पूजा शकुन रहा है। अथर्ववेद में यान, आसन, छत्र, गृहध्वज, पताका तथा गृह के एक भाग का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अकस्मात् टूटना, भंग होना अद्भुत घटना माना गया है, जिनके अशुभ फल निवारण के लिए प्रायश्चित्त-विधान बताए गए हैं। इसी प्रकार केतु, पताका, छत्र, हीरक सींग में अकस्मात् आग लगना भी अशुभ माना गया है।

४. 'अथर्वपरिशिष्ट' में दर्वी (करछुल) की डाँड़ी का टूट जाना, घरेलू बरतनों, जलकलश, शय्या आदि का अचानक टूट जाना अपशकुन माना गया है। हीरा, मोती तथा स्वर्ण का खो जाना, मूसल का अपने आप उछलना, पानी में आग लग जाना, अचल वस्तु का चलना आदि अस्वाभाविक घटनाओं को अथर्ववेद में अशुभ, अपशकुन माना गया है। अथर्ववेद में अग्नि से श्रेष्ठ रूप में उत्पन्न होने वाले स्वर्ण को अमृत में स्थित माना गया है और यह बताया गया है कि यदि पुरुष स्वर्ण का कुण्डल या अँगूठी या मणि धारण करता है, तो दीर्घायु होता है। संकटों से, रोग-दोषों से उसकी रक्षा होती है। अतः स्वर्ण को शरीर में धारण करना शुभ माना गया है। लेकिन यदि स्वप्न में स्वर्णहार बनाते हुए देखा जाए, तो वह अपशकुन है। अग्नि के प्रवाहित रज ही रजत (चाँदी) माने गए हैं। इसलिए उपहार में रजत देना अशुभ माना गया है।

५. अथर्ववेद के कौशिक सूत्र में 'अद्भुत' की परिभाषा इस प्रकार की गई है—'स्वभावतः होने वाली घटनाओं (क्रियाओं) में कभी-कभी कुछ लोक-विरुद्ध घटनाएँ भी होती हैं, जिनके अशुभ फल निवारण के लिए शान्ति कराई जाती है, जिससे अशुभ और दोष दूर हो जाते हैं। जहाँ अद्भुत घटनाओं के दर्शन होते हैं, वहाँ संकट, दुःख और ह्रास-विनाश होता है। विनाश की पूर्व चेतावनी के रूप में अद्भुत घटनाएँ घटती हैं।'

६. अथर्ववेद (१९।९।८) में बताया गया है कि भूमिगत अद्भुत घटनाओं में पृथ्वी पर चर-अचर से संबंधित अद्भुत घटनाएँ आ जाती हैं। भूमि का दग्ध होना किन्तु तृण, काष्ठ, जल न जल रहे हों, तो इसे मृत्यु सूचक अपशकुन समझना चाहिए। भूकम्प को अपशकुन मान कर यह प्रार्थना की गई है कि भूकम्प के समय काँपती हुई पृथ्वी प्राणियों का संहार न करे, वह हमारे लिए शान्तिप्रद हो। पृथ्वी में विस्फोट होना, भयंकर ध्वनि-गर्जन होना, धुआँ निकलना—इन्हें अग्नि से संबंधित माना गया है। भूकम्प और ज्वालामुखी को अन्योन्याश्रित मानकर इन्हें अद्भुत कहा गया है। पृथ्वी से अकस्मात् जल का उद्गिरण होना। जल का स्थल और स्थल का जल बन जाना, भूकम्प और ज्वालामुखी से संबंधित ये अद्भुत घटनाएँ अपशकुन-सूचक हैं।

७. असम्भव घटनाएँ घटित होना, राजकुल में विवाद उत्पन्न होना, तरह-तरह की व्याधियाँ, महामारियाँ पैदा होना राष्ट्र के लिए अपशकुन हैं। परिवार के आपसी कलह, घर में मांस का गिरना ये निर्ऋति दोष से उत्पन्न अपशकुन हैं।

८. काकमैथुन दिखाई देना, अकस्मात् कृमियों का उत्पन्न होना, दिन में सियारिन (शृगाली) का रोना; गर्दभ, उष्ट्र, वन्यमृग, कंक, काक, उलूक, कपोत, गृध्र, श्येन का चिल्लाना—ये सब अपशकुन कारक हैं। गाय के थन से दूध के स्थान पर रक्त निकले, बैल से बैल की अथवा गाय से गाय की संभोग-चेष्टा, खेतों में चूहों के, टिड्डियों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के आक्रमण, जंगली पशुओं का गाँव-घर में प्रवेश, खच्चर को गर्भ रह जाना, गौओं से मनुष्य या महिषी उत्पन्न होना, हीनांग-विकलांग भयंकर शिशुओं का जन्म लेना, अकाल में फल-फूल आना, देव प्रतिमाओं का हँसना, उनकी आँखों से आँसू निकलना, देव मंदिर का काँपना आदि अद्भुत घटनाएँ अमंगलसूचक हैं।

९. आकाश का रंग मजीठ की तरह लाल हो जाना, दिशाएँ जलती हुई-सी दिखाई दें। निरभ्र (बिना बादल) आकाश से जल की बूँदें गिरना, सूर्य-चन्द्रग्रहण, पुच्छलतारा का उदय, सूर्य के चारों ओर लाल रंग का घेरा, मेघरहित आकाश में बिजली का चमकना, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तुषारपात, वात्याचक्र, बादलों में इन्द्रधनुष दिखाई पड़ना, रात में मणिधनुष दिखाई पड़ना—अपशकुन सूचक हैं।

१०. अथर्ववेद (१।४।१) में कहा गया है कि बादल घिरे होने पर आँधी चलने पर वृक्षों के नीचे नहीं रहना चाहिए। झंझावात अशुभसूचक होता है।

११. अथर्ववेद (६।६८।१) में उल्कापात को एक दुर्निमित्त माना गया है। उल्कापात देखना भी अशुभ है। तीव्र प्रकाशमान उल्कापात से राष्ट्र-राज्य नष्ट होते हैं। अथर्वपरिशिष्ट में जन्म-नक्षत्र में उल्का की निर्घात अपशकुन माना गया है। दिन में उल्कापात होने से अनावृष्टि का सूचक है। धूमकेतुओं द्वारा सप्तर्षि मण्डल का प्रकाश छिपा लेना और सप्तर्षि नक्षत्र मण्डल को तपाना अपशकुन है।

सामान्यतया उन्नत धर्मों में खासकर वैदिक धर्म में दिव्यशक्तियों के प्रति आत्म-समर्पण की भावना निहित है। इस उदात्त भावना से मानव-मन के पवित्र उद्गार प्रार्थना के रूप में निःसृत होते हैं। इसीलिए वेद-मंत्र ऋचा कहे जाते हैं। दिव्य-शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण भावना और आत्मनिवेदनपरक प्रार्थना के रूप में अभि-व्यक्त धर्म अपने उन्नत रूप में व्यवस्थित होता है। इसके विपरीत दैवी शक्तियों को तंत्र-मंत्र की साधना से वशीभूत करके उनसे मनमानी ढंग से कार्य लेने की भावना से प्रेरित धर्म निहायत निकृष्ट और निम्नकोटि का होता है।

विश्व धर्म, संस्कृति और साहित्य में शकुन किसी भी उदात्त और उन्नत दैवी-धर्म में अनिवार्य रूप से मिलते हैं। इसीलिए शकुन-अपशकुन संबंधी परम्पराओं का प्रादुर्भाव दैवीभावना का अनिवार्य अंश बन गया है। अदृश्य दैवी शक्तियों तथा मानव के बीच ताल-मेल बैठाने का कार्य शकुनों की सांकेतिक प्रणाली से होता रहा है। इससे स्पष्ट है कि उन्नत और उदात्त धर्मों में शाकुनिक-परम्पराओं का महत्त्वपूर्ण स्थान प्रारम्भ से रहा है। वस्तुतः शकुन दैवी शक्तियों को नियंत्रित करके नहीं प्राप्त किए जाते, बल्कि दिव्यशक्तियों से प्रेरित आकस्मिक रूप से प्रादुर्भूत होते हैं। इसलिए शकुनों को दैवी धर्म, उन्नत धर्म का द्योतक माना जाता है।

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकीर्णक १

अथर्ववेद के काण्डगत सूक्त और उनके विषय

१. ब्रह्मविद्या, २. मातृभूमि और स्वराज्य शासन, ३. गृहस्थाश्रम, ४. दीर्घ जीवन और आरोग्य, ५. मेधाजनन, संगठन और विजय।

अथर्ववेद के बीस काण्डों के अन्तर्गत उपर्युक्त पाँच विषय मुख्य रूप से हैं। इनमें से १३, १४, १५, १६, १७, १८ और २०—ये सात काण्ड व्यवस्थित और प्रकरणबद्ध हैं। इन सात काण्डों में मन्त्र विषय के अनुसार संगृहीत हैं, परन्तु काण्ड १ से काण्ड १२ तक और काण्ड १९ में विषयानुसार सूक्तों, मंत्रों का संग्रह नहीं है। इसलिए इनके स्वाध्याय, चिन्तन और दुर्भाग्य-जन्य कष्टों के निवारण तथा सुख, सौभाग्य, अभ्युदय की वृद्धि के लिए अथर्ववेदीय गणों का आश्रय लेना पड़ता है।

काण्डों के क्रम से सूक्त और उनके नाम इस प्रकार हैं—

प्रथम काण्ड

१. मेधाजननम्, २. रोगोपशमनं, ३. मूत्रमोचनम्, ४. अपां भेषजं, ५. अपां भेषजं, ६. अपां भेषजं, ७. यातुधाननाशनम्, ८. यातुधाननाशनम्, ९. विजयः, १०. पाशविमोचनम्, ११. प्रसूतिः, १२. यक्ष्मनाशनम्, १३. विद्युत्, १४. कन्या, १५. पुष्टिकर्म, १६. शत्रुबाधनं, १७. धमनीबन्धनम्, १८. अलक्ष्मीनाशनम्, १९. शत्रुनिवारणं, २०. शत्रुनिवारणं, २१. शत्रुनिवारणं, २२. हृद्रोगकामिलानाशनं, २३. श्वेतकुष्ठनाशनं, २४. श्वेतकुष्ठनाशनं, २५. ज्वरनाशनं, २६. शर्मप्राप्तिः, २७. स्वस्त्ययनं, २८. रक्षोघ्नं, २९. राष्ट्राभिवर्धनं सपत्नक्षयणम्, ३०. दीर्घायुः, ३१. पाशमोचनम्, ३२. महद्ब्रह्म, ३३. आपः, ३४. मधुविद्या, ३५. दीर्घायुः।

इस प्रथम काण्ड में ३५ सूक्त और १५३ मन्त्र हैं।

द्वितीय काण्ड

१. परमंधाम, २. भुवनपतिः, ३. आस्राव भेषजं, ४. दीर्घायुः, ५. इन्द्रस्य वीर्याणि, ६. सपत्नहा अग्निः, ७. शापमोचनम्, ८. क्षेत्रियरोगनाशनम्, ९. दीर्घायुः,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१०. पाशमोचनम्, ११. श्रेयः प्राप्तिः, १२. शत्रुनाशनम्, १३. दीर्घायुः, १४. दस्युनाशनं, १५. अभयप्राप्तिः, १६. सुरक्षा, १७. बलप्राप्तिः, १८. शत्रुनाशनं, १९. शत्रुनाशनं २०. शत्रुनाशनं, २१. शत्रुनाशनं, २२. शत्रुनाशनं, २३. शत्रुनाशनं, २४. शत्रुनाशनं, २५. पृश्निपर्णी, २६. पशुसंवर्द्धनम्, २७. शत्रुपराजयः, २८. दीर्घायुः, २९. दीर्घायुः, ३०. कामिनीमनोऽभिमुखीकरणं, ३१. कृमिभंजनं, ३२. कृमिभंजनं, ३३. यक्ष्मविवर्हणम्, ३४. पशवः, ३५. विश्वकर्मा, ३६ पतिवेदनं ।

इस द्वितीय काण्ड में कुल ३६ सूक्त और २०७ मंत्र हैं ।

तृतीय काण्ड

१. शत्रुसेनासम्मोहनं, २. शत्रुसेनासम्मोहनं, ३. स्वराज्ये राज्ञः स्थापना, ४. राज्ञः संवरणम्, ५. राष्ट्रस्य राजा, ६. शत्रुनाशनं, ७. यक्ष्मनाशनं, ८. राष्ट्रधारणं, ९. दुःखनाशनं, १०. रायस्पोष प्राप्तिः, ११. दीर्घायुः, १२. शालानिर्माणम्, १३. आपः, १४. गोष्ठः, १५. वाणिज्यं, १६. स्वस्तये प्रार्थना, १७. कृषिः, १८. वनस्पतिः, १९. क्षत्रं, २०. रयिसंवर्द्धनं, २१. शान्तिः, २२. वर्चः प्राप्तिः, २३. वीर प्रसूतिः, २४. समृद्धि प्राप्तिः, २५. कामस्यइषुः, २६. आत्मरक्षा, २७. शत्रुनिवारणं, २८. पशुपोषणं, २९. अविः, ३०. सांमनस्यं, ३१. यक्ष्मनाशनं ।

इस तृतीय काण्ड में ३१ सूक्त और २३० मन्त्र हैं ।

चतुर्थ काण्ड

१. ब्रह्मविद्या, २. आत्मविद्या, ३. शत्रुनाशनं, ४. वाजीकरणं, ५. स्वापनं, ६. विषघ्नं, ७. विषघ्नं, ८. राज्याभिषेकः, ९. आञ्जनं, १०. शंखमणिः, ११. अनड्वान्, १२. रोहिणी, १३. रोगनिवारणं, १४. स्वर्ज्योतिः, १५. वृष्टिः, १६. सत्यअनृतं, १७. अपामार्ग, १८. अपामार्ग, १९. अपामार्ग, २०. पिशाचक्षयणं, २१. गावः, २२. अमित्रक्षयणं, २३. पापमोचनं, २४. पापमोचनं, २५. पापमोचनं, २६. पापमोचनं, २७. पापमोचनं, २८. पापमोचनं, २९. पापमोचनं, ३०. राष्ट्री दैवी, ३१. सेनानिरीक्षणं, ३२. सेनासंयोजनं, ३३. पापनाशनं, ३४. ब्रह्मौदनं, ३५. मृत्युसन्तरणं, ३६. अग्निः, ३७. कृमिनाशनं, ३८. ऋषभः, ३९. संनतिः, ४०. शत्रुनाशनं ।

इस चतुर्थ काण्ड में ४० सूक्त और ३२४ मंत्र हैं ।

पञ्चम काण्ड

१. अमृतासुः, २. भुवनेषु ज्येष्ठः, ३. विजयः, ४. कुष्ठनाशनं, ५. लाक्षा, ६. ब्रह्मविद्या, ७. अरातिनाशनं, ८. शत्रुनाशनं, ९. आत्मा, १०. आत्मरक्षा, ११. संपत्कर्म, १२. ऋतस्य यज्ञः, १३. सर्पविषनाशनं, १४. कृत्यापरिहरणं, १५. रोगोपशमनं, १६. वृषरोगशमनं, १७. ब्रह्मजाया, १८. ब्रह्मगवी, १९. ब्रह्मगवी, २०. शत्रुसेनात्रासनं, २१. शत्रूसेनात्रासनं, २२. तक्मनाशनं, २३. क्रिमिघ्नं, २४. ब्रह्मकर्म,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५. गर्भाधानं, २६. नवशालाघृतहोमः, २७. अग्निः, २८. दीर्घायुः, २९. रक्षोघ्नं, ३०. दीर्घायुष्यं, ३१. कृत्यापरिहरणं ।

इस पञ्चम काण्ड में ३१ सूक्त और ३७६ मंत्र हैं ।

षष्ठ काण्ड

१. अमृतप्रदाता, २. जेता इन्द्रः, ३. आत्मगोपनं, ४. आत्मगोपनं, ५. वर्चः प्राप्तिः, ६. शत्रुनाशनं, ७. असुरक्षयणं, ८. कामात्मा, ९. कामात्मा, १०. संप्रोक्षणं, ११. पुंसवनं, १२. सर्पविषनिवारणं, १३. मृत्युंजयः, १४. बलासनाशनं, १५. शत्रुनिवारणं, १६. अक्षिरोग भैषज्यं, १७. गर्भदृंहणं, १८. ईर्ष्याविनाशनं, १९. पावमानं, २०. यक्ष्मनाशनं, २१. केशवर्द्धिनी औषधिः, २२. भैषज्यं, २३. अपां भैषज्यं, २४. अपां भैषज्यं, २५. मन्याविनाशनं, २६. पाप्मनाशनं, २७. अरिष्टक्षयणम्, २८. अरिष्टक्षयणम्, २९. अरिष्टक्षयणम्, ३०. पापनाशनं, ३१. गौः, ३२. यातुधानक्षयणं, ३३. इन्द्रस्तवः, ३४. शत्रुनाशनं, ३५. वैश्वानरः, ३६. वैश्वानरः, ३७. शापनाशनं, ३८. वर्चस्यम्, ३९. वर्चस्यम्, ४०. अभयं, ४१. दीर्घायुः, ४२. चित्तैकीकरणं, ४३. मन्युशमनं, ४४. रोगशमनं, ४५. दुःस्वप्ननाशनं, ४६. दुःस्वप्ननाशनं, ४७. दीर्घायुः, ४८. स्वस्तिवाचनं, ४९. अग्निस्तवः, ५०. अभययाचना, ५१. एनेनाशनं, ५२. भैषज्यम्, ५३. सर्वतोरक्षणं, ५४. अमित्रदमनं, ५५. सौमनस्यं, ५६. सर्पेभ्योरक्षणं, ५७. जलचिकित्सा, ५८. यशः प्राप्तिः, ५९. औषधिः, ६०. पतिलाभः, ६१. विश्वरूप्टा, ६२. पावमानः, ६३. वर्चोबलप्राप्तिः, ६४. सौमनस्यं, ६५. शत्रुनाशनं, ६६. शत्रुनाशनं, ६७. शत्रुनाशनं, ६८. वपनं, ६९. वर्चः प्राप्तिः ७०. अघ्न्या, ७१. अन्नं, ७२. वाजीकरणं, ७३. सांमनस्यं, ७४. सांमनस्यं, ७५. सपत्नक्षयणम्, ७६. आयुष्यं, ७७. प्रतिष्ठापनं, ७८. दम्पतीरयि प्रार्थना, ७९. ऊर्जः प्राप्तिः, ८०. अरिष्टक्षयणम्, ८१. गर्भाधानं, ८२. जायाकामना, ८३. भैषज्यं, ८४. निर्ऋतिमोचनं, ८५. यक्ष्मनाशनं, ८६. वृषकामना, ८७. राज्ञः संवरणं, ८८. ध्रुवोराजा, ८९. प्रीतिसंजननं, ९०. इषुनिष्कासनं, ९१. यक्ष्मनाशनं, ९२. बाजी, ९३. स्वस्त्ययनं, ९४. सांमनस्यं, ९५. कुष्ठौषधिः, ९६. चिकित्सा, ९७. अभिभूर्वीरः, ९८. अजरंक्षत्रं, ९९. संग्रामजयः, १००. विषदूषणम्, १०१. वाजीकरणं, १०२. अभिसांमनस्यं, १०३. शत्रुनाशनम्, १०४. शत्रुनाशनम्, १०५. कासशमनं, १०६. दूर्वाशाला, १०७. विश्वजित्, १०८. मेधावर्द्धनं, १०९. पिप्पली, ११०. दीर्घायुः, १११. उन्मत्तामोचनं, ११२. शापमोचनं, ११३. पापनाशनं, ११४. उन्मोचनं, ११५. पापमोचनं, ११६. मधुमदन्नम्, ११७. आनृण्यं, ११८. आनृण्यं, ११९. पापमोचनं, १२०. सुकृतस्य लोकः, १२१. सुकृतस्यलोकः, १२२. तृतीयोनाकः, १२३. सौमनस्यम्, १२४. निर्ऋत्यपस्तरणं, १२५. वीरस्यरथः, १२६. दुन्दुभिः, १२७. यक्ष्मनाशनम्, १२८. राजा, १२९. भगप्राप्तिः, १३०. स्मरः, १३१. स्मरः, १३२. स्मरः, १३३. मेखलाबन्धनम्, १३४. शत्रुनाशनम्, १३५. बलप्राप्तिः, १३६. केशदृंहणं, १३७. केशवर्द्धनम्,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१३८. क्लीवत्वम्, १३९. सौभाग्यवर्द्धनम्, १४०. सुमङ्गलौ दन्तौ, १४१. गोकर्णयोर्लक्ष्मकरणम्, १४२. अन्नसमृद्धिः ।

इस षष्ठ काण्ड में १४२ सूक्त और ४५४ मंत्र हैं ।

सप्तम काण्ड

१. आत्मा, २. आत्मा, ३. आत्मा, ४. विश्वप्राणः, ५. आत्मा, ६. अदितिः, ७. आदित्याः, ८. शत्रुनाशनं, ९. स्वस्तिदापूषा, १०. सरस्वती, ११. सरस्वती, १२. राष्ट्रसभा, १३. शत्रुनाशनम्, १४. सविता, १५. सविता, १६. सविता, १७. द्रविणं, १८. वृष्टिः, १९. प्रजाः, २०. अनुमतिः, २१. एकोविभुः, २२. ज्योतिः, २३. दुःस्वप्ननाशनं, २४. सविता, २५. विष्णुः, २६. विष्णुः, २७. इडा, २८. स्वस्ति, २९. अग्नाविष्णूः, ३०. अञ्जनं, ३१. शत्रुनाशनम्, ३२. दीर्घायुः, ३३. दीर्घायुः, ३४. शत्रुनाशनम्, ३५. सपत्नीनाशनं, ३६. अञ्जनम्, ३७. वासः, ३८. केवलः पतिः, ३९. आपः, ४०. सरस्वान्, ४१. सुपर्णः, ४२. पापमोचनम्, ४३. वाक्, ४४. इन्द्राविष्णू, ४५. ईर्ष्यानिवारणं, ४६. सिनीवाली, ४७. कुहूः, ४८. राका, ४९. देवपत्नयः, ५०. विजयः, ५१. परिपाणम्, ५२. सांमनस्यं, ५३. दीर्घायुः, ५४. अध्यापकविघ्नशमनं, ५५. मार्गस्वस्त्ययनं, ५६. विषभैषज्यम्, ५७. सरस्वती, ५८. अन्नं, ५९. शापमोचनम्, ६०. रम्यं-गृहं, ६१. तपः, ६२. शत्रुनाशनम्, ६३. दुरितनाशनम्, ६४. पापमोचनं, ६५. दुरितनाशनम्, ६६. ब्रह्म, ६७. आत्मा, ६८. सरस्वती, ६९. सुखम्, ७०. शत्रुदमनम्, ७१. अग्निः, ७२. इन्द्रः, ७३. धर्मः, ७४. गण्डमाला, ७५. अघ्न्याः, ७६. गण्डमाला, ७७. शत्रुनाशनम्, ७८. बन्धमोचनम्, ७९. अमावस्या, ८०. पूर्णिमा, ८१. सूर्याचन्द्रमसौ, ८२. अग्निः, ८३. पाशमोचनम्, ८४. क्षत्रभृदग्निः, ८५. अरिष्टनेमिः, ८६. त्राता इन्द्रः, ८७. व्यापको देवः, ८८. सर्पविषनाशनम्, ८९. आपः, ९०. शत्रुबलनाशनम्, ९१. सुत्रामाइन्द्रः, ९२. सुत्रामाइन्द्रः, ९३. शत्रुनाशनम्, ९४. सांमनस्यं, ९५. शत्रुनाशनम्, ९६. शत्रुनाशनं, ९७. यज्ञः, ९८. हविः, ९९. वेदी, १००. दुःस्वप्ननाशनं, १०१. दुःस्वप्ननाशनम्, १०२. आत्मनोऽहिंसनं, १०३. क्षत्रियः, १०४. गौः, १०५. दैव्यं वचः, १०६. अमृतत्त्वं, १०७. संतरणम्, १०८. शत्रुनाशनम्, १०९. राष्ट्रभृतः, ११०. शत्रुनाशनं, १११. आत्मा, ११२. पापनाशनं, ११३. शत्रुनाशनं, ११४. शत्रुनाशनम्, ११५. पापलक्षणनाशनं, ११६. ज्वरनाशनं, ११७. शत्रुनिवारणम्, ११८. वर्मधारणं ।

इस सप्तम काण्ड में ११८ सूक्त और २८६ मन्त्र हैं ।

अष्टम काण्ड

१. दीर्घायुः, २. दीर्घायुः, ३. शत्रुनाशनम्, ४. शत्रुदमनं ५. प्रतिसरणमणिः, ६. गर्भदोषनिवारणम्, ७. ओषधयः, ८. शत्रुपराजयः, ९. विराट्, १०. विराट् ।

इस अष्टम काण्ड में १० सूक्त और २९३ मंत्र हैं ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवम काण्ड

१. मधुविद्या, २. कामः, ३. शाला, ४. ऋषभः, ५. अजः, ६. अतिथिसत्कारः, ७. गौः, ८. यक्ष्मनाशनः, ९. आत्मा, १०. आत्मा ।

इस नवम काण्ड में १० सूक्त और ३१३ मंत्र हैं ।

दशम काण्ड

१. कृत्यादूषणं, २. ब्रह्म, ३. वरणमणिः, ४. सर्पविषदूरीकरणम्, ५. विजयः, ६. मणिबन्धनम्, ७. सर्वाधारः, ८. ज्येष्ठ ब्रह्म, ९. शमोदना गौः, १०. वशागौः ।

इस दशम काण्ड में १० सूक्त और ३५० मंत्र हैं ।

एकादश काण्ड

१. ब्रह्मौदनम्, २. रुद्रः, ३. ओदनः, ४. प्राणः, ५. ब्रह्मचर्यम्, ६. पापमोचनम्, ७. उच्छिष्टंब्रह्म, ८. अध्यात्मम्, ९. शत्रुनिवारणं, १०. शत्रुनिवारणं ।

इस एकादश काण्ड में १० सूक्त और ३१३ मंत्र हैं ।

द्वादश काण्ड

१. मातृभूमिः, २. यक्ष्मनाशनम्, ३. स्वर्ग-ओदनः, ४. वशागौः, ५. ब्रह्म-गवी ।

इस द्वादश काण्ड में ५ सूक्त और ३०४ मंत्र हैं ।

त्रयोदश काण्ड

१. अध्यात्मं, २. अध्यात्मं, ३. अध्यात्मं, ४. अध्यात्मं ।

इस त्रयोदश काण्ड में ४ सूक्त और १८८ मंत्र हैं ।

चतुर्दश काण्ड

१. विवाह प्रकरणं, २. विवाह प्रकरणं ।

इस चतुर्दश काण्ड में २ प्रकरण (सूक्त) और १३९ मन्त्र हैं ।

पञ्चदश काण्ड

१. अध्यात्म प्रकरणम्, व्रात्यप्रकरणम्, १८ पर्यायाः ।

इस पञ्चदश काण्ड में १ सूक्त, १८ पर्याय और २२० मन्त्र हैं ।

षोडश काण्ड

१. दुःखमोचनम्, ९ पर्यायाः ।

इस षोडश काण्ड में १ सूक्त, ९ पर्याय और १०३ मन्त्र हैं ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सप्तदश काण्ड

१. अभ्युदयाय प्रार्थना ।

इस सप्तदश काण्ड में १ सूक्त और ३० मन्त्र हैं ।

अष्टादश काण्ड

१. पितृमेधः, २. पितृमेधः, ३. पितृमेधः, ४. पितृमेधः ।

इस अष्टादश काण्ड में ४ सूक्त और २८३ मन्त्र हैं ।

एकोनविंश काण्ड

१. यज्ञः, २. आपः ३. जातवेदाः, ४. आकूतिः, ५. जगतोराजा, ६. जगद्-बीजः पुरुषः, ७. नक्षत्राणि, ८. नक्षत्राणि, ९. शान्तिः, १०. शान्तिः, ११. शान्तिः, १२. दीर्घायुः, १३. एकवीरः, १४. अभयं, १५. अभयं, १६. अभयं, १७. सुरक्षा, १८. सुरक्षा, १९. शर्म, २०. सुरक्षा, २१. छन्दांसि, २२. ब्रह्मा, २३. अथर्वाणः, २४. राष्ट्रं, २५. अश्वः, २६. हिरण्यधारणम्, २७. सुरक्षा, २८. दर्भमणिः, २९. दर्भमणिः, ३०. दर्भमणिः, ३१. औदुम्बरमणिः, ३२. दर्भः, ३३. दर्भः, ३४. जङ्गिडमणिः, ३५. जङ्गिड-मणिः, ३६. शतवारोमणिः, ३७. बलप्राप्तिः, ३८. यक्ष्मनाशनम्, ३९. कुष्ठनाशनम्, ४०. मेधा, ४१. राष्ट्रबलमोजश्च, ४२. ब्रह्मयज्ञः, ४३. ब्रह्मा, ४४. भैषज्यं, ४५. आञ्जनम्, ४६. असृतमणिः, ४७. रात्रिः, ४८. रात्रिः, ४९. रात्रिः, ५०. रात्रिः, ५१. आत्मा, ५२. कामः, ५३. कामः, ५४. कालः, ५५. रायस्योषप्राप्तिः, ५६. दुःस्वप्ननाशनम्, ५७. दुःस्वप्ननाशनम्, ५८. यज्ञः, ५९. यज्ञः, ६०. अङ्गानि, ६१. पूर्णायुः, ६२. सर्वप्रियत्वं, ६३. आयुवर्धनं, ६४. दीर्घायुष्यं, ६५. अवनम्, ६६. असुर-क्षयणम्, ६७. दीर्घायुष्यं, ६८. वेदोक्तम्, ६९. आपः, ७०. पूर्णायुः, ७१. वेदमाता, ७२. परमात्मावेदाश्च ।

इस उन्नीसवें काण्ड में ७२ सूक्त और ४५३ मन्त्र हैं ।

विंश काण्ड

१४३ इन्द्रसूक्तानि ।

इस बीसवें काण्ड में १४३ सूक्त और ९५८ मन्त्र हैं ।

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकीर्णक २

ऋग्वेदीय व्याधि-नाशन तंत्र

अथर्ववेद की भाँति ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आधि-व्याधि निवारण के तंत्र-विधान हैं। यहाँ पर कतिपय उपयोगी और सरल तंत्र-विधान दिए जा रहे हैं –

१. दारुण दुःख, अपमृत्यु निवारण—ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त १३०, मंत्र १ 'यो यज्ञो०' से ७ मन्त्रों के सूक्त को विनियोग और संकल्प के साथ ४१ दिन तक १० हज़ार जपने से असाध्य व्याधि, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचार कर्मजन्य रोग-दोष, पागलपन, अपमृत्यु का निवारण होता है।

२. वरुणपाश, शाप, निर्ऋति दोष निवारण—ऋग्वेद मं० १०, सू० २९, मंत्र १ 'नासदासीन्तो०' से ७ मंत्र पर्यन्त पूरे सूक्त को अश्वत्थ मूल की सन्निधि में १० हज़ार जपने से पाप, पाश, शाप, दुरित, दोष, दुर्गति, जलोदर, प्लुरिसी, यक्ष्मारोग तथा दुर्घटनाएँ दूर होती हैं। असाध्य व्याधियाँ दूर होती हैं।

३. ऋग्वेद मं० १०, सू० ६४, मंत्र १ 'कथा देवानां कतमस्य०' का जप अश्वत्थ मूल का स्पर्श कर २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जपने से प्रारब्धगत कर्मज व्याधियाँ जो ओषधियों से नहीं दूर होती हैं और असाध्य मानी जाती हैं, दूर होती हैं।

इसी सूक्त का मन्त्र २, 'क्रतूयन्ति क्रतवो०' को अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर ११ दिन तक ११०० जपने से दुर्भायजन्य अरिष्ट, अनिष्ट दूर होते हैं।

४. ऋग्वेद मं० १, सूक्त ९४ का मन्त्र १ 'इमं स्तोममर्हते०' को शिवालय में शिवपूजन कर नित्य एक माला २१ दिन तक जपने से भव-व्याधि, अपमृत्यु का निवारण होता है।

५. ऋग्वेद मं० १०, सूक्त ४८, मन्त्र १ 'अहं भुवं' से लेकर पूरे सूक्त के ११ मन्त्रों का जप अश्वत्थ मूल की सन्निधि में एक माला नित्य ४१ दिन तक करने से क्रूर वृत्ति, तस्कर वृत्ति, दस्यु वृत्ति, दुर्वृत्ति, दुर्गति, दुरित, दोष, अल्पायु योग दूर होते हैं। सौभाग्य-वृद्धि होती है।

६. ऋग्वेद मं० १०, सूक्त ८५, मंत्र ४५ 'इमां त्वमिन्द्रं०' को सुबह, शाम एक माला नित्य २१ दिन तक जप करने से वाग्मी, दीर्घजीवी, यशस्वी पुत्र पैदा होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिदिन इस मन्त्र को जपने के बाद इसी सूक्त के ४४वें मंत्र 'अघोर चक्षु०' को पढ़ते हुए पति अपनी पत्नी के शिर पर दाहिना हाथ रख कर २१ दिन तक आशीर्वाद दिया करे।

७. इसी सूक्त के मंत्र ४६ 'सम्राज्ञी०' का जप यदि कोई स्त्री नित्य नियम से यथासंख्य जपती रहे, तो उसे पातिव्रतधर्म का तेज प्राप्त होता है। सुख, सौभाग्य, समृद्धि की अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

८. इसी सूक्त के मन्त्र ४७, 'समञ्जन्तु विश्वे देवाः०' को नित्य यथासंख्य जपने से दाम्पत्य-सुख प्राप्त होता है। किसी प्रकार के विक्षोभ, अभाव, असंतोष, तनाव आदि पति-पत्नी में नहीं पैदा होते हैं। सुख-सौभाग्य में वृद्धि होती है।

९. ऋग्वेद मं० ६, सूक्त ४० में ५ मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्र 'इन्द्र पिब०' को नित्य १०८ बार जपने से पुत्र की दुर्बुद्धि, दुर्मति, दुष्प्रकृति, दुर्वृत्ति, बुद्धि-क्षीणता, आयु-क्षीणता दूर होती है। संकटों, दुर्घटनाओं से रक्षा होती है। कोई बालक गूंगा-बहरा हो तो वह बोलने, सुनने लगता है। कोई लड़का दुर्विनीत, आवारा, भगोड़ा, प्रमादी, शराबी, जुआरी आदि दुर्व्यसनों से युक्त हो, तो उसके सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

१०. इसी सूक्त के दूसरे मंत्र 'अस्य पिब०' का नित्य जप करने से भाई-भाई का आपसी वैर नष्ट होकर अनन्य प्रीति-लाभ होता है।

११. इसी सूक्त के चौथे मंत्र 'आ याहि०' का नित्य जप करने से वाणी देवता की सिद्धि प्राप्त होकर वाग्मिता प्राप्त होती है।

१२. इसी सूक्त के पाँचवें मंत्र 'यदिन्द्र दिवि०' का नित्य जप करने से कायिकी देवता (काया की अधिष्ठात्री) के अनुग्रह से 'कायसिद्धि' प्राप्त होती है।

१३. ऋग्वेद मं० २, सूक्त २७, मंत्र 'सुगो हि वो०' का नित्य जप करने से हृदय की दुर्बलता, धड़कन, व्याधि और हृदयशूल, हृदयव्रण, हृदयवेध, हृदय-छिद्र तथा कष्ट, क्लेश, संकट दूर होते हैं।

१४. ऋग्वेद मं० १०, सूक्त १२७, मंत्र १, 'रात्रीव्यख्यदायती०' प्रति दिन एक माला पीपल के वृक्ष के नीचे रात में जपने से जिस घर में भूत-प्रेत की बाधा हो, साँप, बाघ आदि विषधर हिंस्रक जन्तुओं, जीवों का भय रहता हो अथवा चोरों, डाकुओं का भय बना रहता हो, वह दूर हो जाता है। इसी मंत्र से जप पूरा होने के बाद पीली सरसों अभिमंत्रित करके घर के बाहर, भीतर चारों ओर छिड़क देना चाहिए।

१५. एकान्तरा ज्वर, तिजारी, चौथिया, महाज्वर, मन्थर ज्वर आदि हर प्रकार के ज्वर ऋग्वेद, मं० १, सूक्त ११४, मंत्र १ 'इमा रुद्राय तवसे०' से बरगद की समिधा और घी से १०८ आहुतियाँ ३ दिन तक रोगी के पास देने से ज्वर शान्त होते हैं।

१६. ऋग्वेद, मं० ७, सूक्त ५५, मंत्र १ 'अमीवहा वास्तोष्पते०' से लेकर ८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंत्रों के सम्पूर्ण सूक्त का जप ३० दिन तक प्रतिदिन एक माला शिवालय में जपने के बाद दशांश हवन करने से कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।

१७. ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त ७१, मंत्र २ 'सक्तुमिव तितउना०' का जप प्रतिदिन एक माला पीपल के वृक्ष के नीचे ४१ दिन तक जपने से परिवार में लगा हुआ शाप, परिवार भर का दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है और लक्ष्मी का स्थिर वास होता है।

१८. ऋग्वेद, मं १०, सूक्त १८५ के 'महीत्रीणामवोऽस्तु०' तीनों मंत्रों का जप फाल्गुन मास भर आँवला के वृक्ष के नीचे प्रतिदिन ५०० जपने से अपवाद, कलंक, मिथ्या दोषजन्य पाप, महाविनाश की स्थिति, भय, संकट, दुर्गति, तरह-तरह की बीमारियों से मुक्ति मिलती है।

१९. ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त १८२ के मंत्र १, 'बृहस्पतिर्नयतु०' को प्रतिदिन पीपल के वृक्ष के नीचे २१ दिन तक जपने से परिवार के मरे हुए लोगों को मुक्ति मिलती है। विनियोग में संबंध सहित मृतकों का नाम अवश्य लिया जाना चाहिए।

२०. ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त १६० के 'तीव्रस्याभिवयसो०' मंत्र १ से ५ पर्यन्त का मकर संक्रान्ति के दिन शिवालय में बैठकर जितना जपा जा सके जपने से एक ही दिन के जप से मृगी, मूर्च्छा रोग दूर हो जाते हैं।

२१. किसी प्रकार का संकट उपस्थित होने पर, शत्रुओं, डाकुओं से घिर जाने पर, हिंस्रक जीवों की आक्रामक स्थिति पर तत्काल रक्षा करने में समर्थ यजुर्वेद के कतिपय मंत्र अनुभूत और अमोघ हैं। संकटकाल में उच्च स्वर से इनको पढ़ने मात्र से भय से त्राण मिलता है। पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती है।

१. रक्षोहणं वलगहनं०	शुक्ल यजुर्वेद ५।२३-२५
२. रक्षसां भागः०	शुक्ल यजुर्वेद ६।१६
३. योऽस्मभ्यं०	शुक्ल यजुर्वेद ११।८०
४. आयुर्म्मेपाहि०	शुक्ल यजुर्वेद १४।१७
५. अगार्भोगोऽसि०	शुक्ल यजुर्वेद १४।२४-२६
६. नमः कृत्स्नायता०	शुक्ल यजुर्वेद १६।२०।२२
७. कृणुष्वपाजः	शुक्ल यजुर्वेद १३।९-१४

इनमें से कोई एक मंत्र कण्ठस्थ होने पर प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकीर्णक ३

अथर्ववेद : पृथिवीसूक्त का सारसंक्षेप

क्षमाशीला, क्षमाधात्री जननी पृथिवी के साथ हमारा संबंध वही है जो बालक का माता के साथ होता है। यह पृथिवी उनके लिए प्रकट हुई है, जो 'मातृमान्' हैं, जिनके हृदय में माता और पुत्र के स्नेह का बीज अंकुरित हुआ है। (मंत्र ६०)

पृथिवी माता का अमृत-हृदय है, जो सत्य से भरा हुआ है और जिसका मूल परमव्योम में है, जिसकी प्रेरणा कभी क्षीण नहीं होती। पृथिवी माता का सच्चा रूप तो उसके लिए प्रकट होता है जो ध्यान की शक्ति से इसकी उपासना करते हैं। माता मही का यह रूप गुहा निहित (छिपा हुआ) है और इसका दूसरा स्थूल रूप सबके लिए प्रकट है। यह पृथिवी भूरी, काली, मटमैली और लाल रंग की मिट्टियों से निर्मित है। इसमें अनेकानेक उच्च, उच्चतर, उच्चतम पर्वत हैं। अनेक विशाल, क्षुद्र नदियों के प्रवाह हैं, समतल और रेतीले मैदान हैं। वन, अटवी, कान्तार, जंगल, महावन, सघन वन हैं। हिम से ढके हुए गिरि हैं। नानाविध वनस्पतियों, तरु, वीरुधों, वृक्षों, लता-प्रतानों से आकीर्ण अरण्य हैं। ये सब माता पृथिवी के कल्याणात्मक रूप हैं।

चारों ओर शस्य श्यामला लहलहाती हुई कृषि और क्षेत्रों (खेतों) तथा कर्मान्तों (कृषि फार्मों) में श्रम रत कृषक धरती माता की शोभा हैं। आकाश में छाए हुए, उमड़ते-घुमड़ते पर्जन्यों (बादलों) की यह पत्नी है, वे सदा इसे सींचते रहते हैं। सिंचित पृथिवी जौ, चावल आदि अन्नों (खाद्य पदार्थों) से भर जाती है। (मंत्र ४३)

बरसात लाने वाला मातरिश्वावात (पुरवाई हवा) धूल उड़ाता हुआ, वृक्षों को हिलाता हुआ, जिस समय ऊपर-नीचे झकझोरता है, उस समय गगन गर्जन करता है, बिजलियाँ कौंधती हैं, मेघ लरजते हैं। (मंत्र ४३)

ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त—इन छह ऋतुओं के मनोहारी चक्र को संवत्सर-शक्ति घुमाती हुई पृथिवी से अहर्निश अमृत दोहन करती है। (मंत्र ३६)

माता पृथिवी की कोख में नानाविध मणि, रत्न, हिरण्य आदि खनिज पदार्थ भरे हुए हैं, जिन्हें वह मानवों के प्रसन्नार्थ उगलती रहती है। धरती के इस मातृ-स्नेह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से धन की सहस्र धाराएँ इस तरह प्रवाहित होती हैं, जैसे दुधारू, सीधी गाय के थन से दूध की धाराएँ। यह सच्चे अर्थों में प्राणिमात्र का भरण-पोषण करने वाली 'विश्वम्भरा देवी' है। धरती माता की गोद में अनेक पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सरीसृप, जलचर, थलचर प्राणी निवास करते हैं। उसके चारों ओर सागर लहराते हैं, उसके आकाश में हंस और सुपर्ण भरे हुए हैं। उसके अरण्यों में सिंह, व्याघ्र स्वच्छन्द विचरण करते हैं। गौ और अश्व की प्रतिष्ठा-भूमि यह पृथिवी माता है। वृक्ष और वनस्पति इस पर सदा निश्चल भाव से, स्थिर भाव से विद्यमान हैं। (मंत्र ४८, २७)

पृथिवी माता का यह रम्य भौतिक स्वरूप सदा सर्वत्र सबके लिए प्रत्यक्ष है। भौतिक समृद्धि के जितने भी रूप हैं, उन सबका अन्तिम स्वरूप पृथिवी है, किन्तु इस रम्य भौतिक स्वरूप से कहीं अधिक रमणीय, मूल्यवान पृथिवी पर निवास करने वाला मानव-प्राणी है, जो अपने उद्भव काल से लगातार बुद्धि का विकास प्राप्त करते हुए अमर है। ऐसा लगता है मानो प्रातःकाल उगता हुआ सूर्य मानवों के लिए अपनी किरण से अमृत-ज्योति बिखेरता हुआ चलता है। (मंत्र १५)

पृथिवी पर बसे हुए मानव अनेकधा वर्गों और समूहों में विभक्त हैं, जो 'जन' कहा जाता है। प्रकृति ने पृथिवी को जन-जन के अनेक भेद प्रदान किए हैं, जो पारस्परिक भेद, भाषा भेद और धर्म भेद से तीन प्रकार के हैं—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। (मंत्र ४५)

किन्तु इस अनेकता में एकता का ऐसा सूत्र है, जिसमें सभी समान-रूप से पिरोए हुए हैं—वह एकता का सूत्र है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (मंत्र १२)

—पृथिवी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

जीवन की मधुमती भूमिका से ओतप्रोत, दिव्य भावों से भरा हुआ यह पृथिवी-सूक्त मानव-जीवन के बहुमुखी विकास की भूमिका और विश्व-साहित्य में सर्वोच्च गान है। यह विश्व-गान है। इसमें 'हमारा', 'तुम्हारा', 'तुम' और 'मैं', देश और राष्ट्र की स्पर्द्धा नहीं; वैषम्य, संघर्ष की मनोवृत्ति के चौखटे नहीं। धरती माता विश्वब्रह्माण्ड का अभिन्न अंग है। माता और पुत्र का अविचल, जोड़ने वाला अचल संबंध सभी मानवों को मिलाने वाला एक धागा है।

□

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकीर्णक ४

शिव-संकल्प

मनुष्य के शरीर के भीतर और बाहर अपरिमेय दिव्य भूमा का अमृत-सागर भरा हुआ है। विराट् शक्तियों का निवास हमारे शरीर में है। यह शरीर देवताओं की पुरी अयोध्या है—देवानां पूरयोध्या। इसलिए इस शरीर को आधि-व्याधि से सर्वथा मुक्त रखने के लिए तथा जड़ता, अल्पता, अल्पज्ञता और मृत्यु से दूर रहने; निर्भय, निर्विकार रहने के लिए नित्य शिव-संकल्प करना चाहिए—

ॐ अग्नि र्मे वाचि श्रितः। वाग्घृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥१॥
वायु र्मे प्राणे श्रितः। प्राणो हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥२॥
सूर्यो मे चक्षुषि श्रितः। चक्षुर्हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥३॥
चन्द्रमा मे मनसि श्रितः। मनोहृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥४॥
दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः।श्रोत्र ँ हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥५॥
आपो मे रेतसि श्रिताः। रेतः हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥६॥
पृथिवी मे शरीरे श्रिता। शरीर ँ हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥७॥
ओषधिर्वनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः। लोमानि हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥८॥
इन्द्रो मे बले श्रितः। बल ँ हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर्जन्यो मे मूर्ध्निश्रितः । मूर्द्धा हृदये । हृदयं मयि ।
अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ।।१०।।

ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्

—'विराट् संसार में जो अग्नि, वायु आदि देव हैं, उनके प्रतिनिधि वाक्, प्राण आदि हमारे शरीर में हैं, उन देवों का अधिष्ठान विज्ञानात्मक बुद्धितत्त्व (हृदय) में है।

विज्ञानात्मक बुद्धितत्त्व (हृदय) चैतन्य (मुझ) में अधिष्ठित है। चैतन्य (अहं) अमृत (अविनाशी परमात्मा) में अधिष्ठित है। वह अमृत-अक्षर ही ब्रह्म है।

हृदय, आयु, प्राण, मन सब मुझे पुनः प्राप्त हों। उनकी खोई हुई शक्ति को अमृत-स्रोत के साथ मिलकर मैं प्राप्त करूँ।

अमृत सूर्य की किरणों में वर्तमान मेरा वैश्वानर अन्तरात्मा अमृतत्त्व का रक्षक है। मैं मृत्यु से हटकर अमरत्त्व चाहता हूँ और इन शिव-संकल्पों के आशिष्ट, दृढ़ पारायण से प्रतिक्षण अमृत को प्राप्त करता हूँ।'

मन, प्राण, वाक्, अथर्वा ये सब वैदिक परिभाषाएँ हैं, जिनके अर्थ का विस्तार शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण में प्राप्त है। संक्षेपतः इनके अर्थ इस प्रकार हैं—मन—अव्यय पुरुष, प्राण—अक्षर पुरुष और वाक्—क्षर पुरुष है। मन, प्राण और वाक्—इन सभी का समन्वय मनुष्य-देह में पाया जाता है (अथर्ववेद १०।२।२७)।

समस्त देवताओं का वास मनुष्य के मस्तिष्करूपी स्वर्ग में है। अथर्ववेद का कथन है कि मनुष्य के मस्तिष्क का विलक्षण नाडीजाल अश्वत्थ वृक्ष है, जिस पर देवताओं का वास है (अथर्ववेद ६।८५।८)।

मस्तिष्क ही स्वर्ग है, यही द्युलोक है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक की गणना में द्युलोक तीसरा है, उसमें देवसदन अश्वत्थ है। मनुष्य की जितनी इन्द्रियाँ हैं, उन सबके संज्ञान-केन्द्र मस्तिष्क में हैं। उस अश्वत्थ (मस्तिष्क) के प्रत्येक पत्ते पर देवों का वास है। मनुष्य के मस्तिष्क में सर्वत्र संज्ञान-केन्द्र फैले हुए हैं।

अथर्ववेद के ब्रह्मप्रकाशी सूक्त (१०।२) में मनुष्य-शरीर का जो विवेचन किया गया है, उसमें सिर की संज्ञा देवकोष है (१०।२।२७)। इस मंत्र में बताया गया है कि मनुष्य-देह में अथर्वा निर्मित मस्तिष्करूपी देवकोष है। मन, प्राण और वाक् उसकी रक्षा करते हैं।

इस अलङ्कारप्रधान वर्णन के अन्तर्गत अध्यात्म के गहन रहस्य छिपे हुए हैं। यदि हम वैदिक परिभाषा शब्दों के स्थूल अर्थ ग्रहण करते हैं, तो वेद मंत्रों के रहस्यार्थ कभी भी उद्घाटित नहीं हो सकते।

अथर्ववेद वाणी को दैवी वीणा और शरीर को दैवी नाव बताते हुए कहता है कि जो इस दैवी वीणा (वाणी) को बजाना जानता है, उसकी वीणा के स्वर सुनने योग्य होते हैं। 'आचार्य ताण्डविन्दव' का अनुभव है कि जैसे कुशल वीणावादक वीणा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से अनन्त स्वर-माधुर्य को उत्पन्न करता है, वैसे ही वाक् (वाणी) रूपी वीणा का कुशल प्रयोक्ता वाणी द्वारा अनन्त अर्थों की सिद्धि करता है। उसके स्वर-साम्राज्य से सब मुग्ध हो ताते हैं। वह जिस नूतन संगीत की तान छेड़ता है, सारा राष्ट्र चकित होकर सुनता है।

अथर्ववेद (७।६।३) के मत से मानव-शरीर भवसागर को पार करने के लिए एक ऐसी नौका है, जिस पर चढ़ कर कितने लोग आसानी से भवसागर पार कर जाते हैं और कितने बीच में ही डूबते-उतराते रह जाते हैं।

'हमलोग स्वस्ति तक पहुँचने के लिए इस दैवी नाव पर सवार हैं। यह नाव 'आस्रवन्ती' है, कहीं से भी रिसती नहीं है। यह नाव 'त्वरित्रा' है, इसमें इन्द्रिय रूप बड़े सुन्दर डाँड लगे हुए हैं। यह नाव 'सुप्रणीति' (सुघटित) है, इसके निर्माण-कौशल का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह नौका 'अदिति' (अखंडनीय) है और देवों (इन्द्रियों, प्राणों) की जननी है। यह नाव 'सुशर्मा' (सुप्रतिष्ठित प्राण) से सम्पन्न है। यह 'सुत्रामा' (इन्द्र) की नाव है। इसमें पृथिवी से द्युलोक तक की समस्त रचना है।'

ऐसी अद्वितीय नाव पर आरूढ़ होने वाले यात्री का अनागस (निष्पाप) होना अनिवार्य है।

शब्द के अन्तराल में उसका सत्य-स्वरूप अर्थ छिपा रहता है। शब्द को केवल रट लेने से कुछ हाथ नहीं लगता है। शब्द रटने के साथ उसके अर्थ को जानने का भी प्रयास करना चाहिए। अर्थ में रस होता है। रस स्वाध्याय, चिन्तन, मनन से प्राप्त होता है। इसका आस्वादन ध्यानरत योगी करते हैं और शब्द के साथ पंडितजन टकराते हैं। शब्दों के पीछे उनकी व्यंजना होती है और व्यंजना से समवेत अर्थ का महार्णव रहता है।

शब्द वाक् है और अर्थ मन है। शब्द (वाक्) और अर्थ (मन) के बीच जब प्राण की धुरी जुड़ती है तभी जीवन में कर्म के द्वारा अर्थ की परतें खुलती हैं। शब्दों के अर्थ का साक्षात्कार करना ज्ञान का सार है। भाषा शब्दप्रधान होती है। शब्दों के अन्तस्तल में जो अर्थ है वही मूल्यवान होता है। अर्थ नित्य; सर्वगत है। देश, काल के बन्धन से रहित है। वेदों में ऋत, सत्य, तप आदि जो शब्द हैं, उनके पीछे अपरिमित अर्थ हैं। शब्द के अर्थ को समझने के लिए, उसका साक्षात्कार करने के लिए ध्यानशक्ति अपेक्षित है। जब मन-मस्तिष्क में अर्थ का प्रवाह प्रवाहित होता है, तब शब्द का आवरण हट जाता है और वही सत्य है, शिव है, सुन्दर है, आनन्द है।

वस्तुतः सच्चा आनन्द, सच्ची तृप्ति अर्थ के साक्षात्कार में है। जब किसी शब्द के अर्थ के साथ सीधा संबंध जुड़ जाता है, तब मन, मस्तिष्क और हृदय में आनन्द-सागर लहराने लगता है। वैदिक ऋषि द्रष्टा कहे जाते थे, इसलिए कि वह शब्द के अर्थ का साक्षात्कार करते थे, अर्थ का दर्शन करते थे। जब अर्थ की दृष्टि प्राप्त हो जाती है तब तर्क तिरोहित हो जाते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थज्ञान रहित शब्द बोझा बन जाता है। अर्थविज्ञान रहित शब्दज्ञान से कोई लाभ नहीं।

शिव-संकल्प से प्राणों को शान्त, दान्त, पवित्र एवं बलवान् बनाया जाता है। प्राण और मन की पवित्रता के लिए शिवात्मक शुद्ध संकल्प (शिव-संकल्प) की नितान्त आवश्यकता रहती है। शुद्ध संकल्प ही आत्मशंसन है, जिसे इंग्लिश में 'auto-suggestion' कहते हैं। अथर्ववेद में एक इसी प्रकार का पवित्र संकल्प है—

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

इस शिव-संकल्प के मानसिक ध्यान से ओजः तेजः की वृद्धि होती है। सहकारी, सदाचारी भावनाओं का उन्मेष होता है; आयु, आरोग्य, बुद्धिबल की वृद्धि होती है और नित्यं श्रीःनित्य मङ्गलम् का अजस्र प्रवाह प्रवाहित होने लगता है।

मनुष्य शरीर के मेरुदण्ड में व्याप्त रहने वाली सुषुम्णा नाडी एक ऐसी 'एलक्ट्रिक ट्यूब' है, जिसमें अगणित 'वोल्ट' की शक्ति भरी रहती है। जब मनुष्य संयम, नियम-पूर्वक शिव-संकल्प का मानसिक ध्यान करता है, तो उससे ओज बनने लगता है। जब ओज बनता है, तब सूक्ष्माति-सूक्ष्म रसों का प्रवाह शिर में स्थित ब्रह्माण्ड की ओर जाता है। उस समय मन निर्विकार होने लगता है। यह एक ऐसा सन्धि-काल है कि तनिक-सी असावधानी या चूक हो जाने पर शरीररूपी यंत्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। अतएव शुद्ध आहार-विहार और आत्मसंयमपूर्व शिव-संकल्प की ध्यानोपासना करनी चाहिए। क्योंकि सत् और असत् अथवा शुद्ध और अशुद्ध दो विरोधी प्रवाहों के संघर्ष से प्राण अत्यधिक उग्र हो जाते हैं तब मन निर्विकार न रहकर विकारों से घायल हो जाता है। घायल मन निस्तेज हो जाता है। शिव-संकल्प की सतत साधना से आत्मसिद्धि अवश्य मिलती है। मन सशक्त होकर शिव-संकल्पमय बन कर अपनी विजय का मार्ग स्वतः बनाता है।

शिव-संकल्प से प्राणोत्पादिनी जीवनीशक्ति का संवर्द्धन होता है। अथर्ववेद में आयुसंवर्द्धन, स्वास्थ्य सम्पादन के लिए प्रकृति-सिद्धि विधान बताए गए हैं। बताया गया है कि शरीर के भीतर जो प्राण की गर्मी है, वही प्राणाग्नि हमको नीरोग और बुद्धिमान् बनाती है। प्राणाग्नि के द्वारा शरीर की रक्षा, आयु की वृद्धि और रोगों की निवृत्ति होती है। इसलिए इस अग्नि को 'तनूपा' (शरीररक्षक) कहा गया है। यजुर्वेद में इसी तनूपा अग्नि को संबोधित करते हुए इस संकल्प का पाठ किया जाता है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि ॥
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ (यजुर्वेद ३।१७)

—हे अग्नि, तुम तनूपा हो, मेरे शरीर की रक्षा करो।
—हे अग्नि, तुम आयु हो, मुझे दीर्घायु दो।
—हे अग्नि, तुम वर्चस्वी हो, मुझे वर्चस् प्रदान करो।
—हे अग्नि, मेरे शरीर में जो भी कमी हो, उसे पूरा करो।

यहाँ पर अग्नि का अर्थ प्राण है। शतपथ ब्राह्मण (२।२।२।१८) में 'प्राणो अग्निः'—प्राण अग्नि है बताया गया है।

अथर्ववेद और यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में बताया गया है कि अपने विराट् रूप में जो आत्मा सहस्रशीर्षा और सहस्रपाद है, वामनवेश में वही दस अँगुलियों के आधार से खड़ा है। दो चरणों से जो स्थित है, उसके विराट् रूप को जो पहचानते हैं, वे आत्म-ज्ञानी हैं।

अध्यात्म विष्णु को तीन चरणों वाला 'त्रिपाद' कहा गया है। विष्णु के तीन चरण वाक्, मन और प्राण हैं। वाक् ऋग्वेद का सार है। मन सामवेद का और प्राण यजुर्वेद का सार है। भूत (वाक्) विज्ञात है। वर्तमान (मन) विजिज्ञास्य है और भविष्य (प्राण) अविज्ञात है। इन चक्रों के बिना ब्रह्माण्ड का एक परमाणु भी नहीं हिल सकता। इन्हीं के ऐक्य मार्ग को जानने के लिए अग्निहोत्र किया जाता है।

अमृत का आधार शिव-संकल्प है। हमारे भीतर और बाहर अपरिमित दिव्य भूमा अमृतत्त्व का महोदधि हिलोरें ले रहा है। हज़ार-हज़ार आवरणों के पीछे उसी का प्रकाश हो रहा है। करोड़ों सूर्यों से भी अधिक तेजस्वी उस अमृत ब्रह्मतेज के साथ अपनी प्राणधारा को संयुक्त करने के लिए शिव-संकल्प किया जाता है।

शिव-संकल्प इस भावना को जाग्रत करता है—

'विराट् शक्तियों का निवास हमारे शरीर में है, उन सब का सूत्र ज्ञान रूप चैतन्य तथा आनन्द रूप अमृत ब्रह्म के साथ मिला हुआ है।'

अतएव आवश्यक है कि हम अपने आपको अल्पता, हीनता, जड़ता और मृत्यु से संलग्न न समझ कर अपने मन में निरन्तर अमृतत्त्व की भावना करें।

यह भावना शिव-संकल्प से जाग्रत और फलवती बनती है।

विराट् प्रकृति में जो प्राणधारा अप्रतिहत गति से प्रवाहित है, वही महाप्राण है। इस महाप्राण ने ही विशाल, विस्तृत ब्रह्माण्ड को पुनीत और पूज्य बनाया है। शिव-संकल्प की साधना से मनुष्य के अन्तरतम में यही प्राणधारा प्रविष्ट होकर उसे प्राणवान्, संकल्पनिष्ठ बनाती है। यह प्राणधारा हज़ारों, लाखों रूपों में प्रकृति के हर पदार्थ के भीतर से प्रकट हो रहा है। इस महाप्राण को अथर्ववेद में 'अर्क' कहा गया है,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि प्राण की सत्ता से जड़ में भी अर्चनीय भाव उत्पन्न होता है, प्राण के निकलते ही नर-देह अनर्चनीय, अपूज्य हो जाता है। वह दुर्गन्धयुक्त हो जाता है, सड़ने, सूखने लगता है। जब तक शरीर में प्राण रहता है, तब तक शरीर को तिरस्कृत नहीं किया जाता। हमारी दैनिक क्रियाओं वाले इस शरीर को प्राण पवित्र रखता है। शरीर में असंख्य नाडियाँ, कोष और अनेक प्रकार के रस हैं, वे किसी न किसी कारण से विकार-युक्त होते रहते हैं। रोग-दोष उत्पन्न होते रहते हैं। शरीर, मन, मस्तिष्क और इन्द्रियों का अहर्निश शोधन करने वाली प्राणशक्ति है। यह प्राणशक्ति संचरणशील है, यह अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म गति से शरीरगत अन्तःस्राविका नाडियों (हारमोन्स), कोषों (सेल्स), शिराओं, स्नायुवों, शिरा-तन्तुओं में विद्यमान रहती है, संचरणशील रहती है। जितनी भी शरीरगति विद्युत-शक्तियाँ हैं, उन सब ज्ञात शक्तियों से अत्यधिक विलक्षण शक्ति प्राणशक्ति है। इससे अधिक आश्चर्यजनक, रहस्यमयी अन्य किसी शक्ति का परिचय अब तक मनुष्य नहीं ज्ञात कर सका है।

अथर्ववेद इस प्राणशक्ति को प्राणविद्या कह कर इसकी साधना पर ज़ोर देता है। शिव-संकल्प प्राणविद्या की साधना का सहज, सरल साधन है। प्राणविद्या के साधक ऋषियों ने प्राण का महत्त्व सब से अधिक माना है। आत्मतत्त्व या चैतन्य की अभिव्यक्ति प्राणन-क्रिया से ही होती है। शिव-संकल्प प्राणन-क्रिया का एक सशक्त अंग है। अथर्ववेद का कथन है कि विश्व ब्रह्माण्ड के जितने रूप हैं, वे सब प्राण के ही हैं। प्राण ही सूर्य रूप से तपता है, वही विद्युत् है। विद्युत् ऋण (निगेटिव) और धन (पाजिटिव) रूप से दो प्रकार की होती है। 'प्राण' और 'अपान' रूप से प्राण भी दो रूपों में काम करता है। इसलिए अथर्वा ऋषि ने प्राण की वन्दना करते हुए कहा है—

'नमो प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते' (अथर्ववेद ११।४।८)। प्राण और अपान इन दो प्रकार के प्राणों से मनुष्य-शरीर का विकास होता है। महाप्राण की धारा का यह एक छोटा-सा खंड है, जिसमें प्राण और अपान के प्रवाह को लिए हुए दो धाराएँ प्रवाहित हैं। इस संयुक्तशक्ति को सुषुम्णा नाडी कहा जाता है। सुषुम्णा नाडी के सहारे ही मनुष्य-शरीर स्थित है। यह सुषुम्णा नाडी मेरुदण्ड की अन्तःचारी शक्ति है, इसका अभ्यन्तर रहस्यमय रस से भरा रहता है। इस रस का निरन्तर अभिषव करते रहने के कारण इसे 'सुषुम्णा' कहा गया है। सुषुम्णा का रस मस्तिष्क (ब्रह्माण्ड) में भरा रहता है। प्राणरूप विद्युत् के उत्पन्न करने और उसे नियमित करने का श्रेय ब्रह्माण्ड के इसी रस को है।

शिव-संकल्प में कहा गया है कि 'आपो मे रेतसि श्रिताः। रेतः हृदये।' रेत सुषुम्णा में भरे हुए रस का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप है। यह रेत ही प्राणों की प्रतिष्ठा है। शिव-संकल्प की साधना करते हुए 'रेत' की जब सम्यक् स्थिति आ जाती है तब समाधि लगने लगती है। प्राण जब उग्र हो उठते हैं तब शरीर में विविध प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राण तभी उग्र होते हैं जब रेत अशुद्ध और अपवित्र होता है। व्याधि-ग्रस्त रोगी का मन अशान्त रहता है, इसलिए कि प्राण और मन का समवाय संबंध

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। मन के संकल्पों और विकल्पों के अनुसार ही प्राण की धारा प्रवाहित होने लगती है। अतः मानसिक शिव-संकल्प से प्राण को शान्त, सशक्त, पवित्र बनाया जाता है। प्राण और मन की पवित्रता के लिए शिव-संकल्प ही एक अमोघ साधन है।

शिव-संकल्प से प्राणोत्पादिनी जीवनीशक्ति उत्पन्न होती है। यह प्राणोत्पादिनी जीवनीशक्ति कभी बढ़ने लगती है और कभी घटने लगती है। जैसे बुढ़ापा आने पर यह जीवनीशक्ति छीजने लगती है और इसके छीजने पर मृत्यु निकट आने लगती है। यदि हम प्राणोत्पादिनी जीवनीशक्ति की क्षयिष्णु प्रवृत्ति को रोकने और शरीरस्थ रस और धातुओं को स्वस्थ, पवित्र बनाने के लिए शिव-संकल्प की साधना करते हैं, तो शरीर के अन्दर की प्राणाग्नि प्रज्ज्वलित होकर हमें नीरोग और निरामय बना देगी। मृत्यु का भय नहीं रह जाएगा।

शरीर के अन्दर जो प्राण की गर्मी है, वही प्राणाग्नि है। यही प्राणाग्नि शिव-संकल्प से प्रज्ज्वलित रहती है और मनुष्य को नीरोग बनाती है। इससे शरीर की रक्षा होती है। आयुष्य की वृद्धि होती है। शरीर के अन्दर की अग्नि का अर्थ प्राण है, शतपथ ब्राह्मण (१०।२।६।१८), जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४।२२।११) में प्राण को ही अग्नि कहा गया है। यह प्राण ही देव है, ब्रह्म है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रसंग है, विदेहजनक के वहुदक्षिण यज्ञ के समय कुरु-पाञ्चाल देश के ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों की सभा में विदग्ध शाकल्य ने ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया—

कति देवा याज्ञवल्क्य इति

—कितने देव हैं याज्ञवल्क्य !

याज्ञवल्क्य ने क्रमशः ३००३, ३३, ६, २, १ देवों का निरूपण करते हुए अन्त में सर्वमूलक एक देव-स्वरूप का व्याख्यान करते हुए कहा—

कतम एकोदेवइति प्राण इति।
स ब्रह्म तदित्याचक्षते।

—वह एक देव कौन-सा है ? वह प्राण है। उसे ही ब्रह्म कहा जाता है। क्षर और अक्षर ब्रह्म प्राण का ही विस्तार है। प्राण ही प्रजापतिरूप से सब के केन्द्रों (हृदय या गर्भ) में बैठा हुआ अनेक रूपों से प्रकट हो रहा है।

ऋषि याज्ञवल्क्य के इस सिद्धान्त को अनेक वैदिक ऋषियों ने अनेक प्रकार से अनेक स्थानों पर प्रतिपादित किया है। कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् (२।१) में लिखा है कि ऋषि कौषीतकि ने ऋषि-संघ के समक्ष इसी तत्त्व की घोषणा करते हुए कहा था—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणो ब्रह्म इतिह स्माह पैङ्ग्यः

इस तरह समस्त ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदों की संहिताओं में प्राण की महत्ता का वर्णन है। सभी ने यह माना है कि प्राण ही आयुरूप से सब जीवों में समाविष्ट है। प्राणों के उत्क्रान्त होने पर आयु की डोरी टूट जाती है।

अथर्ववेद का गोपथब्राह्मण कहता है कि—

प्राण एष स पुरि शेते। तं पुरि शेते पुरिशयं
सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते। (गोपथ ब्राह्मण पू० १।३९)

अर्थात् शरीर रूपी पुरी में बसने के कारण प्राण ही 'पुरुष' कहा जाता है।

कौषीतकि उपनिषद् (३।३) का कथन है कि 'जो कुछ विश्व ब्रह्माण्ड में या शरीर में 'प्रज्ञान' है, वह प्राण ही है। प्राण ही प्रज्ञात्मा है। जो प्राण है, वही प्रज्ञा है और जो प्रज्ञा है, वही प्राण है।'

ताण्ड्य ब्राह्मण (१।८) का ऋषि पूछता है कि इस ब्रह्मपुरी (नर-देह) में कौन नहीं सोता है। उत्तर मिलता है 'प्राण'। प्राण का जागना ही महान् जागरण है। प्राण की अग्नियाँ इस ब्रह्मपुरी (नर-देह) में सदा जाग्रत रहती हैं।

यजुर्वेद (३५।३५) में बताया गया है कि 'इस शरीर में सात ऋषि प्रतिष्ठित हैं। ये सातों ऋषि प्रमाद रहित होकर इस शरीर की चौकसी करते हैं। सात बहिर्मुखी प्राणधाराएँ या इन्द्रियाँ सोते समय सोने वाले लोक में एकत्र हो जाती हैं। उस समय भी स्वप्नरहित रहने वाले दो देव (प्राण और अपान) जागने वाले आत्मा के साथ स्थित रह कर जागते रहते हैं।'

यजुर्वेद के इस प्रतीत्मक मंत्र का भाष्यकारों ने प्राणपरक जो अर्थ किया है, वह इस प्रकार है—

सप्त ऋषयः = सात प्राण।

सप्त आपः = सात प्राण या इन्द्रियाँ।

दो जागने वाले देव = प्राण और अपान।

सात ऋषि ही सात प्राण हैं। दो कान गोतम और भरद्वाज हैं। दो आँखें विश्वामित्र और जमदग्नि हैं। दो नासिकारन्ध्र वसिष्ठ और कश्यप हैं। वाक् अत्रि हैं। (बृहदारण्यक उपनिषद् २।२।४)

अथर्ववेद (१०।२।२७) ने मनुष्य के सिर को देवकोष बताया है। इसे स्वर्ग-लोक भी कहा है। जिस प्रकार ऊपर द्युलोक में सप्तर्षि प्रकाशित है, उसी प्रकार इस मस्तिष्करूपी द्युलोक में सप्तप्राणसंज्ञक सप्तर्षि विराजमान हैं।

शिव-संकल्प की साधना से साधक अमृत से परिपूर्ण इस ब्रह्मपुरी (शरीर) को जान कर आत्मज्ञान प्राप्त करता है। इस शरीररूपी क्षेत्र और इसके अन्दर रहने वाले

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षेत्रज्ञपुरुष को वह समाधि द्वारा अनुभव में लाता है। उस शिव-संकल्पमय साधक के प्राण और इन्द्रियाँ आयुपर्यन्त तेजस्वी बने रहते हैं। उनमें अक्षीणता का संपर्क नहीं हो पाता। उसके शरीर के अन्दर प्राणरूपी अग्नियाँ निरन्तर प्रज्ज्वलित रहती हैं।

यह शिव-संकल्प मन, वाक्, प्राण की शक्ति को प्रस्फुरित कर यह रहस्य उजागर करता है कि मनुष्य का मन या मस्तिष्क पूर्णवस्तु है। चैतन्य के स्फुरणो को ग्रहण करने में समर्थ मन के सदृश अन्य कोई भी पदार्थ इस जगत् में नहीं है। जड़ और चेतन की अन्योन्यक्रिया-प्रतिक्रियाओं का माध्यम मन है। मन के दो भाग हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। इन्हें ही अध्यात्म दर्शन जाग्रत और सुषुप्त कहता है। हमारा ज्ञान विचार, स्मृति, मेधा इनका अधिकतर कार्य व्यापार जाग्रत मन से ही निवृत्त होता है, किन्तु उसकी विभूति परोक्षमन की तुलना में मात्र इतनी ही है, जितनी ब्रह्माण्ड की तुलना में एक परमाणु की। हमारे जन्म-जन्मान्तर के और इस जन्म के समस्त संस्कार परोक्ष-मानस पर अंकित रहते हैं। उस पर अनन्त छाया चित्र पड़े रहते हैं, उनमें से कुछ ही चित्रों को हम स्पष्ट सिद्ध कर पाते हैं। इसी शक्ति के कारण नर-देह में अनन्त और महान् विराट् समाया हुआ है।

प्रत्यक्ष मन सान्त (मिटने वाला), स्वल्प और मर्त्य है। परोक्ष मन अनन्त, अमृत और भूमा है। भूमा की ओर अग्रसर होने में मनुष्य के लिए पूर्णता की प्राप्ति है। शिव-संकल्प इस प्राप्ति का साधन है।

अथर्ववेदीय परिभाषा में मन के प्रत्यक्ष भाग की संज्ञा मनुष्य और परोक्ष भाग की संज्ञा पशु है। मनुष्य और पशु इन दो शब्दों के धातुओं के अर्थ भी इसी का समर्थन करते हैं। 'मनुते इति मनुष्यः।' जिसमें मनन या स्वयं चिन्तन की शक्ति है, वह मनुष्य-भाग है और 'पश्यतीति पशुः।' जिसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति से देखने या समझने की शक्ति है, वह पशु है। मनुष्य बुद्धिप्रधान है और पशु चित्तप्रधान है। पुरुष में बुद्धि और चित्त दोनों का समन्वय है। इसलिए वेदों में बुद्धि प्रधान भाग का नाम 'इन्द्र' और चित्त प्रधान भाग का नाम 'अग्नि' है।

बुद्धि के द्वारा हम जितनी उन्नति करते हैं वह चित्त के संस्कार के बिना अपूर्ण है। केवल बौद्धिक उन्नति से मनुष्य का पशु-भाग संयत, शान्त नहीं बनाया जा सकता। सदाचार, संयम, नियम, पवित्रता आदि दैवी गुण चित्त की उन्नति से उत्पन्न होते हैं। अक्सर देखने में आता है कि कोई आदमी अत्यधिक बुद्धिमान् है। उसने बेहद दिमाग़ी उन्नति प्राप्ति की है, लेकिन चित्त की वृत्तियों पर संयम, नियंत्रण न कर पाने के कारण उसकी कोई-न-कोई दमित इच्छा, दबी हुई प्रवृत्ति का अचानक विस्फोट हो जाता है और उसकी उन्नति के ऊँचे महल क्षण भर में धराशायी हो जाते हैं। चित्त का संपूर्ण ज्ञान और उसमें निहित सारी शक्तियों का संयम, शिव-संकल्प से होता है। शिव-संकल्प ही वास्तविक मानवी-संस्कृति है।

हमारी पुरातन योगविद्या का उद्देश्य मस्तिष्क के चित्त भाग पर अधिक से अधिक अनुशासन प्राप्त करना था। पातञ्जल योगसूत्र का पहला सूत्र है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

—चित्तवृत्तियों का निरोध करना योग है। शिव-संकल्प में चित्तवृत्तियों और इन्द्रियों को निगृहीत करने की प्रकिया है। इसकी साधना से शिव-संकलप साधक श्रेय और प्रेय प्राप्त करता है।

प्राचीन काल के ऋषि आश्रमों, गुरुकुलों, चरणों, विद्यापीठों में ब्रह्मचारियों, विद्यार्थियों, योगियों के लिए शिव-संकल्प की साधना करनी पहली शर्त थी। वाक्काय-मन से सर्वथा संभृत उनके त्रिविध तप शिव-संकल्प के कारण कभी उछिन्न नहीं होते थे। समाधिस्थ होकर वे सनातन ब्रह्म का साक्षात्कार किया करते थे। तम से अतीत, परोरजा, आदित्यपुरुष की उपासना नियमपूर्वक किया करते थे। श्रुति महती सरस्वती को प्रत्यक्ष करने में उनका मन एकाग्र रहा करता था। वह शिव-संकल्प से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर त्रिलोकी का साक्षात्कार किया करते थे। शिव-संकल्प से मिली दिव्य-ज्योति पर कभी तमिस्रा का आक्रमण नहीं होता था। अपरिमित श्रम से आराधित शिव-संकल्प से उन्हें त्रयीज्ञान प्राप्त होता था।

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No.

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8592

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

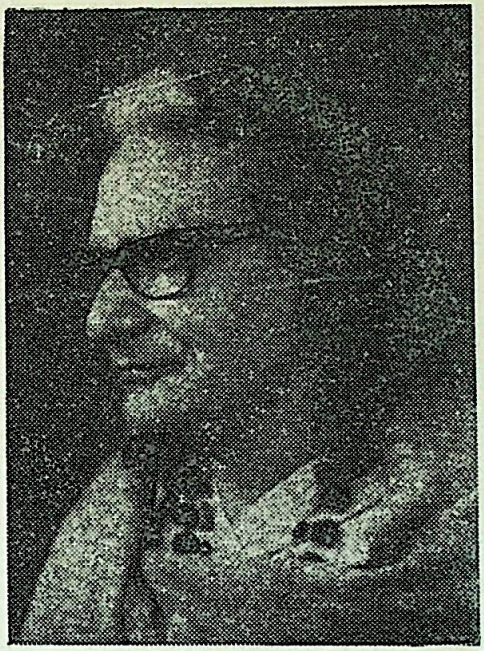

पं० देवदत्त शास्त्री

जन्म : फाल्गुन-कृष्ण, महाशिवरात्रि, सं० १९७० वि० ।

प्रवृत्ति : देश-दर्शन, विश्व-भ्रमण ।

लक्ष्य : चरैवेति, चरैवेति ।

वृत्ति : जीवन के पूर्वार्द्ध में स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन; उत्तरार्द्ध में अध्ययन, चिन्तन, ग्रन्थ-लेखन ।

विशेष अध्ययन : अथर्ववेद, तन्त्रशास्त्र, अक्षर-विज्ञान ।

रचनाएँ : मौलिक, अनूदित, सम्पादित, यात्रा - संस्मरण, कथावृत्त आदि विविध विषयक ७५ ग्रन्थ प्रकाशित ।

वैशिष्ट्य : गति ही इनका जीवन है, मति ही इनका धन है ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैदिक ऋषि की घोषणा

शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः

अमृतमय प्रभु की सभी सन्तानों सुनो !

माता भूमिः

भारतभूमि तुम्हारी माता है ।

अज्येष्ठास अकनिष्ठास एते

तुममें न कोई ऊँच है, न नीच है,
न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है ।

संभ्रातरः वावृधुः सौभगाय

तुम सब भाई-भाई हो । अतः सभी
भाई मिलकर राष्ट्र के सौभाग्य
की वृद्धि के लिए आगे बढ़ो !

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु

हम सब का कल्याण हो,
हम सब निर्भय बनें ।

—अथर्ववेद

विविध भारती
प्रकाशन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi